

विक्रय : कला, संगठन तथा विज्ञापन

Salesmanship, Sales-Organisation and Advertising.

लेखक

रामकृष्ण व्होरा,

एम कॉम , विशारद

प्रा० गो. से. अर्थ-वाणिज्य महाविद्यालय
वर्धा.

बलराम वनमाली,

एम कॉम , साहित्यरत्न

प्रा० गो. से. अर्थ-वाणिज्य महाविद्यालय
वर्धा

: प्रकाशक :

गो० से० अर्थ-साहित्य प्रकाशन मंडल, वर्धा

CHECKED १०८५

सर्वाधिकार लेखकाधीन

प्रथम संस्करण, सितंबर १९५१
मूल्य पाँच रुपये

सम्पादक तथा मुद्रक
जमनालाल जैन, माहियरान
श्रीकृष्ण प्रिण्टिंग वर्क्स, वर्धा.

प्रस्तावना

‘विक्रय कला, संगठन तथा विज्ञापन’ को मैं देख गया हूँ। यह पुस्तक नागपुर विश्व-विद्यालय के ‘विक्रय-सेवा और विक्रय-संगठन’ विषय संबंधी अभ्यासक्रम को ध्यान में रख कर लिखी गयी है। इस प्रकार की पुस्तक हिन्दी, मराठी व अन्य देशी भाषाओं में अभी तक उपलब्ध नहीं थी। इस विषय पर अंग्रेजी में भी जो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, वे भी इतनी व्यापक और संपूर्ण नहीं हैं। इस दृष्टि से इस पुस्तक के लेखक श्री. बलराम वनमाली और श्री. रामकृष्ण व्होरा बधाई के पात्र हैं।

पुस्तक में विषय का विवेचन मैजी हुई भाषा में व्यवस्थित ढंग से किया गया है। जब हमने अर्थ-वाणिज्य महा-विद्यालयों में मानृभाषा माध्यम का प्रारंभ किया था, उस समय लोगों को संदेह था कि देशी भाषाओं में इस प्रकार के विषयों पर सफलता-पूर्वक पुस्तकें लिखी जा सकेंगी या नहीं। इन वर्षों में अर्थशास्त्र और वाणिज्य संबंधी जो साहित्य प्रकाशित हुआ है उस से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी में सब प्रकार के विषयों का विवेचन अच्छी तरह किया जा सकता है। प्रस्तुत पुस्तक भी इसी दावे की पुष्टि करने में सहायक साबित होगी।

इस पुस्तक का एक और विशेषता है। सामान्यतः विक्रय-कला तथा विज्ञापन संबंधी साहित्य में भारतीय संस्कृति व ईमानदारी पर जोर नहीं दिया जाता है। मुख्य दृष्टि यही रहती है कि किस तरह वस्तुओं की बिक्री से अधिक से अधिक लाभ उठाया जाय। सत्य और ईमानदारी का वाणिज्य में विशेष स्थान रहना जरूरी है, इस बात को महत्त्व नहीं दिया जाता। मुझे खुशी है कि लेखकों ने इस पुस्तक में नैतिकता की दृष्टि को भी ध्यान में रखा है।

मैं आशा करता हूँ कि यह पुस्तक विद्यार्थियों के लिए बहुत उपयोगी साबित होगी और अर्थ-वाणिज्य साहित्य में उसका स्थान ऊँचा गिना जायगा।

अर्थ-वाणिज्य महाविद्यालय,
वर्धा.

श्रीमन्नारायण अग्रवाल

श्रद्धेय श्रीकृष्णदासजी जाजू के आशीर्वादात्मक विचार



प्रा. बलराम वनमाली और प्रा. रामकृष्ण धोराने इस पुस्तक को लिखकर व्यापारी-विषय के विद्यार्थी-वर्ग के लिए एक बड़े काम की चीज बना दी है। ऐसे वैज्ञानिक विषयों की पुस्तकें हिन्दी में लिखना जरूरी है, क्योंकि अब हमारे विश्व-विद्यालय सब विषय मातृभाषा या राष्ट्रभाषा के माध्यम से पढ़ाने का विचार कर रहे हैं। इस दृष्टिसे भा. ये लेखक अभिन्नंदन के पात्र हैं।

भौतिकता की नींवपर और सभ्यता की पश्चिमी विचार-प्रणाली पर ग्वडे किये गये अर्थ-शास्त्र में और मानवता की दृष्टि से होनेवाले नैतिक अर्थ-शास्त्र में क्या अंतर हो सकता है, यह बात गहराई से सोचने पर ही समझ में आ सकती है। यहाँ अर्थ-शास्त्र के सर्वसाधारण सिद्धांतों का विचार करना अप्रस्तुत है, क्योंकि इस पुस्तक का विषय केवल विक्रय-विभाग ही है। विक्रय-कला में नैतिक दृष्टि से क्या विशेषता रहे यह समझाने के लिए भी एक स्वतंत्र अध्याय लिखना पड़ेगा। पर उसके लिए यह स्थान नहीं है। तथापि मेरा आशय क्या है, इसका केवल दिग्दर्शन कराने के लिए दो-तीन बातों का यहाँ उल्लेख कर संतोष मान लेता हूँ। यदि नीचे लिखी गयी दृष्टि ध्यान में रखकर यह पुस्तक पढ़ी जायगी तो इस पुस्तक में जो कुछ लिखा गया है, उसमें सामाजिक हित की दृष्टिसे दूसरा कौनसा पक्ष है, यह विचार-शील पाठक समझ सकेंगे। इन प्रश्लापक भाइयों को जो किताब लिखनी थी वह तो विश्वविद्यालय द्वारा मुर्कर किये हुए विषय के अध्ययन में मदद होने के लिए लिखनी थी। इसलिए पश्चिमी अर्थ-शास्त्र के विचार जैसे के तैसे इस में उतारना आवश्यक था। इस पुस्तक में नैतिकता का कुछ खयाल तो किया गया है ही, पर जब सारी रचना का ढाँचा ही दूसरी तरह का है तो इसमें सर्वोदय की दृष्टिको पूरा स्थान कैसे मिल सकता था? वह दृष्टि सम्मुख रहे इसलिए मैंने भी किञ्चित लिख देना उचित समझा है।

एक चतुर विप्रेता ने मुझे कहा था कि ग्राहक को जो चीज चाहिये वह मेरी दूकान में न हो तो भी उसे मेरी दूसरी कोई न कोई चीज खरीदने को लगाये बिना मुझे चैन नहीं पड़ती। उधर, वस्तुस्थिति यह कहती है कि सबके लिए पर्याप्त हो, इतनी चीज इस दुनिया में है ही नहीं। हम संयम से काम लेकर कम चीजों से निभावेँ अर्थात् अपरिग्रह का यथासंभव खयाल रखें तो सब सुख-शान्ति से रह सकते हैं, कलह कम हो सकता है। मानव-जीवन बतलाता है कि इच्छाएँ अधिक बढ़ाने से सुख नहीं बढ़ता। पाश्चात्य विचार-धारा सिखाती है कि अपनी

आवश्यकताएँ बढ़ाना और उनकी पूर्ति करना सभ्यता की मुख्य बात है। बड़े पैमाने के यंत्रोद्योगों का परिणाम ही यह है कि चीज की आवश्यकता के बदले यंत्र की आवश्यकता के अनुसार चीजों का बड़े पैमाने पर उत्पादन हो। अर्थात् ज़रूरत हो या न हो, उतनी चीजों के बेचने का भी प्रबंध करना ही है। ऐसे बड़े पैमानों के उत्पादक और विक्रेता, दोनों का स्वार्थ इसी में है कि ग्राहक को ज़रूरत हो या न हो, उसके पहले चीज बांधी ही जाय।

• जहाँ चीज बढ़ती है, वहाँ से वह ग्राहक तक पहुँचाने के लिए विक्रेता की ज़रूरत तो है ही। ग्राहक की सच्ची आवश्यकता की पूर्ति करने में समाज की सेवा है। पर ग्राहक को जो चीज नहीं चाहिये, उसे ग्राहक को किसी प्रकार मोह में डाल कर पछे बांधने में क्या सचमुच समाज का हित है ?

एक कानूनी कहावत है— Caveatemptor— (Buyer beware— ग्राहक सचेत रहे।) इसका आशय यह है कि अगर विक्रेता के हाथमें न टगा जाना हो तो ग्राहक को सावधान रहना चाहिये। माना जाता है कि चीज के सारे टोप बतलाने की जिम्मेवारी विक्रेता पर नहीं है, ग्राहक को ओग्य खेल कर व्यवहार करना चाहिये। अगर वह फँसता है तो वह उसका फल भोगे। यह एक आधुनिक व्यवहार का सिद्धान्त बन गया है। क्या यह न्याय-नीति के अनुकूल है ?

क्रय-विक्रय के व्यवहार में एक कहावत है— Buy cheapest, sell dearest — यानी चीज सस्ती से सस्ती खरीद करो और महँगी से महँगी बेचो। खरीदनेवाला सस्ती खरीदना चाहेगा और बेचनेवाला महँगी बेचना चाहेगा। अर्थ-शास्त्र ने यह सिद्धान्त बना कर खरीददार और बेचनेवाले में द्वन्द्व खड़ा कर दिया है। चीज की जो वाज़िब कीमत होनी चाहिये वह लेने और देने की वृत्ति रखने के बदले एक दूसरे को ठगने की ही प्रवृत्ति रहती है। परिणाम यह होता है कि किसी का किसी पर विश्वास नहीं बैठता। इस दशा में सत्य के लिए आधार कहाँ रहा !

बड़े पैमाने के केन्द्रित यंत्रोद्योग ने और प्रचलित अर्थ-शास्त्र ने ऐसी अनेक समस्याएँ खड़ी कर दी हैं। व्यापार में मानवता का क्षेत्र बहुत कुछ मर्यादित हो गया है। ऐसी दशा में शुद्ध नैतिकता कहाँ तक टिक सकती है ? लेकिन मानवता की दृष्टि से और व्यवहार का अनिम फलश्रुति की दृष्टि से भी अर्थशास्त्र के लिए नैतिक अधिष्ठान की अत्यंत आवश्यकता है, उस के बिना मानवता का विकास असंभव है।

अपनी ओर से

विश्वविद्यालयीन उच्च शिक्षा मातृभाषा तथा राष्ट्रभाषा माध्यम द्वारा प्रदान करने में सबसे बड़ी कठिनाई 'पाठ्य पुस्तकों का अभाव' बतलाई जाती है। जब तक हम प्रयत्न पूर्वक शिक्षा-साहित्य निर्माण नहीं करेंगे तबतक यह समस्या हल नहीं होगी। कुछ विद्वानों ने इन दिनों इस दिशा में प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये हैं जिनका अनुसरण कर इन रचनाओं को पाठकों और विशेषतः विद्यार्थियों की सेवा में प्रस्तुत करने का यह एक साहस है। यह पुस्तक विशेष रूप से नागपुर विश्वविद्यालय के अभ्यास-क्रम की दृष्टि से लिखी गयी है, फिर भी हमें विश्वास है कि वह व्यापारियों, विक्रेताओं तथा प्रबंधकों के लिए भी उपयुक्त सिद्ध होगी।

इस रचना की प्रेरणा हमें श्री. श्रीमन्नारायणजी अप्पवाल, आचार्य गो० से० अर्थ-वाणिज्य महाविद्यालय, वर्धा से मिली। पुस्तक लिखते समय जब जब हमें कठिनाई आई तब तब आपने उदारता और आत्मीयता के साथ हमारा मार्गदर्शन किया है। आपने इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखकर हमें अनुत्प्रेक्षित किया है। इस प्रकार पूज्य जाजूजी ने आशीर्वाद देकर और विक्रय-शास्त्र का दूसरा पक्ष पाठकों के सम्मुख रखकर हमें उपकृत किया है।

गो० मे० अर्थ-वाणिज्य महाविद्यालय, जलपुर के आचार्य श्री. पन्नालालजी बन्दुवा, हमारे महाविद्यालय के उपाचार्य श्री. डॉ० शाह साहब, प्रा० हातेकरजी और प्रा० श्रीनारायणजी अप्पवाल ने समय समय पर योग्य सूचनाओं द्वारा हमें सहायता प्रदान की है जिसके लिए हम आभारी हैं। वास्तव में इस विषय को कक्षाओं में पढ़ाते समय विद्यार्थियों ने जो दिलचस्पी दिखायी वही इस प्रयास के लिए प्रथम प्रोत्साहन रहा है। विशेषतः श्री. मधुसूदन दुबे ने इस कार्य में काफी परिश्रम किया है। श्री. जमनालालजी जैन की सहायता यदि नहीं मिलती तो संभवतः इतनी शीघ्रता से इस रचना को हम पाठकों की सेवा में समर्पित नहीं कर पाते। संपादन कार्य सहालकर आपने हमें अपरिमित सहायता प्रदान की है जिसके लिए हम आपके ऋणी हैं। श्री. रिपभदासजी राकाने व्यापार-कुशल विक्रेता के नाते हमें कई उपयुक्त सूचनाएँ दीं और अन्य कई सज्जनों ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हमें मदद दी, उन सब के हम आभारी हैं।

अर्थ-वाणिज्य महाविद्यालय, वर्धा.

१५-९-'५१

—लेखक

विषय-सूची

अध्याय १. विक्रय-कला

विक्रय-कला का महत्त्व, परिभाषा, अर्थशास्त्र के विभिन्न विभागों से सम्बन्ध, ग्राहकों के विक्रय-शाला में प्रवेश करने के उद्देश्य, विशेष प्रकार के ग्राहक और उनके साथ व्यवहार, प्रदर्शन—बाह्य और भीतरी, ग्राहक, विक्रय-उपागमन और विक्रय-वार्तालाप विक्रेता द्वारा प्रारंभ, ग्राहक द्वारा प्रारंभ, विक्रेता का वर्तव्य, वस्तुएँ बतलाना, वस्तुओं का चुनाव, वस्तुएँ किस प्रकार दिग्यायी जायँ, वस्तु के गुणों का दिग्दर्शन, वस्तुओं का व्यवहार, वस्तु का प्रत्यक्ष उपयोग, ग्राहक-विक्रेता प्रश्नोत्तर, प्रतिक्रिया-चिन्ह, सूचना, जँचना और निर्णय, विक्रय समाप्त करना, शिकायत और उनका निराकरण, विक्रय-पश्चात्-सेवा, प्रवास विक्रेता, आदर्श विक्रेता के गुण । १-६९

अध्याय २. विक्रय-प्रणालियाँ

महत्त्व, मध्यजनों का कार्य, अप्रत्यक्ष विक्रेता द्वारा विक्रय—एकल व्यापारी, बहु-विभागी भाडागार, शृंखला विक्रय-शाला, प्रेषादेश व्यापार, द्वार-द्वार विक्रय, क्रयवक्रय पद्धति द्वारा विक्रय, सीधे ग्राहकों को विक्रय, दूरभाष द्वारा विक्रय । ७०-८८

अध्याय ३. विक्रय-प्रवर्तन

परिभाषा, स्वतन्त्र विभाग ही क्यों ? विक्रय-प्रवर्तन के विभाग—अपनी सार्य का विकास, व्यापारी ग्राहकों से संबंध, विज्ञापन विभाग, विक्रेताओं से संबंधित कार्य, प्रपत्र-पत्र, अनुसरण-पत्र, विक्रय प्रतियोगिता । ८९-११२

अध्याय ४. विपणि-अन्वेषण

महत्त्व, हेतु, क्षेत्र, वस्तु का अध्ययन, विपणि का अध्ययन, ग्राहकों का अध्ययन, वितरण मार्ग का अध्ययन, स्पर्धा का अध्ययन, विज्ञापन का अध्ययन, विपणि-अन्वेषण और विक्रय-आन्दोलन । ११३-१३२

अध्याय ५. विक्रय-संगठन

महत्त्व, क्षेत्र, अन्य विभागों से सम्बन्ध, संगठन, क्रय-नीति, विक्रय-नीति, मूल्य निर्धारण नीति, आर्थिक नीति, कानूनी नीति, विक्रय-प्रबंधक—कार्य, विशेष

-कर्तव्य, आवश्यक गुण, विक्रेता की भर्ती, चुनाव और प्रशिक्षण, विक्रेताओं का पारिश्रमिक, विक्रेताओं पर नियंत्रण, विक्रय अभिकर्तृत्व और उसका नियंत्रण, विक्रय-प्रदेश, शाखा कार्यालय और उनका नियंत्रण, विक्रय अनुमान-पत्रक, विक्रय अभ्यंश, विक्रय परिव्यय, नियंत्रण में समकौ, बिन्दुरेखों, नकशों और चित्रों का उपयोग ।

१३३-१९६

अध्याय ६. विक्रय-विज्ञापन

विज्ञापन की परिभाषा, महत्त्व, सीमायें, आलोचना, मनोविज्ञान का विज्ञापन के साथ संबंध—विज्ञापन-माध्यम, विज्ञापन-प्रतिलिपि—प्रतिलिपि के गुण, शीर्षक शीर्षक का निर्माण ।

प्रतिलिपि लिखना प्रारंभ करने के पूर्व, प्रतिलिपि लिखते समय, विज्ञापन-टोचा कैसा हो ? टाइप ।

१९७-२३२



विक्रय : कला, संगठन तथा विज्ञापन

Salesmanship, Sales-Organisation and
Advertising.

: १ :

विक्रय-कला (Salesmanship)

विक्रय-कला का महत्त्व

मानव-उत्थान के इतिहास में १५ वीं शताब्दी वह महत्त्व रखती है कि उसे भुलाया नहीं जा सकता। इस शताब्दी ने मानव के जीवन में वह परिवर्तन कर दिया है कि जिसे अब भिटाया नहीं जा सकता। १५ वीं शताब्दी में यूरोप में वाष्पयंत्र (Steam Engine) और तेल यंत्र (Oil Engine) ढूँढ निकाले गये। तदोपरान्त दिन-ब-दिन नये नये आविष्कार होते ही रहे जिनकी सहायता से उत्पादन का कार्य तेजी से होने लगा। यंत्रों द्वारा उत्पादन ने संसार के देशों की आत्म-निर्भरता व स्वावलंबीपन की जड़ों पर यहाँ तक तोड़ डाली कि २० वीं शताब्दी में उन्नत देश के किसी देश को भी स्वावलंबी कहलाने का गर्व नहीं है। देश के आर्थिक ढाँचे टूटने लगे और जिन देशवासियों ने समय की गति को पहचान कर अपने कदम बढ़ाये वे उस दौड़ में अधिक पीछे नहीं रहे; परन्तु भारत जैसे देश ने, जो कि उस समय वाणिज्य व व्यापार में अग्रगण्य था, समय के साथ बदलने की कोशिश नहीं की और आज दुनिया के महान् देशों में काफी पिछड़ा हुआ है। चाहे आज हम अपने अध्यात्मवाद की राख लगाकर दुनिया के सामने कितनी ही डोंगें हों; परन्तु वास्तविकता भुलाई नहीं जा सकती।

कुछ शताब्दियों तक ब्रिटेन ने दुनिया के व्यापार-क्षेत्र में अपना अगुआ-पन रखा और उत्पादन-व्यय कम करने तथा यन्त्रों की कार्य-शक्ति बढ़ाने की ओर खूब ध्यान दिया। दुनिया की विपणि में अन्य कोई प्रतिस्पर्धी न होने के कारण लाभ भी खूब उठाया; परन्तु स्थिति बदलने में समय अधिक नहीं लगा। वस्तुओं के उत्पादन के साथ ही साथ दुनिया के अन्य देश (जर्मनी, जापान, अमेरिका इत्यादि) एक नये आविष्कार के साथ विपणि में उतरे। केवल उत्पादन ही सब कुछ नहीं। जब तक उत्पादित वस्तुएँ विक्रिती गईं तब तक इंग्लैंड को वितरण की ओर ध्यान देने की आवश्यकता ही न रही; परन्तु जब दूसरे देश वितरण के उत्तम साधनों के साथ विपणि में आये तब इंग्लैंड के उत्पादक विक्रय करने में उनका मुकाबला नहीं कर सके। सन् १९२८ में देशी और विदेशी विपणन (Marketing) की तहकीकात करने तथा सुझाव देने के लिये नियुक्त की गई समिति ने अपने सुझावों में उक्त सत्य जाहिर किया। जिस तरह भारतीय गृह-उद्योगपतियों ने १५ वीं शताब्दी के पूर्व केवल उत्पादन की ही ओर ध्यान दिया और विपणन तथा विक्रय-कला को बिलकुल मुला धैटे, ठीक वही हालत अंग्रेजों की हुई। वे उत्पादन कार्य में तो करोड़ों रुपये खर्च करते रहे, पर विक्रय-कला की ओर से विमुख हो गए। यह बात अधिक समय तक नहीं रही और आज वे फिर अन्तरराष्ट्रीय विपणि (Market) में पूर्ण उत्साह के साथ आगे बढ़ रहे हैं। यदि भारत को अपनी आर्थिक उन्नति करनी है, तो उसे भी अपनी सूझ से न सही परन्तु दूसरे देशों से सबक सीखकर अपनी विक्रय-कला की ओर ध्यान देना चाहिये। भारतीय व्यवसायी आज अपने आप को विक्रेता कहलाने का अधिकार नहीं रखते। भारत का वाणिज्य समाज आज अपने बाप-दादा की रूढ़ि चला रहा है; उसमें कोई उत्साह नहीं, व्यापार की कोई लगन नहीं। यदि भारत इन्हीं विक्रेताओं के बल पर एक उन्नत और उद्योगी राष्ट्र बनने का स्वप्न देखता रहा, तो वह केवल स्वप्न ही रह जायगा।

किसी भी व्यापार की धमनियाँ विक्रय कला है। यदि देश की विक्रय-कला ही उन्नत नहीं है तो उत्पादित वस्तुओं के लिये माँग उत्पन्न नहीं की जा सकती और माँग के अभाव में देश की निर्माणियां बंद कर देनी होंगी, जिससे देश में बेकारी फैलेगी। यंत्रों के युग में उत्पादक उपभोक्ताओं के पास न रहकर दूर बसता है। उत्पादक का कार्य तब तक पूर्ण नहीं कहा जा सकता जब तक

उत्पादित वस्तुओं को उपभोक्ताओं के हाथों में नहीं पहुँचाया जाता। उपभोक्ताओं तक पहुँचाने का कार्य विक्रय-कला का है याने “देश की उत्पादित वस्तुओं के लिये योग्य विपणि ढूँढना विक्रय-कला का कार्य है”। यह कार्य जितनी योग्यता से किया जायगा, देश उतना ही उन्नत होगा। उद्योग-व्यवसाय बढ़ेगा, देश में बेकारी की समस्या हल होगी और जनता का जीवन स्तर बढ़ेगा। परन्तु यदि वितरण कार्य की अवहेलना की गई तो देश को भुखमरी और बेकारी का शिकार होना पड़ेगा जैसा कि आज भारत है। यदि भारत को अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा पुनः प्राप्त करना है तो इस देश के युवकों को विपणन तथा विक्रय-कला के तत्त्वों का अध्ययन करना होगा। हर व्यापारी को योग्य विक्रेता बनना होगा। हमें इस कार्य को करने में बिल्कुल विलम्ब न करते हुए विपणि (Market) में चारों ओर से प्रयत्न जारी कर देना होगा। विपणि पर केवल एक ओर से चढ़ाई करने से कार्य को सफलता नहीं मिल सकती। हमारे व्यापार-व्यवसायियों को विदेशों से हमें पूर्ण जानकारी देना चाहिये कि किस देश में किस वस्तु की माँग है और भारतीय व्यापारी वहाँ अपनी वस्तुएँ किस प्रकार बेच सकते हैं। इसमें सरकार के सक्रिय सहयोग की परम आवश्यकता है।

सरकार के अलावा वाणिज्य वेधम (Chambers of Commerce) को उच्च स्तर से बाँटें कर और गैर सरकारी तौर पर प्रसविदा कर देशी-विदेशी व्यापारियों से घनिष्ठ सम्बन्ध प्रस्थापित कर देना चाहिये और योग्य व्यक्तियों को विदेशों में भेजकर अपने देश के व्यापार की हर तरह से प्रगति करनी चाहिये। यह प्रारंभिक मजबूत नींव तैयार करने के पश्चात् विज्ञापन द्वारा अपनी ख्याति विश्व-निर्माण के कोने-कोने में फैलाकर आकृष्ट ग्राहकों को योग्य विक्रेताओं की सेवा समर्पित कर पूर्ण संतोष प्रदान करना होगा।

विक्रय-कला की परिभाषा

विक्रय कला-विशारदों ने इस विषय की भिन्न भिन्न शब्दों में परिभाषा की है जिनमें से प्रमुख परिभाषायें ये हैं—

‘विक्रय-कला याने उकसाना (persuade) वैज्ञानिक ढंग से योग्य पद्धति द्वारा उकसाना।’

—हली और स्टार्च।

‘कुछ लोगों को कुछ और जिनके कारण से विनिमय में पूर्णता आती है, उन सब वस्तुओं का विक्रय करने की कला विक्रय-कला का हिस्सा है।’

—फाऊलर

‘जहाँ योग्य वस्तु निर्माण होती है वहाँ से वह लोगों को आवश्यक हो उस स्थान में उपलब्ध करा देना यही विक्रय-कला है।’

—फ्रेड्रिक

‘विक्रय-कला वैयक्तिक सेवा है जो वस्तुओं के विपणन कार्य में समाज को प्रदान की जाती है। यह वह सेवा है जो उत्पादक और वस्तु-वितरकों को अत्यावश्यक है, और उपभोक्ता को भी।’

—एच. डब्ल्यू. हाफटन

उपर्युक्त परिभाषाओं में से श्री इली और स्टार्च की परिभाषा स्पष्ट रूप से अपूर्ण है। उस परिभाषा में ‘उत्कसाना (per-suasion)’ शब्द का प्रयोग किस अर्थ में किया गया है इसका कोई उल्लेख नहीं है। वास्तव में उस परिभाषा को “वस्तुओं का क्रय और सेवाओं का क्रय इस संघ में ‘उत्कसाना’ शब्दों के प्रयोग द्वारा परिपूर्ण बनाना चाहिये था।

श्री फाऊलर ने अपनी परिभाषा में केवल ‘विक्रय’ शब्द को ही विशेष महत्त्व दिया है। वास्तव में विक्रय-कला का मुख्य अंग ‘विक्रय’ नहीं, बल्कि वस्तु-विक्रय द्वारा उपभोक्ताओं को संतोष प्रदान करना है।

श्री. फ्रेड्रिक ने भी वही गलती की है। आपके मतानुसार वस्तुओं का योग्य स्थान पर स्थानान्तरित कर विक्रय करना ही विक्रय-कला है। किन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि उपभोक्ताओं का संतोष वितरण-कार्य पर ही निर्भर नहीं रहता।

श्री हाफटन की परिभाषा काफी हद तक ठीक है। किन्तु आपने वस्तुओं के साथ साथ सेवाओं के विक्रय का उल्लेख नहीं किया है।

उपर्युक्त विवेचन को ध्यान में रखते हुए सरल और अर्थपूर्ण शब्दों में विक्रय-कला की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है :

“वस्तुओं और सेवाओं के विक्रय द्वारा समाज को प्रदान की जानेवाली वह सेवा, जिससे ब्रेता और विक्रेता दोनों को पूर्ण रूप से संतोष प्राप्त हो, विक्रय कला है।”

अतः विक्रय कला केवल वस्तुओं को हस्तान्तरित करना ही नहीं है। यदि यह बात होती तो यंत्रों के उपयोग से ही विक्रय होता रहता। किन्तु

हम देखते हैं कि संभव होते हुए भी विक्रय विभाग में यंत्रों का अधिक उपयोग नहीं किया जा रहा है। इसका कारण यह है कि ग्राहक केवल वस्तुएं खरीदने विपणि में नहीं जाते, वस्तुओं द्वारा संतोष प्राप्त करने जाते हैं। संतोष मानसिक वृत्ति है जो केवल यंत्रों द्वारा प्राप्त नहीं की जा सकती। मानवी स्पर्श से ही वह प्राप्त हो सकती है और इसीलिए विक्रेताओं का स्थान यंत्र अब तक भी नहीं ले सका है।

इसी प्रकार केवल वितरण कार्य को विक्रय-कला मान बैठना भी त्रम ही है। वितरण के अलावा सार्य का पूरा संघटन और हानिभय (Risk) की पूरी जिम्मेवारी का समावेश विक्रय-कला में है। वितरक इन दोनों जिम्मेवारियों को स्वीकार नहीं करता। इसके अलावा पूँजी तथा अन्य साधन एकत्रित करने और आयात-निर्यात के प्रवध का समावेश भी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से विक्रय-कला में हो जाता है।

उपभोक्ताओं की आवश्यकतानुसार वस्तुओं का वितरण ही विक्रय-कला नहीं हो सकती। विक्रय की गयी वस्तुएं उपभोक्ताओं को योग्य संतोष प्रदान कर रही हैं या नहीं यह देखना विक्रय-कला का एक प्रमुख अंग है। रेडियो का उदाहरण लीजिए— ग्राहक को वस्तु दे दी और राशि प्राप्त कर ली, इतने से ही विक्रय कला समाप्त नहीं होती। रेडियो की पूर्ण जानकारी, सावधानी, प्रत्यक्ष उपयोग आदि बातें उसी में समाविष्ट हैं और विक्रय-पश्चात् भी वस्तु ठीक कार्य कर रही है या नहीं यह देखना भी उसमें समाविष्ट है।

ग्राहकों द्वारा अभियाचन (Demand) प्राप्त होने पर उन्हें वस्तुएं प्रदान (Supply) करना ही विक्रय-कला नहीं हो सकती। उसमें कला और बुद्धिमानी की कोई बात नहीं है। इसके स्थान पर जनता में नयी नयी माँगों की कल्पनाएं निर्माण कर उनकी पूर्ति करने वाली वस्तुओं का विक्रय करना विक्रय-कला का अविभाज्य अंग है।

खराब लिखावट का दोष दूर करने के लिए 'मुद्रलिख' (Typewriter) का उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार के प्रचार द्वारा लोगों में मुद्रलिख की माँग निर्माण करना और फिर मुद्रलिख का उत्पादन कर माँग की पूर्ति करना ही सच्ची विक्रय-कला है।

विक्रय-कला का अर्थशास्त्र के विभिन्न विभागों से सम्बन्ध

विक्रय-कला और उत्पादन

उत्पादक पहले ग्राहक है और बाद में उत्पादक। उत्पादक को 'ग्राहक' कहने में कुछ विरोधाभास-सा महसूस होता है, किन्तु वस्तुस्थिति भुलाई नहीं जा सकती। उत्पादन के पूर्व कच्चा माल, उत्पादन यंत्र, इमारत, उपस्कर और शक्ति-साधन उत्पादक खरीदता है। कच्चा माल और शक्ति-साधनो (विजली, कोयला आदि) तथा यंत्रों का क्रय तो सतत होता ही रहता है। अतः उत्पादक को केन्द्रीभूत विशाल ग्राहक कहने में किसी भी प्रकार की भूल नहीं हो सकती। इस ग्राहक की आवश्यकताओं की पूर्ति विक्रेता दिन-रात किया करते हैं। अतः ग्राहक के नाते उत्पादक का विक्रय-कला के साथ अमिट संबंध है।

उत्पादित वस्तुओं को उपभोक्ताओं के पास पहुँचाने के लिये विक्रेताओं का दूसरा समुदाय आवश्यक होता है। जब तक उत्पादित वस्तुओं का सतत वितरण-प्रबंध नहीं होता तब तक उत्पादक की उत्पादन-नीति योग्य नहीं की जा सकती। अतः उत्पादक को अपनी वस्तुएं अत्यंत संतोषप्रद अवस्था में उपभोक्ताओं के पास पहुँचाने के लिये और उसके जरिये द्रव्य लाभ के लिये विक्रेताओं की सेवा अत्यंत आवश्यक है।

विक्रय-कला और उपभोग

विक्रेता उत्पादक और उपभोक्ताओं के बीच की शृंग्वला है जिसके अभाव में ये दोनों विभाग निष्क्रिय हो जावेंगे। उपभोक्ताओं को अत्यंत शीघ्र गति से नित्य नूतन और योग्य दाम में वस्तुएं प्रदान करना विक्रेताओं का कार्य है। उपभोक्ताओं को परम संतोष देना विक्रय-कला का प्रमुख उद्देश्य है। विक्रेता ग्राहकों की मित्र, मार्गदर्शक और सलाहकार के रूप में सेवा करते हैं। यदि उपभोक्ता सीधे उत्पादकों से वस्तुएं खरीदना चाहेंगे, तो वह एक बड़ा लम्बा कार्य हो जायगा। पत्र-व्यवहार और पूछताछ में ही समय और अर्थ की बरबादी होगी। इसके अलावा समय पर वस्तु पहुँच पायगी या नहीं इसका कोई भरोसा नहीं रहेगा। छोटे-छोटे प्रमाण में भँगाई गयी वस्तुएं महँगी भी होंगी। अतः विक्रेता की सेवा उपभोक्ताओं के लिये एक बड़ी देन है। विक्रेता ग्राहकों को केवल वस्तुएं ही नहीं बल्कि वस्तुओं के उपयोग का

जान भी देते हैं जिसके कारण वस्तुएं पूर्ण रूप से उन्हें सतोप प्रदान करती हैं। सीधे क्रय में कई बार गलती से अवांछनीय वस्तु भी आ सकती है जिसके लौटाने-बदलने की क्षमता पहले पड़ेगी। इसके अलावा विक्रेताओं के घनिष्ठ संबंध के कारण प्रत्यक्ष-विक्रय, प्रभाग शोधन (Installment payment) आदि सुविधाएं ग्राहक पा सकते हैं, जो सीधे उत्पादकों के सम्पर्क के बिना संभव नहीं है।

विक्रय-कला और विनिमय-वितरण

श्रमविभाजन के तत्त्व के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति, संस्था या राष्ट्र वे ही चीजें बनाता है जो अत्यंत सस्ती तथा अत्युत्तम पद्धति से बनाई जा सकती है। अपनी अधिक वस्तुएं बाहर राष्ट्रों में भेजकर उनके बदले में अपने राष्ट्र में न होनेवाली, जीवन के लिये आवश्यक, वस्तुएं विदेशों से मगानी पड़ती हैं। इस विनिमयकार्य में विक्रय-कला अत्यंत उपयुक्त सिद्ध हुई है। विदेशों की विपणियों का अध्ययन कर अपने राष्ट्र का हित सोचते हुए योग्य वस्तुएं आयात करना विदेशी व्यापार करनेवाले विक्रेताओं का कार्य है। यह कार्य तब विक्रेता ही कर सकते हैं। उसी प्रकार प्रान्तों और सूबों के बीच भी वस्तु विनिमय सुसाध्य करना विक्रय कला का ही कार्य है।

सर्वोत्तम विनिमय के लिये योग्य वितरण-नीति का अवलंब जरूरी है। अपनी वस्तुयों की प्रातिशीघ्र गति से, सुरक्षित स्थिति में और कम से कम व्यय में पहुंचाने का विनिमय माध्यम विक्रेता टूटकर प्रतिस्पर्धी संसार में अपने ग्राहकों को सतोप दिया करते हैं। अतः अप्रत्यक्ष रूप से रेलों, मोटरो, जहाजों, हवाई-जहाजों, डाकघरों, और दूरभाषों (Telephone) का विकास काफी हद तक विक्रय-कला की प्रगतिपर निर्भर है, ऐसा कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी।

विक्रय कला और द्रव्य तथा अधिकोष

विक्रय-कला की अभिवृद्धि के कारण उत्पादन में भी क्रान्ति निर्माण हुई। विक्रय-कला ही विशाल प्रमाण में होनेवाले उत्पादन (Large scale production) की सच्ची जननी है। औद्योगिक क्रान्ति के मूल बीज भी हम विक्रय-कला में पाते हैं। यदि विक्रय की प्रत्याभूति (Guarantee) नहीं होती तो बड़े प्रमाण में उद्योग की कल्पना केवल कल्पना ही रह जाती। अब बड़े प्रमाण में ये जो उद्योग प्रारंभ हुए उनके क्रय-विक्रय के लिये विनिमय माध्यम (Medium of exchange) की जरूरत महसूस हुई। वस्तु विनिमय (Barter) पद्धति का

उपयोग इतने बड़े प्रमाण में असंभव था, अतः द्रव्य (Money) का प्रादुर्भाव हुआ। बड़े प्रमाण में चलनेवाले उद्योगों के लिये विशाल पूंजी की जरूरत महसूस होने लगी जो किसी व्यक्ति या संस्था के लिये संभव नहीं था। अतः जनता की वचन को आकृष्ट कर उसे उत्पादन और वितरण कार्य में प्रयुक्त करने वाली अधिकोप संस्थाएँ प्रारंभ हुईं। अधिकोपो ने विक्रय की बहुत ही सेवा की है। अब करोड़ों का व्यापार होता है, किन्तु किसी को राशि गिनकर देना नहीं पड़ती। धनादेशों, विनिमय-पत्रों और हंडियों द्वारा अत्यंत सुगमता के साथ और अत्यल्प वर्तन में अधिकोप यह कार्य करते हैं। विक्रेताओं की द्रव्य लेन-देन की यह जिम्मेदारी हट जाने के कारण वे अपनी शक्ति का उपयोग अपनी विक्रय कला वृद्धिगत कर उपभोक्ताओं को अधिक संतोष प्रदान करने में करते हैं।

ग्राहकों के विक्रय-शाला में प्रवेश करने के उद्देश्य

१. मित्रों या मेहमानों के साथ टहलते-टहलते

कई बार घर पर मित्र आते हैं और कहने लगते हैं 'चलो भाई, कहीं घूम आयें।' प्रातः काल या संध्या समय हुआ तो वे किसी तालाब या नदी के किनारे अथवा किसी पार्क में चले जावेंगे। किन्तु अन्य समय में वे बाजार की किसी सुरभ्य विक्रय-शाला में बैठकर गपशप करना अधिक पसंद करेंगे। इसी प्रकार बाहर गाँव से आये हुए मेहमान भी कहा करते हैं, 'चलो आप के यहाँ के कुछ मित्रों से परिचय तो करा दो'। ऐसे मौकों पर भी लोग विक्रय-शाला की शरण लिया करते हैं। यदि ऊपरी भाव से देखा जाय तो इन सज्जनों का विक्रेता द्वारा किया गया स्वागत निष्फल प्रतीत होगा। पर यह गलत बात है। कई बार देखा गया है कि इस प्रकार के प्रविष्ट लोगोने बड़े बड़े हजारों का क्रय किया है। बात यह है कि व्यक्तियों के मनमें कई सुप्त वासनाएँ होती हैं और उनका मूर्त स्वरूप देख वे जागृत हुआ करती हैं। 'प्राइप वाटर' की बोतल पर अंकित हैंसमुख बालककी ओर देख अपने घर पर दस्त की शिक्षावन के कारण सदा भुन-भुन करने वाले बालक की याद उस सज्जन को आ सकती है और अनपेक्षित विक्रय हो सकता है। इसी प्रकार के कई उदाहरण दिये जा सकते हैं।

यदि किसी की सुप्त वासना जागृत न भी हुई, तो उस में बुरा मानने की कोई बात नहीं है। वस्तुओं का, प्रदर्शनों का और विक्रेता के सभ्यता पूर्ण

व्यवहार का असर किसी न किसी समय कलभूत अवश्य होगा। आगे कभी भी इन लोगों में से किसी को किसी ऐसी वस्तु की ज़रूरत हुई जिसे उन्होंने इस विक्रय-शाला में देखा था, तो उन्हें इस विक्रय-शाला का स्मरण होगा और वे स्वयं आकर या आदेश (Order) भेजकर जरूर क्रय करेंगे। इसी भावना को लेकर कई विख्यात विक्रय-शालाएँ जानबूझकर प्रयत्न करती हैं कि राहगीर, व्यर्थ ही क्यों न हो, उनकी विक्रय-शाला में प्रवेश कर चन्द मिनट वातायनों (Windows) का दर्शन-मुख चले।

२. विश्राम की भावना से या किसी को टालने की दृष्टि से

वाहन के अभाव में और अत्यंत ज़रूरी कार्य के लिये कभी कभी बेवक़्त पैदल ही बाहर निकलना पड़ता है। आदत न होने के कारण बीच ही में विश्रान्ति की आवश्यकता होती है और वे ऐसे ही स्थान पर कुछ क्षण रुकना चाहते हैं जहाँ उन की प्रतिष्ठा के अनुसार स्वागत हो। विक्रय-शालाएँ उन स्थानों में से एक हैं और इस उद्देश्य से प्रविष्ट सज्जन का योग्य स्वागत किया जाने पर तत्क्षण या भविष्य में विक्रय हो सकता है। चलते-चलते एकाएक वर्षा प्रारंभ होने पर लोग अक्सर विक्रय-शाला का आश्रय लिया करते हैं। उनका प्रवेश भी निष्फल नहीं समझना चाहिये। विज्ञापन का यह अच्छा मौका है। इन लोगों को जो जानकारी अब तक नहीं थी, वह अनायास हो सकती है।

चलते-चलते, सामने से किसी ऐसे व्यक्ति को देख, जिसे वह सज्जन टालना चाहता हो, विक्रय-शाला का आश्रय लेना चाहेगा। वैयक्तिक दुश्मनी, अभद्र पुरुष, घर मालिक, माहूँकार आदि व्यक्तियों को कई बार टालना पड़ता है। इस प्रकार प्रविष्ट व्यक्ति के प्रति सहानुभूति पूर्ण व्यवहार व्यक्त करने से उसके दिल में विक्रय-शाला के प्रति प्रेम निर्माण होने पर वह भावी ग्राहक बन सकता है।

अपेक्षित व्यक्ति की, चौराहे पर खड़े रहकर, राह देखने की अपेक्षा विक्रय-शाला में बैठ कर वहाँ से देखना अधिक अच्छा समझ विक्रय-शाला में प्रवेश करने वाले कई लोग देखे जाते हैं। कुछ अनुभूत वासनाओं के लोग, जिन्हें वस्तुओं का उपभोग नसीब नहीं होता, केवल नयनों का मुख प्राप्त करने के लिए विक्रय-शाला में प्रवेश करते हैं। वास्तव में उनकी क्रय-शक्ति इतनी कम होती है कि दृष्टि-मुख के बाद वे बहुधा क्रय नहीं करते हैं। पर विक्रेता को यह नहीं

भूटना चाहिए कि किसी गरीब व्यक्ति के मन में भी किसी वस्तु के प्रति मोह उत्पन्न होने पर वह चाहे दो दिन भूखा रहेगा, कर्ज निकालेगा या चाहे जो करेगा; पर अपनी प्रिय वस्तु जरूर खरीदेगा। अतः केवल जिज्ञासा-त्रिभुज के नाते प्रवेश करने वाले व्यक्तियों की व्यर्थ अहंजन की निगाह से देखना उचित नहीं है। नई वस्तुएँ आने पर या किसी देश में नयी वृत्तान्त खुलने पर दर्शकों की काफी भीड़ लग जाती है। ऐसे मौकों पर दर्शकों के प्रति किसी भी प्रकार की उदासीनता नहीं दिखायी जानी चाहिए। उनकी क्रय शक्ति के प्रवाह को अपनी वस्तुओं के गुणों की ओर प्रवाहित कर विक्रय राशि बढ़ाने की कोशिश की जानी चाहिए।

३. अनिश्चित वस्तु का क्रय करने की दृष्टि से

किसी कर्मचारी को अचानक द्रव्य के रूप में इनाम मिलता है, किसी व्यापारी को एकाएक अनपेक्षित लाभ होता है या किसी किसान को अपेक्षा से अधिक अच्छी फसल होती है। ऐसी स्थिति में प्राप्त अधिक द्रव्य को किन्हीं अच्छी वस्तुओं में विनियोजित करने की लालसा उन में निर्माण होती है और उस अभिलाषा से वे विक्रय-शाला में प्रवेश करते हैं। कौन-सी और किस प्रकार की चीज खरीदनी है यह वे नहीं जानते। इसका निर्णय वस्तुएँ देखने पर करने या उनका विचार रहता है। ऐसी स्थिति में विक्रेता या कर्मव्य हो जाता है कि ग्राहक के लिए उपयुक्त वस्तु ढूँढ़ दे। उसका व्यवसाय, रहन-सहन, रुचि और अन्य सब बातों का विचार कर सुयोग्य वस्तु उसे सुझानी चाहिए और उसका महत्त्व भली भाँति समझा देना चाहिए।

कभी-कभी ग्राहक किसी विशेष प्रसंग के लिए वस्तु खरीदने आता है। अपने मित्र के विवाह-प्रसंग पर भेंट देने के लिए वस्तु, उत्सव-प्रसंग पर विजय-प्राप्त खिलाड़ियों के लिए पुरस्कार, छोटे बच्चे के जन्म-दिवस पर उपहार आदि के लिये वह चीज खरीदना चाहता है। वह स्वयं निश्चित रूप से नहीं जानता कि क्या खरीदा जाय। इस समय विक्रेता को चाहिये कि ग्राहक की इच्छा का वह मनोवैज्ञानिक ढंग से अध्ययन करे और जिस प्रसंग तथा व्यक्ति के लिये वस्तु खरीदी जा रही है उसकी जानकारी अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त कर ले। उसके पश्चात् एक घनिष्ठ सलाहकार की स्थिति में अपने को रख वस्तुका चुनाव करने में ग्राहक का सहायता करनी चाहिये।

४. वस्तु की स्थूल कल्पना है, पर सूक्ष्म कल्पना न रखने वाले

कल्पना काजिए कि ग्राहक कोट का कपड़ा खरीदने आया है। उसे कोटिंग खरीदना है यह तो वह जानता है, पर किस प्रकार का और किस मूल्य तक का कपड़ा खरीदा जाय यह सूक्ष्म निर्णय वह नहीं कर सकता। ऐसे समय पर ग्राहक का वर्ण, आर्थिक स्थिति, व्यवसाय और सामाजिक प्रतिष्ठा आदि बातों की जानकारी बड़ी कुशलता के साथ हमिल कर उस दंग की चीज मुझानी चाहिये। यदि कोई बालक फौटेनपेन खरीदना चाहे तो उसे पार्श्व ५१ या शेफर्ड पेन दिखाना गलत होगा, और किसी बड़े अफसर को ५ रु० वाली जापानी पेन दिखाना एक विडम्बना होगी।

५. निश्चित प्रकार की निश्चित वस्तु खरीदने के लिये

कुल ग्राहक घर से तय करके निकलते हैं कि उन्हें अमुक एक वस्तु खरीदनी है। एक काला में प्रवेश करते ही वे कहते हैं—“गिन जिलेट् ब्लेड्स् दीजिए।” इस समय विक्रेता का कर्तव्य इतना ही है कि मिथा किसी बिलम्ब के इन्धित वस्तु ग्राहक को दे दे। यदि यह वस्तु न हो और ग्राहक बहुत जल्दी में न हो तो बेसी ही दूसरी वस्तु दिखाई जा सकती है।

यदि ग्राहक द्वारा मागी गई वस्तु विक्रेता के पास हो तो देने समय अपनी कला जरूर व्यक्त करनी चाहिये। “आपका चुनाव सर्वोत्तम है” इतना वाक्य भी मुस्काते हुए विक्रेता यदि कह दे तो ग्राहक अपने को बड़ा ज्ञानी समझकर विक्रेता की प्रशंसा में लुप्त हो जायगा।

६. केवल जानकारी हासिल करने के लिये

कभी कभी ग्राहक केवल वस्तु देखकर रखना चाहते हैं। दीपावली नजदीक आई हो तो १५ दिन पूर्व ही घर की स्त्रियाँ विक्रय-शाला में जा कर चीजें देख आती हैं और उनकी जानकारी बाद में घर के पुरुषों को देती हैं। कभी कभी नौकरों को वस्तुओं की पृष्ठताल करने के लिये भेजा जाता है और अनुकूल जानकारी आने पर ग्राहक स्वयं जाता है। यह कार्य छोटे बच्चों पर भी सौंपा जाता है।

उपयुक्त सभी मोकों पर विक्रेता को बड़ी सावधानी के साथ व्यवहार करना चाहिये। अज्ञान विक्रेता ऐसे ग्राहकों पर अस्मर चिढ़ा करते हैं। उन ग्राहकों को कय का पूरा ज्ञान न होने के कारण वे वस्तुओं का मोंग स्पष्ट शब्दों

में नहीं कर सकते। इससे विक्रेता झुझला उठता है। वास्तव में यह गलत है। यदि ये लोग अपने घर जा कर प्रतिकूल खबर दें तो यह निश्चित है कि विक्रेता अच्छे अच्छे ग्राहक खो बैठेगा।

विशेष प्रकार के ग्राहक और उनके साथ व्यवहार

सामान्य ग्राहकों की चर्चा 'ग्राहक' परिच्छेद में की जानेवाली है। उसके पूर्व कुछ असामान्य — विशेष-प्रकार के ग्राहकों की जानकारी रखना जरूरी है। अन्यथा विक्रेता हर किसी के साथ सामान्य ग्राहक के समान ही व्यवहार करना प्रारंभ करेगा। वास्तव में यह जानना अत्यंत आवश्यक है कि ग्राहक सामान्य है या विशेष प्रकार का। यह जानने का सर्वोत्तम मार्ग है विक्रेता का अनुभव। अनुभूति के आधार पर विक्रेता ग्राहक को देखते ही उसकी विशेषताएँ समझ जाता है। विक्रेता ग्राहक की पोशाक, बोलने का ढंग, उसका व्यवहार आदि बातों का अध्ययन कर यह जानकारी प्राप्त कर सकता है। ग्राहकों के विशेष प्रकार निम्न माने जाते हैं —

१. शर्मीला ग्राहक

प्रायः यह बात स्त्री ग्राहकों में पाई जाती है। वे अधिक बोलना पसंद नहीं करती, न ऊपर आँखें उठाकर देखना। अपनी आँखें भूमि की ओर लगाकर अत्यंत मृदुवाणी से इनेगिने शब्दों में अपने भाव व्यक्त करती हैं। ऐसे ग्राहकों के साथ बहुत नम्रता के साथ पेश आना चाहिये। ठट्ठा-मजाक गलती से भी नहीं करना चाहिये। अनेक प्रश्नोत्तरों की अपेक्षा रखना ऐसे समय अनुचित है। अत्यंत कुशलता के साथ ग्राहकों का हृदय पहिचानकर उन्हें योग्य वस्तु दिखानी चाहिये।

शर्मीले पुरुष भी होते हैं। उनके साथ लगातार बोलना योग्य नहीं है, उन्हें लगातार वस्तुएँ भी नहीं दिखानी चाहिये। चार-छः चुनी हुई वस्तुएँ दिखाना पर्याप्त है। उन्हें प्रश्न इसी प्रकार से पूछा जाना चाहिये जिसका उत्तर अत्यल्प शब्दों में और संभवतः 'हाँ' 'नहीं' में दिया जा सके। कुछ शर्मीले ग्राहक केवल इधर उधर देखते रहते हैं, उनकी अपेक्षा होती है कि विक्रेता स्वयं उनसे बात करना प्रारंभ करे। विक्रेता को चाहिये कि उन्हें योग्य स्थान पर बैठकर स्वयं उनकी आवश्यकताओं की जानकारी हासिल कर उन्हें वस्तुएँ दिखा दे। यह भी देखा गया है कि शर्मीले ग्राहक स्वयं प्रेरित नहीं हुआ करते।

दूसरे लोग जो खरीदते हैं उसे अच्छा समझकर वे भी खरीद लेते हैं। शर्मीलेपन के साथ साथ 'अपने निर्णय पर अविश्वास' की कमजोरी भी उनमें होती है। यदि कोई दूसरा ग्राहक चीज खरीद रहा हो और उसकी ओर आशा की निगाह से यह शर्मीला ग्राहक देख रहा हो तो विक्रेता को उस वस्तु का गुण-वर्णन ज़रा ऊँचे स्तर में करना चाहिये ताकि यह ग्राहक भी उसे मुन सके और दूसरे ग्राहक के साथ स्वयं भी क्रय कर सके।

२. उतावला ग्राहक

यह उतावलापन दो कारणों से हो सकता है समय के अभाव के कारण या मूल प्रकृति उतावली होने के कारण। दोनों समय विक्रेता को मॉगी हुई वस्तु तुरन्त पेश कर देनी चाहिये। ऐसी ही वस्तु दिखाई जानी चाहिये जिसकी अधिक चर्चा करने की ज़रूरत न हो। २-४ में अधिक संख्या में वस्तुएं ऐसे समय नहीं दिखानी चाहिये, अन्यथा उतावले ग्राहक ज्यादा भ्रम में पड़कर क्रय विचार स्थगित कर देंगे।

३. निराशावादी ग्राहक

कुछ ग्राहक स्वभाव से शर्मिले नहीं होते, पर उनमें उदासीनता जन्दी आती है। ऐसे ग्राहकों को अधिक संख्या में वस्तुएं नहीं दिखानी चाहिये, वे जन्दी उकता जायेंगे। वेम ही उनके मत के खिलाफ बोलने से भी वे निराश हो जाते हैं। इस ओर भी ध्यान रखना ज़रूरी है। अधिक वार्तालाप के कारण इस प्रकार के ग्राहक घबड़ा जाते हैं, उनकी जीभ लड़खलाने लगती है और शरीर में पसीना बहने लगता है। अतः अल्प भाषण द्वारा सफल विक्रय करने की कला विक्रेता में होनी चाहिए।

४. बाल ग्राहक

बाल ग्राहक के साथ अत्यंत स्नेह एवं सहानुभूति के साथ व्यवहार किया जाना चाहिये। माता-पिता द्वारा बताई गई चीज का नाम याद करते करते बालक विक्रय-शाला में आता है। सहानुभूति के अभाव में घबड़ाकर वह समय पर नाम भूल सकता है। भूल्य हुआ नाम याद कराना भी एक कला है। घर में कौनसी अड़चन निर्माण हुई, कौनसा काम वस्तु के अभाव में रुक गया इसकी जानकारी हासिल कर उस प्रसंग के लिये उपयुक्त दो चार वस्तुओं का नाम लेते ही बालक आनंद से ताली बजाकर कह उठेगा 'हाँ-हाँ; वह यही वस्तु माताजी ने कही थी।' बाल ग्राहक के साथ धोखेबाजी करना घृणापूर्ण व्यवहार है जिस से विक्रेता

बुजुर्गों की भी सहानुभूति खो बैठेगा। वास्तव में पालकों को यह विश्वास हो जाना चाहिये कि छोटा बालक मेजा जाय या बुजुर्ग, वस्तु योग्य ही मिलेगी।

५. स्त्री ग्राहक

स्त्री ग्राहकों के साथ वार्तालाप करते समय मर्यादा का पालन पूर्ण रूप से होना चाहिये। स्त्रियाँ अक्सर अधिक छानबीन करनेवाली होती हैं और अधिक चीजें देखकर चुनाव करना पसंद करती हैं। मजबूती की अपेक्षा सुन्दरता एवं नाजुकता उन्हें अधिक आकृष्ट करती है। इन सब बातों की ओर ध्यान रखा जाना चाहिये।

६. विदेशी ग्राहक

विदेशी ग्राहकों के साथ अत्यंत सभ्यतापूर्ण बात करनी चाहिये। भाषा-ज्ञान के अभाव में विदेशी ग्राहक अपने भावों को कई बार योग्य रूप से व्यक्त नहीं कर पाता। ऐसे समय केवल भावों के आधार पर वस्तु की कल्पना करनी होगी। उच्चारण-दोषों पर व्यंगपूर्ण हँसी करने की कुछ लोगों में आदत होती है। विक्रेता के लिए तो यह बहुत बड़ा दोष है। विदेशी ग्राहक की ठीक अभिलाषा जान कर उसे योग्य वस्तु ढूँढने में सहायता करनी चाहिये। अन्यथा विक्रय-शाला के साथ साथ सारे देश की प्रतिष्ठा को भी धक्का पहुँच सकता है।

७. शारीरिक-व्यंग वाला ग्राहक

बदकिस्मत से किसी को शारीरिक व्यंग का शिकार बनना पड़ता है। ऐसे व्यंगपूर्ण ग्राहक के साथ पूरी पूरी सहानुभूति दिखानी चाहिये। व्यंग के कारण चढ़ने, उतरने, बैठने, बोलने आदि क्रियाओं में उसे किसी प्रकार की दिक्कत हो तो विक्रेता को स्वयं सहायता करनी चाहिये। उसके साथ ऐसा ही व्यवहार हो मानो उसमें कोई व्यंग है ही नहीं।

८. तक्ष ग्राहक

कुछ ग्राहक क्रय में तक्ष होते हैं। उन्हें वस्तुओं का पूरा ज्ञान भी होता है। वे सीधे (Direct) प्रश्न पूछते हैं जिनका जवाब सोच समझकर देना ज़रूरी होता है। प्रश्नोत्तर के बारेमें पूरा विश्वास हो तो ही विक्रेता को उत्तर देना चाहिये। अधूरी और शंकाजनक जानकारी हो तो प्रबंधक या अन्य तक्ष विक्रेता से पूरी जानकारी हासिल कर जवाब देना चाहिए। तक्ष ग्राहक की निगाह से छोटी-सी बात भी नहीं छूट पाती।

९. निश्चयी ग्राहक

कुछ ग्राहक निश्चय करके ही निकलते हैं कि उन्हें एक निश्चित प्रकार की वस्तु खरीदनी है। यदि ग्राहक आते ही कह दे, “तीन वाल्व का हिज मास्टर वाइस का अमुक आकार का रेडियो चाहिये” तो वह वस्तु यदि आप के पास हो तो तुरन्त दिखा देनी चाहिये। ऐसी निश्चित माग के पश्चात् अनावश्यक वार्तालाप की संशय में पड़ना उचित नहीं होगा। कभी कभी निश्चयात्मक वाणी से अपना आदेश व्यक्त करने वाले ग्राहक अपने निर्णय में गलती करते हैं। ऐसे मौकों पर उनकी गलती बतलाने का कार्य बहुत ही कलामक ढंग से करना होगा। ग्राहक के निश्चय के खिलाफ कोई बात कहना आसान चीज नहीं है। उससे उनके आत्मसन्मान को ठेस पहुँच सकती है। साथ ही साथ यह भी आवश्यक है कि उनके गलत निर्णय से उन्हें बचाना चाहिये। ग्राहक और विक्रेता के बीच कितने घनिष्ठ संबंध हैं, उस पर वार्तालाप का ढंग निर्भर रहेगा।

किसी ग्राहक के मन में किसी एक चिह्नाकन के प्रति मोह होता है और उससे अधिक गुणोंवाली अन्य चिह्नाकन की वस्तु वे नहीं खरीदना चाहते। वेस्ट अण्ड वाच कंपनी की घड़ियों के समान गुणों की ही किन्तु कम मूल्य की अन्य कंपनियों की घड़ियाँ निकल चुकी हैं, फिर भी कई ग्राहक सिवा वेस्ट अण्ड कंपनी के अन्य घड़ियाँ बिलकुल पसंद नहीं करते। अतः इस परिस्थिति में विक्रेता को चाहिये कि वह निश्चित वस्तु ही दे दे।

१०. मित्र के साथ आया हुआ ग्राहक

रास्ते से चलते चलते मित्र दीख पड़नेपर ग्राहक उसे लेकर विक्रय-शाला में आता है; या घर ही से वह मित्र को साथ लेकर आता है। मित्र को साथ लाने के दो उद्देश्य हो सकते हैं: केवल कोई साथ हो इस नाते या कय संबंधी सलाह लेने के नाते। पहले प्रकार के मित्र की ओर विक्रेता का विशेष ध्यान देने की जरूरत नहीं रहती, किन्तु यदि तब या अनुभवी के नाते ग्राहक के साथ मित्र आया हो तो उस की ओर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिये। इन मित्रों का व्यक्तित्व इतना प्रबल होता है कि वे ग्राहक को सम्पूर्ण रूप से अपने कन्जे में रखते हैं और अपनी इच्छा के अनुसार उसे निर्णय लेने के लिये मजबूर करते हैं।

११. असंतुष्ट ग्राहक

कुछ ग्राहक सदा असंतुष्ट रहा करते हैं। वे अनेक दूकानों की चीजें देखते फिरते हैं और अन्ततक निश्चय नहीं कर पाते। वस्तु का कोई न कोई दोष वे अवश्य बतलाते रहते हैं और अन्त में केवल मजबूरी के कारण ही वे क्रय कर लेते हैं। सदा 'भुन भुन' करने की उनमें आदत होती है। ऐसे ग्राहकों के साथ पेश आते समय प्रारंभ में उन के साथ वस्तु की बात न करने का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिये। इधर उधर की बातें कर, किसी उल्लास-पूर्ण घटना की चर्चा कर या किसी सुन्दर स्थान का वर्णन कर उन्हें आनन्द के लोक में ले जाना चाहिये। इस प्रकार उनके एक बार प्रसन्न चित्त हो जाने के बाद विक्रय वार्तालाप प्रारंभ करना उचित होगा। चन्द मिनटों के भीतर विक्रेता का कार्य सफल होगा।

प्रदर्शन (Displays)

ग्राहकों की मनावृत्ति और उनके विचारों के मनोविश्लेषण से यह स्पष्ट है कि वे पहले दर्शक हैं और बाद में ग्राहक। कोई भी ग्राहक वस्तु को बिना देखे नहीं खरीदता। अतः विक्रेता को वस्तुओं के आकर्षक प्रदर्शन का प्रबंध करना चाहिये। ग्राहकों को वस्तुएँ बतलाने की प्रणाली बहुत प्राचीन है। रास्तों पर वस्तुओं का ढेर लगाकर, विक्रय-शाला के सम्मुख वस्तुएँ लटकाकर या टांगकर यह कार्य किया जाता था। किन्तु अनेक विशेषज्ञोंने इस शास्त्र का अध्ययन कर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रदर्शनों के बहुत ही आकर्षक मार्ग खोज निकाले हैं जिनका अवलंब वर्तमान विक्रेता को करना ज़रूरी हो गया है।

प्रदर्शन के दो विभाग हैं :—

१. बाह्य प्रदर्शन (Out side display)
२. भीतरी प्रदर्शन (In side display).

१. बाह्य प्रदर्शन :—

ग्राहकों का ध्यान आकृष्ट करने के लिये बाह्य प्रदर्शनों का उपयोग किया जाता है। आकर्षक दृश्य देखते ही मनुष्य एक क्षण वहीं पर रुक जाता है और चित्तमग्न हो जाता है। इस प्रकार का आकर्षक दृश्य देखकर ग्राहक मन्त्र-मुग्ध होता है और अनजाने उसके कदम विक्रय-शाला की ओर बढ़ते हैं।

ग्राहकों को बाहर से विक्रय-शाला के भीतर पहुँचाना बाध्य प्रदर्शन पर निर्भर है। भीतर पहुँचने पर भीतरी प्रदर्शन का कार्य प्रारंभ होगा। जिस प्रकार किसी पुस्तक के प्रति आकर्षण निर्माण करने का सर्वोत्तम साधन उसका आकर्षक मुखपृष्ठ है, उसी प्रकार विक्रय शाला की वस्तुओं के प्रति ग्राहकों के मन में मोह निर्माण करना पूर्णतया बाध्य-प्रदर्शन पर निर्भर है। अब वह पुराना जमाना नहीं रहा जब कि ग्राहकों को विक्रेताओं की भिन्नते करना पड़ती थी। उसके ठीक विपरीत आज ग्राहकों को ग्राह्यी रखने के लिये विक्रेता को पूरी कोशिश करनी पड़ती है। अतः बाध्य-प्रदर्शन की रचना इस ढंग से करनी चाहिये कि 'विक्रय-शाला के भीतर बया है' इस कुन्डल का उत्तर स्वयं विक्रय-शाला ही ग्राहक को दे रही हो और विक्रय-शाला का बाध्य-प्रदर्शन मानों ग्राहकों को भीतर प्रवेश करने के लिये मोहिनी आग्यों से संकेत कर रहा हो। बाध्य-प्रदर्शन विक्रय-शाला की स्वच्छता, प्रवणता और व्यवहार-कुशलता को व्यक्त करने वाला होना चाहिये। बाध्य विभाग वस्तुओं के प्रकार की और उस विभाग के ग्राहकों की मनोवृत्ति एवं भावनाओं की दृष्टि से सुसंगत होना चाहिये। विक्रय-शाला का बाध्य विभाग स्वतंत्र और स्पष्ट होना चाहिये। अड़ोस पड़ोस की विक्रय-शालाओं और वृक्षों से वह दबा हुआ न हो।

विक्रय-शाला का बाध्य विभाग स्पष्ट दीखने के लिये सूर्य-प्रकाश और दीप-प्रकाश की योजना करनी पड़ती है। भीड़ के कारण विक्रय-शाला में दिन में भी विशेष प्रकाश नहीं आ पाता। अतः रात्रि के समय (कभी कभी दिन को भी) विद्युत या अन्य दीपों का प्रबंध जरूरी हो जाता है। द्वार पर लगाये गये दीप विक्रय-शाला चिन्ह, वातायनों का अस्तित्व और द्वार के अड़ोस-पड़ोस की जगह स्पष्ट रूप से दिखा सकें इतने योग्य होने चाहिये। दीपों की संख्या और प्रकाश-शक्ति विक्रय-शाला के आकार और आर्थिक स्थिति पर निर्भर रहेगी। अल्प शक्ति के अनेक दीप लगाने की अपेक्षा अधिक शक्ति के एक या दो दीप लगाना अधिक अच्छा। रास्ते पर लगाए गये म्युनिटीपाल्टी के दीप भी इस प्रकार नियोजित हों जिससे विक्रय-शाला के सामने के हिस्से पर किसी प्रकार की छाया न पड़े। प्रवाह-दीप (Flood Lights) बाहरी विभाग को यदि अधिक सुशोभित करते हों तो उनका उपयोग भी किया जाना चाहिये। दीपों का प्रबंध इस प्रकार हो जिससे विक्रय-शाला पड़ोस की विक्रय-शाला से स्पष्ट और भिन्न दीख सके। प्रकाश अति प्रखर नहीं होना

चाहिये, अन्यथा बाहरी विभाग अनावश्यक प्रमाण में चमकता है और चकाचौंध के कारण आँखों को तकलीफ देता है।

ब्राह्म-प्रदर्शन में ये बातें समाविष्ट हैं :—

१. विक्रय-शाला चिन्ह (Shop Sign)

२. द्वार

३. वातायन-प्रदर्शन (Window Display)

४. प्रकाश

१. विक्रय-शाला चिन्ह (Shop Sign)

विक्रय-शाला का स्वतंत्र अस्तित्व दर्शाने के लिये नाम-फलक का उपयोग किया जाता है। यह विक्रय-शाला की वस्तुओं से संबंधित नाम होता है, विक्रय-शाला का स्वामित्व व्यक्त करने वाला होता है अथवा कभी कभी केवल आकर्षण के नाते सुन्दर सा शब्द समूह इस स्थान के लिए चुना जाता है। उपर्युक्त तीनों प्रकार के क्रमशः उदाहरण— 'स्वदेशी वस्त्र-भांडार', 'रामप्रताप रामरतन अण्ड को०', और 'कोडक' ये हो सकते हैं। नाम-फलक (Sign Board) काष्ठ, धातु या काँच का बनाया जाता है। नाम-फलक पदार्थ की चुनाव करते समय यह ध्यान में रखना चाहिए कि वह मजबूत हो; वर्षा, धूप, सर्दी में खराब न होनेवाला हो और स्वच्छ करने में किसी भी प्रकार की कठिनाई न हो। नाम-फलक का आकार इमारत की बनावट, स्थिति और प्रतिस्पर्धा सार्य के नाम-फलक के आकार पर निर्भर रहेगा। सामान्यतः चौकोन, त्रिकोण और अर्धगोलाकार नाम-फलक उपयोग में लाये जाते हैं। वह ऐसे स्थान पर लगाना चाहिये जिस से पथिक आसानी से उसे देख सके। उसे देखने के लिये सिर उठाने तथा गर्दन और आँखों को उठाने की तकलीफ न हो, इसका विशेष ध्यान रहना चाहिये। यदि विक्रय-शाला का स्थान चौराहे पर हो तो रास्ते के प्रत्येक हिस्से से नाम-फलक देखा जा सके इसका विशेष ध्यान रहे। फलक को लटकाने के भिन्न भिन्न तरीके हैं। कुछ विक्रय-शालाएँ नाम-फलक को दीवार से लगाकर छप्पर के ऊपर लगाती हैं; कुछ दीवार पर झकती हुई स्थिति में लगाती हैं; कुछ बातायनों से सटकर ऊपर लगाती हैं और कुछ दीवार से ९०° का कोण बनाकर लगाती हैं। फलक लगाने का

स्पष्ट नियम नहीं बतलाया जा सकता। अपनी आवश्यकता और ग्राहकों की देखने की सुविधा इन दो बातों को सोचकर विक्रय-शाला इस संबंध में स्वतंत्र रूप से निर्णय कर सकती है। फलक की लिखावट स्पष्ट, शुद्ध और पके रंग में होनी चाहिये। लेखन और चित्रण आकर्षक रखना जरूरी है। कई बार फलक का स्वरूप बड़ा विचित्र एवं विकृत बन जाता है। इस प्रकार उपहास की वस्तु बनाने की अपेक्षा फलक का न लगाना ही अच्छा। रात्रि के समय फलक अच्छी तरह दीख सके इस प्रकार प्रकाश की योजना होनी चाहिये। कई बार विद्युद्दीप नलिकाओं का ही फलक बनाया जाता है। रंगविरंगी नलिकाओं का उपयोग भी इन दिनों प्रारंभ हो गया है। रंग का प्रकाश मन्द होना चाहिये, अन्यथा चकाचौंध से आँखों को काफी कष्ट होता है और विक्रय-शाला के प्रति मन में निंद पैदा होती है। सार्थ का प्रथम प्रभाव फलक (Sign board) द्वारा होता है जो क्रय की प्रेरणा उत्पन्न करने में अत्यधिक महत्त्व रखता है।

२. द्वार

विक्रय-शाला का द्वार बीचोंबीच रखने का एक तरीका है। कभी कभी यह द्वार प्रबंध और सुरक्षा की दृष्टि से एक कोने में भी रखा जा सकता है। कुछ विक्रय-शालाओं का सामने का पूरा हिस्सा खुला रहता है। विक्रय-शालाएँ प्रायः किराये की इमारतों में रहती हैं, अतः कई बार उन इमारतों के जैसे भी द्वार होते हैं, उन्हें ही उपयुक्त बना लेना पड़ता है। द्वार अत्यंत छोटे या अनावश्यक विशाल न हों। द्वारों के आकार और उनकी रचना इस प्रकार होनी चाहिये कि ग्राहक आसानी से आ-जा सके।

द्वार मजबूत पदार्थ (लकड़ी, टीन या लोहे की सीखियों) के बने हुए हों और वे आसानी से खोले तथा बंद किये जा सकें। उनका रंग पक्का और सौम्य होना चाहिये ताकि ग्राहकों की आँखों को संतोष मिले और उनके कपड़ों में आते-जाते रंग न लगे। उनमें कीले या कोने इस प्रकार के न हों जिस से ग्राहकों के कपड़े फटे।

द्वार का बाहरी विभाग स्वच्छ और कीचड़ से अलिप्त होना चाहिये। सामने की सीढ़ियाँ मजबूत और पर्याप्त चौड़ी होनी चाहिये।

३. वातायन प्रदर्शन (Window Display)

विक्रय-शाला के वातायन (खिड़की) में या विक्रय-शाला के सामने के विभाग में कौंच की आलमारियाँ वस्तुओं से सजाकर अपनी वस्तुओं और सेवाओं का विज्ञापन करना यह वातायन प्रदर्शन कहलाता है।

वातायन-प्रदर्शन विज्ञापन का अत्युत्तम साधन है और विशेषकर भारत के लिये वह अत्यंत उपयुक्त है। भारत की ९० प्रतिशत जनता निरक्षर एवं आशिक्षित है; अतः समाचार पत्रों, मासिक पत्रों में छपे हुए विज्ञापन उनके लिये किसी काम के नहीं होते। उनमें वस्तुओं का प्रचार उनके गुण सुनाकर या उन वस्तुओं के प्रदर्शन दिखाकर ही किया जा सकता है। इसलिये भारत में वातायन-प्रदर्शन विक्रय-प्रवर्तन का अनिवार्य साधन है। वातायन विक्रय-शाला का चेहरा है जिसे देख पथिक के मन में योग्य-अयोग्य प्रतिक्रियाएँ उठती हैं। ये वातायन-प्रदर्शन विक्रय-शाला का प्रथम प्रभाव पथिकों के दिल पर अंकित करते हैं। प्रथम प्रभाव बहुधा अन्ततक बना रहता है अतः यह जरूरी है कि वातायन-प्रदर्शनों द्वारा दर्शकों पर गहरा प्रभाव पड़ सके ऐसी योजना हो। ये वातायन विक्रय-शाला का, उसकी वस्तुओं का और विक्रय-नीति का परिचय ग्राहकों को करा देते हैं। वे विक्रय-पूर्व विचारों की भूमिका प्रारंभ से ही ग्राहकों के मन में प्रादुर्भूत कर देते हैं जिसके पश्चात् विक्रेता तुरन्त विक्रय-वातचीत प्रारंभ कर सकता है। इसके कारण विक्रेता का प्रति ग्राहक पीछे लगने वाला समय कम हो कर विक्रय-क्षमता बढ़ती है और विक्रय-व्यय कम हो जाता है। वातायन-प्रदर्शन द्वारा किया जानेवाला विज्ञापन समाचार-पत्रीय विज्ञापनों से केवल भारत में ही नहीं, बल्कि सभी देशों में अधिक महत्त्व रखता है। इस का पहला कारण यह है कि वातायन प्रदर्शन प्रत्यक्ष वस्तुओं का दृश्य व्यक्त करता है और समाचार पत्रों में उनका केवल चित्र होता है। चित्रों की अपेक्षा प्रत्यक्ष वस्तु ग्राहकों को स्वाभाविक रूप से अधिक आकृष्ट करती है। वेमे ही समाचार-पत्रीय विज्ञापन की सफलता अच्छी चित्रकला पर अधिक निर्भर है। यह स्थिति वातायन-प्रदर्शन की नहीं होती। वातायन प्रदर्शन और विक्रय-शाला की समीपता ग्राहकों को क्रय-सुविधा प्रदान करती है और समाचार-पत्रीय विज्ञापन की तुलना में वातायन-प्रदर्शन पर व्यय भी कम होता है। इस

विवेचन का मतलब यह नहीं है कि समाचार-पत्रीय विज्ञापन का कोई महत्व नहीं है; किन्तु समाचार-पत्रीय विज्ञापन की सहायता वातायन प्रदर्शनों द्वारा यदि की जाय तो प्रवर्तन-आंदोलन बहुत ही प्रभावशाली सिद्ध होगा।

वातायनों की स्थिति

वातायन-प्रदर्शन की स्थिति प्रवेश द्वारकी स्थिति पर निर्भर रहेगी। भीतर की वस्तुयें मार्ग से आने जाने वालों को स्पष्ट रूप से देख सकें इस प्रकार वातायन की योजना होनी चाहिये। वातायन यथासंभव प्रमुख प्रवेश द्वार के पड़ोस की खिड़कियों में रखना योग्य होगा; किन्तु यदि प्रवेश द्वार छोटा हो और ग्राहकों को भीड़ के कारण दिक्रत होती हो तो अन्य स्थान पर उसकी योजना की जा सकती है। उनकी रचना इस प्रकार की हो जिससे विक्रय-शाला का अस्तित्व पड़ोस की विक्रय-शाला से भिन्न देख सकें।

वातायन का व्याप और पद्धति विक्रय-शाला के आकार पर निर्भर रहेगी। यदि सामने का ग्रामदा काफी प्रशस्त हो तो चौकोन आकार के भव्य वातायन की योजना करना ठीक होगा। किन्तु यदि विक्रय-शाला कम चौड़ी हो तो शो केसेस (Show Cases) का उपयोग करना अधिक सुविधाजनक होगा। चौकोन वातायन की ऊँचाई सामान्यतः ७ से ८ फीट तक होनी चाहिये। वे इतने अधिक ऊँचे नहीं कि ग्राहक को सिर ऊपर कर के देखना पड़े; उसी प्रकार वस्तुएं नीचे के हिस्से में न रखी जाय जिससे ग्राहकों को झुककर देखना पड़े। यदि प्रदर्शन शो केसेस (Show Cases) में किया गया हो तो उस के अड़ोस-पड़ोस में कुछ खुली जगह छोड़ देनी चाहिये जिससे ग्राहक चारों ओर घूम-फिर कर देख सकें।

वातायन का काँच

पुराने जमाने में वातायन का काँच छोटा रखा जाता था; किन्तु आज के कार्यप्रस्त ग्राहक को उस छोटे से काँच में से झाँककर देखने के लिये फुर्सत नहीं है। अतः वातायन के प्रमाण में भव्य काँच होना चाहिये। काँच ऊँचे दर्जे का और मजबूत होना चाहिये ताकि आते-जाते समय लगने वाले मामूली धक्कों से वह न फूटे। सुबह शाम उसे स्वच्छ करना चाहिये। काँच उत्तम पारदर्शक हो और यथा संभव रंगीन काँच का उपयोग न किया जाय। भीतरी वस्तुओं का दृश्य वास्तविक रूप में ही देखें (विकृत नहीं), ऐसा ही काँच होना चाहिये। प्रकाश के कारण प्रखर प्रतिक्रिया कर आँखों को तकलीफ देने वाला काँच वातायनों में न लगाया जाय।

चौखट (Frame)

वातायन की दृष्टि से चौखट योग्य होनी चाहिये। घरेलू आलमारी के लिये जो चौड़ी चौखट उपयोग में लायी जाती है वैसी चौखट वातायन-प्रदर्शन में उपयोगी नहीं हो सकती। चौखट यथासंभव कम चौड़ी हो और उसका अस्तित्व वातायन के अस्तित्व में समरूप होने वाला हो। लकड़ी की चौखट की अपेक्षा पीतल की कम चौड़ी चौखट इन दिनों अधिक पसंद की जाती है। चौखट मजबूत, उत्तम प्रकार की और कलात्मक होनी चाहिये; किन्तु वह इतनी कलात्मक न हो जिस से ग्राहकों का ध्यान वस्तुओं से हटकर केवल चौखट में ही अटक जाय।

अभिविन्यसन (Window Dressing)

वातायन में आकर्षक ढंग से वस्तुएँ सजाने की कला को अभिविन्यसन कहते हैं। उसकी कलात्मक रचना से ग्राहकों एवं प्रेक्षकों के दिल को आकृष्ट करना उसका उद्देश्य है। जिस प्रकार उद्यान के लता-कुंजों पर सुविकसित पुष्पगुच्छों को देख आँखों पर मोहिनी छा जाती है, उनी प्रकार दर्शकों के मन पर इन दृश्यों द्वारा नशा छा जाना चाहिये। अभिविन्यसन की पूर्व-योजना प्रारंभ से ही सोच समझकर तैयार की जानी चाहिये। किसी प्रकार की उतावली या जल्दबाजी करने से नुकसान हो सकता है। वातायन-प्रदर्शन के दो उद्देश्य हुआ करते हैं : (अ) विक्रय-शाला की एवं वस्तुओं की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये और (आ) प्रत्यक्ष विक्रय प्राप्त करने के लिये। विक्रय-शाला की सेवाओं तथा विशेषताओं को पूर्ण रूप से व्यक्त करनेवाला अभिविन्यसन प्रतिष्ठा बढ़ाता है। यह कार्य स्थायी अभिविन्यसन (compeign window dressing) द्वारा हासिल किया जा सकता है। एक ही तरह का अभिविन्यसन लगातार कई दिनों तक करना स्थायी अभिविन्यसन कहलाता है। यदि अभिविन्यसन का उद्देश्य प्रत्यक्ष विक्रय हासिल करना हो, तो विक्रय अभिविन्यसन (selling window dressing) की सहायता लेनी चाहिए। इस अभिविन्यसन का प्रमुख उद्देश्य मूल्य और उपयोगिता का प्रचार करना है। यह कार्य दो प्रकार से किया जा सकता है : एक तो एक दूसरे से संबंधित वस्तुओं का क्रम से प्रत्येक वातायन में प्रदर्शन करके, या एक प्रकार की वस्तुओं का सभी वातायनों में

प्रदर्शन करके। इसका एक तीसरा प्रकार यह है कि प्रत्येक वातायन में संबंधित सब वस्तुओं का प्रदर्शन करना (जैसे—किसी एक वातायन में कोट, पैट, हैट, टाई, मोटे जूते, आदि का एक साथ अभिविन्यसन)।

अभिविन्यसन योजना कार्यान्वित करना

वातायन में वस्तुओं की रचना करते समय संकलन की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। वस्तुएँ इस प्रकार विभूषित की जानी चाहिये जिस से प्रेक्षक की निगाह सभी वस्तुओं पर सम प्रमाण में स्थिर रह सके। वातायन में रखी हुई कुछ वस्तुएँ अति आकर्षक होती हैं और कुछ कम आकर्षक। अतः इन दोनों प्रकार की वस्तुओं की रचना इस प्रकार की जानी चाहिये जिस से कम आकर्षक वस्तु भी खुलकर दीख सके और ग्राहक का ध्यान आकृष्ट कर सके।

अभिविन्यसन कला में रंगोंका महत्त्व काफी होता है और अभिविन्यसक के लिये यह जरूरी है कि रंग का उसे वैज्ञानिक ज्ञान हो। वस्तु का रंग एवं आकार की दृष्टि से पृष्ठभूमि (Back-Ground) की योजना करनी होती है। पृष्ठभूमि कई बार वस्तु को अति आकर्षक और लुभावनी बना देती है। शीरे मोती आदि गहरे काले या जामूनी मखमल की पृष्ठभूमि पर अधिक लुभावने दीखते हैं। दीप, दीप-नालिका, विद्युत-बल्ब, समई, दीप-आधार आदि वस्तुओं के अभिविन्यसन के लिये वातायन के पीछे रजनी का चित्र अंकित करने वाली पृष्ठभूमि अति योग्य सिद्ध होगी। पास पास की वस्तुओं के रंग भी इस प्रकार के होने चाहिये, जो एक दूसरे को पोषक हो सकें। रंगों के समन्वय पर (Harmony) अभिविन्यसन की सफलता काफी हदतक निर्भर होती है। कोमल सौम्य गुलाबी रंग के पास गहरा लाल रंग आने से गुलाबी रंग सौंदर्य-हीन हो जाता है। यदि फीके बन् (Brown) रंग के पास गहरा नीला रंग रखा गया या फीके पीले रंग के पास गहरा हरा रंग रखा गया तो उन दोनों फीके रंगों की कान्ति नष्ट हो जायगी। अतः इन रंगों की संगति ढालनी चाहिये। किन्तु इस के विपरीत गहरे हरे और सामान्य लाल रंग की वस्तुएं पास में रखने से दोनों की शोभा वर्धित होगी। वस्तुएं यदि रंग-क्रम विकास के अनुसार नियोजित की गयीं तो दृश्य अधिक खुलकर दीखता है।

अभिविन्यसन में प्रकाश भी काफी महत्त्व रखता है। वातायनों के भीतर की वस्तुएं स्पष्ट रूप से और खुलकर दीख सकें इस के लिये प्रकाश-दीपों

की योजना भीतर की जाती है। वातायनों के भीतर खुले दीप नहीं लगाये जाने चाहिये। परावर्तित प्रकाश सौन्दर्यवर्धक और आँखों को आराम देनेवाले होते हैं। अनेक प्रकार के और अनेक दिशा में प्रतिबिम्बक (reflectors) लगाकर आवश्यक स्थान पर उचित प्रमाण में प्रकाश डाला जाता है। नीचे के तल में बत्तन लगाकर उसका ऊपर के हिस्से में प्रकाश डाल परावर्तन (reflection) वस्तुओं पर डालने से वस्तुएँ मोहक दीखने लगती हैं। ऊपर की ओर दीप लगाकर उनके परावर्तन की भी योजना की जाती है। प्रकाश का प्रकार बहुत कुछ वस्तुओं के स्वरूप और वातायन के आकार पर निर्भर रहता है। गहरे रंग की वस्तुओं के लिये प्रखर प्रकाश आवश्यक होगा, इसके विपरीत धीमे रंग की वस्तुएँ सौम्य प्रकाश में अधिक सुन्दर दीखेंगी। प्रकाश समप्रमाण में वितरित होने की योजना होनी चाहिये। वातायन के जिस विभाग में अधिकार अधिक हो उस ओर अधिक प्रकाश डाला जाना चाहिये। सामान्यतः दिन के समय जिस प्रमाण में प्रकाश (धूप नहीं) प्राप्त होता है उतना प्रकाश इन दीपों से रात्रि के समय प्राप्त करना होगा। जहाँ अधिक सर्दी होती है वहाँ पर वातायनों का वातावरण गर्म रखने के लिये भी इन दीपों का उपयोग किया जाता है जिस से वस्तुएँ खराब होने की संभावना कम हो जाती है। अभिविन्यसन में आजकल नली-दीप और प्रवाह-दीपों का उपयोग किया जाता है। उनके प्रकाश में वस्तुएँ मूल स्वरूप की अपेक्षा अधिक सुहावनी दीखती हैं। इस प्रकार वस्तुओं को कृत्रिम रूप से सुन्दर दिखाना योग्य नहीं कहा जा सकता; क्योंकि दूसरे दिन ही सूर्य प्रकाश में वे वस्तुएँ उतनी सुन्दर नहीं दीखती जिसके कारण ग्राहकों के मन में असंतोष पैदा होता है।

अभिविन्यसन मार्गदर्शन

जिन वस्तुओं की माँग काफी प्रमाण में है और जिन वस्तुओं का विक्रय जल्दी होता है, उन वस्तुओं को वातायनों में स्थान दिया जाना चाहिये। इस प्रकार का प्रदर्शन ग्राहकों की माँग और रुचिका प्रतिनिधित्व करेगा जिस से ग्राहकों को संतोष होगा कि विक्रय-शाला हमारी अभिरुचि से परिचित है। वातायनों की वस्तुयें मौसम के अनुसार परिवर्तित की जानी चाहिये। यदि सर्दियों के दिनों में मोजे और स्वेटर्स वातायनों में रखे जाते हैं, तो गर्मी के दिनों में हेट और छाते।

वस्तुओं का आकार और वातायनों का व्याप इन दोनों बातों को सोचकर ही अभिविन्यसन योजना कार्यान्वित की जानी चाहिये। वस्तुओं की रचना अत्यंत सरल और स्वच्छ होनी चाहिये जिसमें प्रसन्न होकर सामान्य ग्राहक भी उसे समझ सके।

अभिविन्यसित वस्तुओं के साथ मूल्य-पत्रक (कार्ड) लगाये जायें या नहीं इस संबंध में विशेषज्ञों की एक राय अबतक नहीं हो पायी है। इसके पक्ष के लोगों का कहना है कि मूल्य-पत्रक ग्राहकों को मूल्य की कल्पना दे देते हैं और अनावश्यक कम या अधिक मूल्य की वस्तुएँ देखते बैठने का समय बचाते हैं। विपक्षियों का मत है कि ग्राहक यदि वस्तु की आवश्यकता महसूस करे तो मूल्य को वह कम महत्व देगा, अतः मूल्य-पत्रकों की कोई ज़रूरत नहीं है और कई बार ये पत्रक ग्राहकों की रुचि में बाधा डालते हैं।

आन्तरिक प्रदर्शन Interior Display

बाह्य-प्रदर्शन का उद्देश्य पथिकों को आकृष्ट कर वस्तुओं तक ले जाना है। वस्तुओं के प्रति निर्माण हुए इस आकर्षण को तीव्रतर बना कर उसे विक्रय में परिणित करना अन्तर्प्रदर्शन का कार्य है। यदि यह ठीक न रहा तो ग्राहक यह समझ बैठेंगे कि बाह्य प्रदर्शन केवल धोखा-मात्र था। परिणामतः विक्रय-शाला की ख्याति को घटका पहुँचेगा।

अन्तर्प्रदर्शन किस प्रकार किया जाय यह विक्रय-शाला के आकार, वस्तुओं का स्वरूप और ग्राहकों की संख्या पर निर्भर रहेगा। यदि वस्तुएँ अच्छे समवेष्टन की और कम मूल्य वाली तथा सब वस्तुएँ एक ही दर की हों तो विवृत (खुला) आन्तरिक प्रदर्शन अधिक उपयुक्त होगा। इस तरह के प्रदर्शन में आलमारियाँ खुली रखी जाती हैं ताकि ग्राहक अपनी इच्छानुसार वस्तुको उठाकर देख सके और रंग, आकार और तरह (design) को चुन सके। इस प्रकार का प्रदर्शन तुरन्त विक्रय बढ़ाने में अधिक सहायक होता है। गिलौने, कपड़ा, औपधि, घरेलू सस्ती वस्तुएँ आदि के विक्रय के लिये यह प्रदर्शन अत्युत्तम सिद्ध हुआ है।

जो विक्रय-शालाएँ मूल्यवान, नाजुक और स्पर्श से कातिहीन होने-वाली वस्तुओं का व्यापार करती हैं, वे समवृत (बंद) प्रदर्शन (Closed displays) करती हैं। वस्तुएँ बंद आलमारियों में रखी जाती हैं ताकि उन्हें

ग्राहक काँच में से देख सकें। मूल्यवान् वस्तुओं के ग्राहकों की यह मनोवृत्ति हुआ करती है कि वे जो वस्तुएँ खरीदना चाहते हैं उन्हें अधिक लोग स्पर्श न करें। सुरक्षा की दृष्टि से यह प्रणाली लाभकारी होती है। टूटने-फूटने, कांतिहीन होने और चोरी जाने के दोषों से यह प्रदर्शन-प्रणाली अलिप्त रहती है। जड़-जवाहर, रसायन, मूल्यवान् घड़ियाँ आदि वस्तुओं के लिये यह प्रदर्शन आवश्यक है।

आन्तरिक प्रदर्शन में वस्तु-रचना

वस्तुओं की रचना आन्तरिक प्रदर्शन में अत्यंत महत्त्व रखती है। ग्राहकों का आकर्षण और विक्रेताओं की कार्य-क्षमता इन दोनों बातों पर रचना-कार्य बड़ा असर डालता है। अतः समुचित योजना के साथ आन्तरिक वस्तु रचना की जानी चाहिये। यदि विक्रय-शाला छोटी हो तो उसमें विक्रेताओं की संख्या बहुत ही कम रहेगी और एक ही विक्रेता को अधिक वस्तुएँ दिखानी पड़ेंगी। अतः यथासंभव वस्तुएँ गणित्र (Counter) के बिल्कुल करीब सजाना उचित होगा। इससे दो लाभ होंगे : ग्राहकों के सम्मुख वस्तुओं का पूरा दृश्य स्वच्छ होने के कारण वे आसानी से देख सकेंगे और वस्तुएँ दिखाने तथा घापिस रखने में अधिक समय बरबाद नहीं करना पड़ेगा। इस तरह की रचना के लिये कम मूल्य की, छोटे आकार की तथा अधिक माँगवाली वस्तुएँ योग्य मानी जाती हैं। गणित्र (Counter) ग्राहकों के ठीक सम्मुख आवे इस प्रकार ग्राहकों के बैठने का प्रबंध किया जाना चाहिये। तिरछी निगाह से या पीछे मुड़कर वस्तुएँ देखने का कष्ट ग्राहकों को नहीं होना चाहिये। कई बार विक्रेता कुर्सियों के पीछे की दीवार पर वस्तुएँ लटककर सजावट करने की गलती करते हैं।

बड़ी विक्रय-शाला में अलग अलग विभाग रहेंगे। उनके गणित्र [Counter] पर वस्तुएँ सजाई जानी चाहिए। प्रमुख प्रवेश-द्वार के भीतरी विभाग में और प्रत्येक विभाग के प्रवेश-द्वार के पास भी ऐसी वस्तुएँ सजाई जायें जो उस विभाग का प्रतिनिधित्व करती हों। गणित्र सजाते समय बड़े ध्यान में रखना चाहिये कि नूतन भूषाचार और शैली [Style] की वस्तुएँ सामने के हिस्से में रखी जायें ताकि उनकी नूतनता ग्राहकों के मन को शीघ्र लुभा ले। हमेशा के प्रचार की वस्तुएँ जरा दूर के विभाग में रखने पर कोई विशेष हर्ज नहीं होगा। जिस प्रकार पुष्प-माला के बीच-बीच हरे पत्ते गूँथकर उसकी शोभा

बढ़ायी जाती है, उसी प्रकार नित्य की वस्तुओं के बीच-बीच में नये ढंग की और आकर्षक लेकिन उसी प्रकार की वस्तुएँ रखकर ग्राहकों की उत्सुकता बाँधित की जानी चाहिये। उदाहरणार्थ बिजली के बल्बों के बीच-बीच में दीप-स्थान [Lamp Stand] या साड़ियों के बीच में साड़ियों से शृंगारित पुतलियाँ रखना योग्य होगा। उसी प्रकार इन प्रदर्शनों के बीच-बीच में उसके उपयोगों के चित्र और विशेष सूचनाओं के तथा सुविधाओं के सूचना-पत्र रखने से वस्तुओं का आकर्षण और सार्थ की ख्याति अधिक बढ़ जाती है।

वस्तु प्रदर्शन (Architectural Display) भी वस्तु-रचना की एक प्रणाली है। किसी एक प्रसंग की सभी वस्तुएँ एक साथ सजाने से वह दृश्य अत्यन्त वास्तविक एवं मनोहर प्रतीत होगा और ग्राहक के दिल में उस दृश्य के प्रति मोह पैदा होगा। यदि किसी विभाग में कप, केटली, ड्रे, सुपारीदान, पानदान, इत्रदान, गुलाबदान, सोंपकेस आदि वस्तुएँ सजा दी जायँ तो कितना नयनमनोहर दृश्य निर्माण होगा! इसके विपरीत किसी एक विभाग में बुजुर्गों के जूते, स्त्रियों की चप्पलें और सैनिक का जूता आदि वस्तुएँ एकत्र सजाई जायँ तो कितना विचित्र दीखेगा!! अतः इस प्रकार की विसंगति से सजावट का हमेशा बचना चाहिये।

विक्रय-शाला के कोने की दीवारें भी वस्तुओं से सजायी जाती हैं। यह सजावट सरल नहीं है, अतः विशेषज्ञों की सहायता यहाँपर ज़रूरी होगी। यदि वस्तुओं की अधिक भीड़ हो जाय या आवश्यक कमी हो जाय तो शोभा बढ़ने की अपेक्षा दृश्य भद्दा दीखेगा।

प्रदर्शन वर्गीकृत वस्तुओं द्वारा दिया जाना चाहिये। यदि रेडियो सजाने हों तो विक्रय-शाला के पास जितने भी प्रकार के रेडियो होंगे, उन सबका प्रदर्शन एकही विभाग में किया जाना चाहिये, ताकि ग्राहकों को तुलना के पश्चात् चुनाव करने की सुविधा मिल सके।

प्रदर्शनों-द्वारा सार्थ की विशेषता स्पष्ट रूप से व्यक्त हो जानी चाहिये। यहाँ पर स्त्रियों के ब्लाऊज़ का उदाहरण दिया जा सकता है। यदि विक्रय-शाला तैयार ब्लाऊज़ का विक्रय करती हो तो उसका कपड़ा, उसकी फटाई, उसकी सिलाई, गुँथियों का लगाया जाना आदि बातों की अलग अलग रूपसे विशेषताएँ बतलाई जा सकती हैं।

प्रदर्शनों की रचना इस प्रकार की होनी चाहिये जिससे विक्रेता और प्राहकों के लिये प्रवेश-सुगमता (accessibility) निर्माण हो सके। जिन वस्तुओं की बड़े प्रमाण में और प्रतिदिन माँग होती है वे वस्तुएँ गणित्र (Counter) के पास की आलमारियों में रखी जानी चाहिये ताकि हर समय आने-जाने का श्रम बच जाय। वातायनों और आलमारियों में सजाई हुई वस्तुएँ प्राहक घूम फिर कर आसानी से देख सके इतनी प्रवेश-सुगमता की गुंजाइश होनी चाहिये।

आन्तरिक प्रदर्शन की वस्तुएँ बीच-बीच में आवश्यकतानुसार बदल दी जानी चाहिये। परिवर्तन का कोई निश्चित नियम नहीं बतलाया जा सकता। विक्रय-शाला अपने अनुभव और विपणि-रिवाजों के अनुसार यह परिवर्तन कर सकती है। किन्तु सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि गणित्र के ऊपर की वस्तुएँ बहुत कम बदलना चाहिये। बन्द आलमारियों की वस्तुएँ माह में एक या दो बार बदली जा सकती हैं और वर्गीकृत वस्तुएँ ऋतुपरिवर्तन के साथ बदली जानी चाहिये। खुली आलमारियों की वस्तुएँ जब तक खराब नहीं होतीं तब तक बदलने का कोई प्रश्न खड़ा नहीं होता।

प्रदर्शन सहायक अन्य बातें

प्रदर्शन अधिक आकर्षक हो और प्राहकों को सब प्रकार का संतोष विक्रय-शाला में प्राप्त हो सके इस दृष्टि से प्रदर्शन के साथ-साथ निम्न बातें की जानी चाहिये :—

१. स्वच्छता (Cleanliness)

२. क्रमबद्धता (Orderliness)

३. संवातन और तापक्रम (Ventilation & Temperature)

१. स्वच्छता

स्वच्छता विक्रय-शाला का अनिवार्य गुण माना जाना चाहिये। अस्वच्छता के कारण वस्तुएँ खराब तो होती ही हैं साथ ही साथ उनका मूल्य भी प्राहकों की निगाह में गिर जाता है। गंदगी में रखी हुई सर्वोत्तम वस्तु खोजते बैठने के लिये प्राहकों को न समय रहता है, न उनका मन तैयार होता है। इसके विपरीत स्वच्छ स्थान में चमक-दमक के साथ थोड़ी कम दर्जे की वस्तु भी रखी जाय तो उसका मूल्य मूल से अधिक हो जाता है। धूलि, कचरा, दुर्गंध, दर्प, धुंधलापन और आर्द्रता ये विक्रय-शाला के महाशत्रु माने

जाते हैं। इन दोषों के कारण वस्तुएँ खराब होती हैं और ग्राहकों के मन पर भी विपरीत परिणाम होता है। अतः सुबह-शाम विक्रय-शाला का प्रत्येक कोना झाड़-सटककर साफ किया जाना चाहिये। विक्रय-शाला बढ़ाते समय ("बंद करना" शब्द-प्रयोग अशुभ माना जाता है।) खिड़कियों, आलमारियों के द्वार ठीक तरह से बंद किये जाने चाहिये ताकि धूलि, ओस, टंड आदि दोषों का वस्तुओं पर परिणाम न होने पाए। तीव्र प्रकाश या तापक्रम से कुछ नाजुक वस्तुओं की कान्ति निष्प्रभ हो जाती है अतः उन वस्तुओं को विक्रय-शाला के सामने के हिस्से में, जहाँ धूप और प्रकाश तीव्र प्रमाण में होता है, न रखना चाहिए। धूलि का ग्राहकों के मन पर बड़ा विपरीत परिणाम होता है। उच्च वर्गीय और सुसंस्कृत ग्राहक धूलिलिप्त वस्तुओं को स्पर्श करना पसंद नहीं करते। यदि विक्रय शाला का फर्श गंदा हो तो प्रतिष्ठित ग्राहक उस पर से चलना पसंद नहीं करेंगे।

२. क्रमबद्धता (Orderliness)

क्रमबद्धता तत्परता और योग्यता का लक्षण है। वस्तुओं का ढेर लगाए रखना या अव्यवस्थित रूप से वस्तुएँ बिखरे रखना आलस्य एवं बेपर्वाह-प्रवृत्ति का लक्षण है। कम प्रति की वस्तुएँ भी यदि अच्छे ढंग से आलमारियों में सजायी जायँ तो ग्राहकों की निगाह में उन की कद्र बढ़ जाती है। अव्यवस्थित रूप से वस्तुओं को बिखरी रखने से चूहे, दीमक, धूलि, आर्द्रता आदि से काफी हानिभय होता है। उसी प्रकार आते-जाते ठोकें लगने से भी टूट-फूट की काफी संभावना रहती है। किसी एक वस्तुको खोजने के लिये पूरे ढेर को उलटना पड़ता है जिसमें ग्राहकों और विक्रेताओं का समय बरबाद हो कर आपणन राशि (Turnover) कम होती है। साथ ही साथ वस्तुओं को अनावश्यक स्पर्श करने से वस्तुएँ खराब होंगी।

विक्रेता की टेबिल-कुर्सी (या गद्दी-नकिया) स्वच्छ और योग्य स्थान पर होनी चाहिये। ग्राहकों के लिये रखी गयी कुर्सियाँ या बैठने की जगह वस्तु आसानी से देखी जा सके इस दृष्टि से निर्धारित की जायँ। कुर्सियाँ आतानी से एक स्थान से दूसरे स्थान पर रखी जा सकें इस प्रकार का प्रबंध अधिक अच्छा होगा। मृत्युवान चीजों को देखने में अधिक समय व्यतीत करना पड़ता है अतः उन चीजों की आलमारियों के पास बैठने के लिये कुर्सियाँ रखी जानी चाहिये।

यदि जूते, मोजे आदि पहनने की वस्तुओं का विक्रय करनेवाली सार्थ हो तो बैठकर पैर ऊँचे रखने के लिये लकड़े का स्थाप (Stand) रखना चाहिये और प्रत्येक के लिये स्वतंत्र कुर्सी होनी चाहिये ।

गणित्र, मेज और वातायनों के बीच में से आसानी से घूमने-फिरने की खुली जगह होनी चाहिये । सामने के हिस्से की आलमारी से बगैर सीढ़ी लगाये चीजें निकाली जा सकें इतनी ही उनकी ऊँचाई हो । भीतरी आलमारियों के लिये सीढ़ी का उपयोग कर सकते हैं । जवाहरात की आलमारी मजबूत एवं अच्छे तालेवाली होनी चाहिये । इसके विपरीत खिलौने आदि सस्ती चीजों की आलमारियाँ शीघ्र खुल सकें इस प्रकार का प्रबंध हो । काँच की बरनियों की सजावट के लिये काफी चौड़ी आलमारियाँ उपयोग में लायी जानी चाहिये जिससे गिरने और टूटने-फूटने का डर न रहे । कीमती दवाइयों की विक्रय-शाला में नाजुक एवं सूक्ष्म तराजू अत्यावश्यक समझा जाता है । इसके विपरीत किराने की विक्रय-शाला में बड़े-बड़े तराजू कोने में लटकाने हुए होने चाहिये ताकि वस्तुएँ आसानी से तौली जा सकें । बड़ी-बड़ी विक्रय-शालाओं में उच्च दर्जे के और विशेषतः स्त्री ग्राहकों के लिये वस्तुएँ पहन कर देखने के स्वतंत्र कमरे होते हैं । उन में वाचन, लेखन, टेलीफोन आदि की तथा मनोरंजन की सामग्री भी रखी जाती है ।

३. संवातन और तापक्रम

वास्तव में विक्रय-शाला का वातावरण शुद्ध वायु से परिपूर्ण रखने के लिये पर्याप्त खिड़कियाँ और झरोखे आवश्यक होते हैं । इस प्रबंध के कारण ग्राहकों का जी घबड़ाने या दुर्गन्ध फैलने के दोषों से विक्रय-शाला अलिप्त रह सकती है । किन्तु शहर के व्यापार विभाग की इमारतों में पर्याप्त खिड़कियाँ रखना असंभव हो जाता है । अतः पंखों का उपयोग कर ग्राहकों को बहती हवा की सुविधा प्रदान करनी चाहिए । गर्मी के मौसम में खस की टट्टियों का उपयोग अत्यंत सुखदायी सिद्ध होगा । सर्दी के दिनों में वातावरण गर्म रखने के लिये विद्युत तापक (Electric Heater) की योजना कई ठंडे देशों की विक्रय-शाला में की जाती है । बरसात के दिनों में पैर धोने और पोंछने का प्रबंध विक्रय-शाला की सीढ़ियों की बगल में रखना अच्छा होगा । लेकिन उपर्युक्त सारा व्यवसाय की आर्थिक स्थिति देख कर ही किया जाय ।

ग्राहक Customer

व्यापार क्षेत्रमें प्रायः साथों के तीन प्रकार पाये जाते हैं। कुछ छोटी साथ अपना क्षेत्र अपनी विक्रय-शाला तक ही मर्यादित रखती हैं; जिनमें अल्प शो विक्रय-शालाएँ और सहकारी भांडार समाविष्ट हैं। ऐसी विक्रय-शालाओं में ग्राहक स्वयं जाकर क्रय किया करते हैं। कुछ साथ अपने प्रवासी विक्रेताओं द्वारा आदेश एकत्रित कर उनकी वस्तुएँ अपने संग्रह-गृह से या गुदामों से सीधे भेज देती हैं। ऐसी साथों की विक्रय-शालाएँ नहीं होती हैं, न इन्हें प्रदर्शनों की ज़रूरत होती है। इन साथों के विक्रेताओं को ग्राहकों की मुलाकात लेनी पड़ती है। तीसरी प्रकार की साथ उपर्युक्त दोनों कार्यों को किया करती हैं। उनकी खुद की विक्रय-शाला होती है जिसमें आकर ग्राहक क्रय किया करते हैं और उनके प्रवासी विक्रेता बाहर के ग्राहकों के पास जाकर उनके आदेश भी एकत्रित करके भेजते हैं। अतः विक्रेता के लिये यह ज़रूरी है कि वे अपनी विक्रय-शाला में आनेवाले ग्राहकों का मनोवैज्ञानिक ढंग से अध्ययन कर उन्हें योग्य संतोष प्रदान करने की कोशिश करें और साथ ही साथ प्रवासी विक्रेताओं के लिये यह ज़रूरी है कि वे ग्राहकों के स्थान पर जाकर उन्हें संतुष्ट करें और उनसे आदेश प्राप्त करें। विक्रेता के पहले प्रकार के अध्ययन का उल्लेख हम प्रथम करेंगे।

ग्रामों में और छोटे शहरों में जो विक्रय-शालाएँ होती हैं वहाँ के विक्रेताओं का ग्राहकों से काफी नजदीक का परिचय होता है। ये विक्रेता अड़ोस-पड़ोस के देहातों में बसे हुए अपने ग्राहकों की भी अच्छी तरह जानकारी रखते हैं। नई विक्रय-शाला प्रारंभ करते समय अपने देहात के और पास के देहातों के निवासियों की मनोरचना, क्रय-आदतें, रस्मों-रिवाज, क्रय-शक्ति आदि संबंधी समाचार ज्ञात करा लेना नई विक्रय-शाला के विक्रेताओं का कर्तव्य है। इस प्रकार की जानकारी अपने ग्राहकों के स्वभाव और क्रयशक्ति का पूरा अनुमान विक्रेताओं को प्रदान करती है। अतः ग्राहक प्रविष्ट होने पर विक्रय दृष्टि से उसकी ज़रूरत (Urgency) उस समय कितनी होगी केवल यही देखना रह जाता है। जिस आवश्यकता की पूर्ति के लिये ग्राहक क्रय करने विक्रय-शाला में आता है उस कार्य पर उसकी ज़रूरत की तीव्रता निर्भर रहेगी। यह तीव्रता प्रायः वार्तालाप के प्रथम वाक्य में ही व्यक्त हो जाती है। ज़रूरत के अनुसार क्रय-तीव्रता बढ़-घट सकती है। यदि घर में किसी का विवाह हो और आर्थिक परिस्थिति की दृष्टि से कोई एक चीज खरीदना संभव

न हो, तो भी कूटि के नाते और लोक-लज्जा के लिये वह वस्तु खरीदनी ही पड़ेगी ।

बड़े शहरों की विक्रय-शालाओं के विक्रेताओं के लिये यह संभव नहीं है कि अपने ग्राहकों के निकट सम्पर्क द्वारा उनकी जानकारी रखें । नित्य के कुछ ग्राहकों की जानकारी रह सकती है और परिपूछन (Inquiry) द्वारा कुछ बड़े ग्राहकों की जानकारी हासिल की जा सकती है । मोटर रखनेवाले, रेडियो का उपयोग करनेवाले टेलीफोन रखनेवाले और आय-कर (Income tax) देनेवाले लोगों की जानकारी सरकारी कार्यालयों से प्राप्त कर उनकी क्रय-शक्ति का अनुमान लगाया जा सकता है । साथ ही साथ डॉक्टर, वकील, अध्यापक-प्राध्यापक, सरकारी उच्च कर्मचारी आदि ग्राहकों की क्रय-शक्ति के बारे में जानकारी आसानी से हासिल की जा सकती है । इसके अलावा इन विशेष (distinguished) ग्राहकों के स्वभाव, क्रय-रुचि और व्यय करने की आदतों के संबंध में जानकारी भी सहज रूप से प्राप्त की जा सकती है । यह सारी जानकारी ध्यान में रखते हुये इन ग्राहकों के साथ विक्रेताओं को व्यवहार करना चाहिये ।

उपर्युक्त विशेष प्रकार के ग्राहकों की संख्या बहुत सीमित है । विक्रय-शाला में प्रायः ऐसे ही ग्राहक प्रविष्ट होते हैं जिनकी जानकारी विक्रेताओं को नहीं होती । ऐसे ग्राहकों का अध्ययन करने में ही विक्रय-शाला की सच्ची कसौटी है । विक्रय-शाला में आनेवाला ग्राहक किस वाहन पर आया, यह प्रथम महत्व की बात है । मोटर, तागा, साइकिल या पैदल इनमें से जिस साधन का उपयोग ग्राहक करता है उसमें उसकी आर्थिक स्थिति का संकेत मिल जाता है । किन्तु इस संकेत को निर्णयात्मक स्वरूप में स्वीकार नहीं करना चाहिये । ग्राहक की पोशाक उसकी क्रय-शक्ति और मनोरचना की कल्पना व्यक्त करेगी । उसकी विक्रय-शाला में प्रवेश-पद्धति, देखने का तरीका, चेहरे के भाव आदि बातों से उस के स्वभाव एवं सामाजिक प्रतिष्ठा जानी जा सकती है । प्रवेश के पश्चात् प्रदर्शनी में रखी हुई किन वस्तुओं का (मूल्यवान, कलापूर्ण आदि) और किस ढंग से ग्राहक निरीक्षण करता है यह भी उसके अभिप्राय को दर्शायेगा । इन सब बातों का गहराई से अध्ययन करने के पश्चात् ग्राहक का स्पष्ट व्यक्ति-चित्र विक्रेता के सन्मुख खड़ा होगा जिस के आधारपर वह अपने बार्तालाप की भूमिका तै कर सकेगा ।

विक्रय उपागमन और विक्रय वार्तालाप

(Sales Approach And Sales Talk)

बाल-प्रदर्शन द्वारा आकृष्ट होनेपर ग्राहक जब विक्रय-शाला में प्रवेश करता है तब उसकी क्रयशक्ति, व्यक्तित्व और अक्षरत का अंदाज़ कर क्लरमक ढंग से उसका स्वागत करना चाहिये। विक्रेता की मुसकानपूर्ण मूर्ति देखकर ही ग्राहक का मन पुलकित होना चाहिये। उसके पश्चात् यह सवाल खड़ा होता है कि विक्रेता भाषण को स्वयं प्रारंभ करे या ग्राहक को प्रथम अपना हृद्गत व्यक्त करने दिया जाय। इस बात का निर्णय समयानुसार करना होगा।

विक्रेता भाषण प्रारंभ कब करे ?

यदि ग्राहक प्रवेश-पश्चात् सीधे गणित्र (Counter) की ओर आ रहा हो तो विक्रेता को खड़े होकर विनय के साथ मंद स्मित-मुख से स्वागत कर भाषण प्रारंभ करना चाहिये। किन्तु यदि ग्राहक सीधे वातायनों या प्रदर्शन-आलमारियों—(इश्य काचावरण Show Cases) की ओर जा रहा होगा तो उससे भाषण कर उसे विचलित करने की गलती नहीं करनी चाहिये। वस्तुओं के दृश्य में उसे तल्लीन होते समय उसके चेहरे पर जो भी भाव प्रकट होंगे उनका सूक्ष्म निगाह से विक्रेता अवलोकन करता रहे जिससे वस्तुओं के प्रति ग्राहक के मन में क्या विचार उठ रहे हैं इसका पता चले। भाव-भंगियों द्वारा और साथ में यदि मित्र हो तो उसके पास व्यक्त किये गये उद्गारों की ओर ध्यान रखकर उन प्रश्नों का उत्तर बाद में किस प्रकार दिया जा सकेगा इसकी पूर्व-भूमिका विक्रेता को अपने मन में तैयार कर के रखनी चाहिये। प्रदर्शन अवलोकन पश्चात् जब ग्राहक गणित्र की ओर बढ़े तब उसका अत्यंत अदब के साथ स्वागत करना चाहिये। स्वागत के समय कैसी भाषा का प्रयोग हो यह ग्राहक और विक्रेता की पूर्व-पहिचान या उनके संबंधों पर निर्भर रहेगा। भारत में विशेषतः स्त्री-ग्राहकों के साथ प्रारंभिक वार्तालाप करते समय काफ़ी सावधानी रखनी चाहिये। यदि बाल-ग्राहक हो तो उसके साथ भाषण इसी प्रकार प्रारंभ करना चाहिये जिससे उसे किसी प्रकार का संकोच न हो और वह चुप्पी साध ले।

यदि ग्राहक प्रदर्शन-आलमारियों या इश्य काचावरण (Show Cases) को न देखते हुए सीधे गणित्र की ओर आ रहा हो तो, “मैं आप की क्या सेवा कर सकता हूँ ?” अथवा “आइए, बहुत दिनों बाद इधर आये आप कहीं बाहर

गांव गये थे क्या ?” इस प्रकार के प्रश्नों द्वारा—वार्तालाप प्रारंभ किया जाना चाहिये। यदि ग्राहक कुछ ढूँढ़ रहा है और उसे वह वस्तु दीख नहीं रही ऐसा महसूस हो, तो विक्रेता शीघ्र उसके पास पहुँच कर, “आप क्या खोज रहे हैं ? क्या मैं आपकी सहायता कर सकता हूँ ?” इस प्रकार के वाक्य से प्रारंभ करना उचित होगा। यदि उसके उद्गारों द्वारा उसे कौनसी वस्तु चाहिये इसका पता चले तो—“आप अफगान स्नो कह रहे हैं न ? आइए मैं आपको दिखा दूँ” इस प्रकार के सूचक और मार्गदर्शक वाक्य द्वारा अत्यंत सौम्य एवं मार्दवतापूर्ण भाषण से उसका स्वागत करना उचित होगा। वातायन का निरीक्षण करने के पश्चात् विक्रय की मनोभूमिका में प्रवेश करनेवाले ग्राहकको वस्तु संबंधी पूर्ण जानकारी देना चाहिए। वस्तु की योग्यता का निर्णय ग्राहक पर छोड़ना योग्य नहीं है। “यह रेशम आपको पसंद आया न ?” ऐसा प्रश्न पूछने की अपेक्षा “यह रेशम बहुत ही सुन्दर है आपको ज़रूर पसंद आयगा; आजकल महाविद्यालयों में पढ़ने वाली लड़कियाँ इसे बहुत पसंद करती हैं” इस प्रकार का आरंभ अधिक असर-कारक सिद्ध होगा। प्रारंभ से ही वस्तु के गुणों का विश्वास कराना अधिक अच्छा है जिस से ग्राहक के मन में रंग आदि के संबंध में कोई शंका पैदा न हो। यदि वस्तुओं की संख्या काफी मर्यादित हो तो, “वस्तुएँ बहुत कम हैं, आप के लिये विशेष रूप से हमने सुरक्षित रखी हैं” इस प्रकार की अपनेपन की भावना व्यक्त करने वाला वाक्य अधिक उपयोगी होगा।

भाषण प्रारंभ करने के पूर्व ग्राहक की पोशाक का निरीक्षण कर उस के ज़रिये ग्राहक की ऋय-शक्ति, अभिरुचि, भूषा-चार-पद्धति तथा विचार-प्रणाली का अंदाज़ कर उस दृष्टि से अपने वाक्यों की रचना रखनी चाहिये। पोशाक हर समय मार्गदर्शक नहीं हो सकेगी, किन्तु सामान्य रूप से ग्राहक को कल्पना करने में वह सहायक अवश्य हो सकती है।

पोशाक के पश्चात् ग्राहक के बर्ताव का अध्ययन ज़रूरी होता है। भाषा शैली, देखने की पद्धति, घृष्टता या शर्मल्लापन आदि सब बातों की ओर ध्यान देने से ग्राहक की मनोरचना की पूर्ण कल्पना की जा सकती है और उस प्रकार से भाषण का रुख रखा जा सकता है। अधिक और लगातार बोलनेवाले, उतावले तथा चंचल मनोवृत्ति के ग्राहक के साथ अधिक भाषण न करना अच्छा

होगा। उसे तुरन्त वस्तु ही दिखाना प्रारंभ करना चाहिये। मुसकान-बदन मित-भाषी और सौम्य-स्वभाव के ग्राहक को निर्णय लेने में काफी अवधि लगती है। अतः उसके साथ भाषण करते समय वस्तु के गुणों का पूर्ण उद्घाटन किया जाना चाहिये ताकि उसको वस्तु पसंद आ सके। शर्मिले ग्राहक के साथ अत्यंत सहानुभूति पूर्ण भाषण करना होगा।

• ग्राहकों की अभिव्यंजना शब्दों और भावों द्वारा व्यक्त होती है। वस्तुओं का निरीक्षण करते समय ग्राहक के चेहरे पर व्यक्त होने वाले भावों का ठीक प्रकार निरीक्षण करने से उस का हृद्गत जाना जा सकता है। यदि ग्राहक के ओठों पर मुसकान और आँखों में उत्कंठा एवं उत्सुकता विलसित हो रही हो तो ग्राहक को वह वस्तु बेहद पसंद आयी यह समझना चाहिये। यदि ग्राहकों के ललाट पर सल्ले पड़ी हों और भौएँ सिकुड़ी हों तो यह जानकर कि ग्राहक के मन में वस्तु के प्रति घृणा निर्माण हुई है, उस वस्तु के संबंध में चर्चा नहीं करनी चाहिये। “ओह! उफ!!” इस प्रकार के उद्गार ग्राहक के मुख से निकलते ही इतनी महँगी वस्तु खरीद करने की ग्राहक में कय-शक्ति नहीं है इसका अंदाज़ लगाना चाहिए।

ग्राहक यदि किसी को साथ लेकर आया हो तो उसके साथ किये गये संभाषण का सूक्ष्म अध्ययन विक्रय की दृष्टिसे अत्यंत आवश्यक है। इससे ग्राहक को वस्तु पसंद आयी या नहीं इस बात का अन्दाज़ लगाया जा सकता है। विशेषतः स्त्री-ग्राहक के संबंध में यह अध्ययन अधिक सहायक सिद्ध होता है। स्त्री-ग्राहक विक्रेता द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर स्पष्ट रूप से देकर अपनी इच्छा व्यक्त करना नहीं चाहती, लेकिन आपस की चर्चा में वे निःसंकोच भाव से अपने आप को व्यक्त करती हैं।

ग्राहक द्वारा किया गया प्रारंभ

कई बार सीढ़ियाँ चढ़ते चढ़ते या गणित्र की ओर आते आते ग्राहक स्वयं भाषण प्रारंभ करता है। ऐसे समय पर ग्राहक की मनोरचना तथा विचारों का अन्दाज़ तुरन्त लगा लेना आवश्यक होता है। उसकी आवश्यकता प्रायः पोशाक, बर्ताव, संभाषण, भाषण-पद्धति आदि बातों पर, निर्भर होती है। इन सब बातों का अध्ययन करने के लिये विक्रेता के पास अवधि बहुत ही कम होती

है, अतः ऐसे मौकों पर शीघ्र मनोरचना को समझनेवाले विक्रेता अधिक सफल हो सकते हैं। ग्राहक द्वारा पूछे गये प्रश्न का उत्तर तुरन्त दिया जाना चाहिये जिस से ग्राहक यह समझ सके कि विक्रेता उसकी माँग में वैयक्तिक अभिरुचि रखता है और उसकी उत्सुकता को गहराई समझ सकता है।

कभी कभी भाषण प्रारंभ करते समय ग्राहक यह व्यक्त करना चाहता है कि उसे वस्तु की अधिक ज़रूरत नहीं है; सहज रूप से सस्ते दाम में यदि मिल सके तो वह खरीदना चाहता है। इस अवसर पर अपनी भाषा और उत्कंठा को वह काफी थियिल बना देता है। ऐसे मौकों पर विक्रेता को चाहिये कि ग्राहक को अनावश्यक आग्रह न करे। वस्तु के गुणों का उद्घाटन मात्र कर दे। उसके पश्चात् वह ऐसा बिन्दु (Point) ढूँढ निकाले जिस से ग्राहक की सुप्त उत्कंठा जागृत हो उठे और उस वस्तु के न खरीदने से उसकी आर्थिक, उपयोगिता और प्रतिष्ठा सम्बन्धी क्या हानि हो सकती है इसकी ओर उसका ध्यान आकृष्ट करे। यदि वस्तुएँ बहुत ही सीमित संख्या में हों तो यह ज़रूर कहा जा सकता है कि यदि ग्राहक क्रय न करे तो संभवतः एक दो दिन बाद वस्तु उसके हाथ नहीं लगेगी। इसके विपरीत कुछ ग्राहक बहुत उतावले एवं अनावश्यक उत्साही होते हैं। वस्तु देखते ही उनका मन खुशी से नाचने लगता है। इस तीव्रतम मनःस्थिति का समय पर ही उपयोग कर वस्तु का विक्रय कर लेना चाहिये। उसमें थोड़ा भी विलम्ब होने पर ग्राहक का उथला विचार-प्रवाह बह जायगा और अन्य विचारों के अधीन होकर उसका क्रय-निश्चय समाप्त हो जायगा।

विक्रेता का बर्ताव

ग्राहक का विक्रय-शाला में प्रवेश होते ही विक्रेता को उसका स्वागत मुस्कान-भरी मुद्रा से कर उसकी सेवा करने की तत्परता व्यक्त करनी चाहिये। यह कार्य केवल बेतन के बदले में किया जा रहा है, यह न दिखाते हुए, अपनी रुचि और व्यवसाय आनन्द के नाते कर रहे हैं यह भाव उसके बर्ताव में व्यक्त होना आवश्यक है। मालिक की केवल आज्ञा का पालन करने के लिये या पेट पाछने के लिये जो विक्रेता कार्य करते हैं, उनके व्यवहार में किसी भी प्रकार का मानवी-स्पर्श नहीं होता। मानवी-स्पर्श के अभाव में उसके व्यवहार में बांझ जड़ता निर्माण होती है जिसे ग्राहक कभी पसंद नहीं करते।

ग्राहक के मन में अपनी विक्रय-शाला के प्रति अभिरुचि निर्माण करने के दो ही मार्ग हो सकते हैं : विनोदपूर्ण मीठा भाषण और प्रत्यक्ष कार्य तत्परता। इन दोनों का सहज सम्मिश्रण यानी विक्रय-कला की पूर्ण सफलता। विनोद का स्वरूप सौम्य एवं सभ्य होना चाहिये और स्त्री-ग्राहक या बाल-ग्राहक के साथ भाषण करते समय इस बात का अधिक ख्याल रखना चाहिये। विनोद की अपेक्षा तत्परता अधिक महत्व रखती है। विनोद उस क्षण के लिये मानव मन को आनन्द प्रदान करता है; किन्तु तत्परता एवं उत्साह ग्राहक को चिर-स्थायी संतोष दिलाकर उसकी गहरी छाप उसके मन पर अंकित करता है। ग्राहक का अपने साथी के साथ जो संभाषण होता रहता है और प्रत्यक्ष विक्रेता के साथ जो वार्तालाप होता है उसके आधार पर उसकी माँग की कल्पना करनी चाहिये। बार बार “आप को और क्या चाहिये?” “किस वस्तु के बारे में आप कह रहे हैं?” आदि प्रकार के प्रश्न पूछने के मौके खड़े नहीं हों। उसी प्रकार स्वयं होकर ग्राहक के मार्ग में कठिनाइयों निर्माण करना उचित नहीं होगा। जो ग्राहक जल्दी में है उसे अधिक वस्तुएँ देखने का आग्रह करना, उसका चुनाव गलत है यह बतलाना, उसका अज्ञान उसे दिखाना या वस्तु की बनावट के बारे में अनावश्यक इतिहास बतलते बैठना विक्रय-शाला के विरुद्ध है। इससे ग्राहक का उत्साह भंग होता है और वह चिढ़ उठता है।

विक्रय-विशारदों का मत है कि (भी. एच. डब्ल्यू. हाफटन) ग्राहकों के साथ भाषण करते समय प्रारंभ से निम्न दोष टालने चाहिये :—

१. ग्राहक के साथ भाषण करते समय बीच बीच में अन्य लोगों के साथ भी भाषण करना : इस प्रकार के भाषण द्वारा विक्रेता यह व्यक्त करना चाहता है कि वह कितना अधिक कार्यव्यस्त है और उसका तथा उसकी विक्रय-शाला का कितना बड़ा महत्त्व है ! किन्तु उसकी यह धारणा गलत है। इस प्रकार के व्यवहार के कारण वार्तालाप-प्रवाह रुक जाता है और पिछले वाक्यों से ग्राहक के मन पर जो प्रभाव होता है वह इस रुकावट के कारण धुल जाता है।

२. ग्राहक के साथ भाषण करते समय बीच बीच में पुस्तक या समाचार पत्र पढ़ते रहना। इस प्रकार के व्यवहार से ग्राहक के प्रति विक्रेता के मन में किसी भी प्रकार भी रुचि नहीं है, यह व्यक्त होता है और ग्राहक अपमानित होते हैं।

३. विक्रय-शाला में ग्राहक के आगमन के पश्चात् भी तकिये या कुर्सी पर सिर रखकर लेटे रहना और कपड़ों का ध्यान न रखना। यह असभ्यता का लक्षण है।

४. अपने आप को बहुत बड़े समझकर ग्राहक के साथ बेअदबी के साथ बात करना और विक्रय-शाला के नौकरों को लगातार कर्कश वाणी में डाँटते रहना।

५. बार बार बाल बाना, आईने में देखना, कपड़ों को अनावश्यक रूप से संभालना और आत्म-प्रशंसा के स्वर में भाषण करना।

६. आलस के कारण उत्रासियाँ लेना।

७. अन्य वस्तु बाधते समय भीतर से ही ग्राहकों से पूछताछ करना।

वस्तुएँ बतलाना

वस्तुएँ बतलाना एक कला-पूर्ण कार्य है जो सतत अनुभूति एवं प्रयत्न से हासिल किया जा सकता है। इस कला के अभाव में कई विक्रेता अपने विक्रय-प्रयत्न में असफल रहते हैं। चन्द मिनटों के भीतर स्वल्प भाषण के आधार पर यदि शीघ्र गति से विक्रय करना हो तो वस्तुएँ अत्यंत आकर्षक रूप में दिखलाना जरूरी है। उदाहरणार्थ यदि ग्राहक विक्रय-शाला में प्रवेश करते ही “मुझे जूता बतलाइए” इस वाक्य से क्रय-भाषण प्रारंभ करता है तो नया अप्रशिक्षित विक्रेता चौंक उठता है और सोचता है कि ग्राहक से पूछना चाहिये कि उसे ‘जूता कौनसा, किस आकार का, किस भूषाचार का चाहिए।’ उसकी यह भी अपेक्षा होती है कि उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तर बिना पूछे ही ग्राहक को अपनी माँग पेश करते समय दे देने चाहिये ये। किन्तु यह अपेक्षा सम्पूर्ण-रूपसे गलत है। यदि उपर्युक्त सारे समाचार ग्राहक स्वयं बतला दे, तो विक्रेता की कला के लिये आखिर गुंजाइश ही कहाँ रहेगी? फिर तो सामान्य अनपढ़ नौकर भी वस्तु देकर दाम लेने का कार्य कर सकेगा। अतः विक्रेता को चाहिये कि उपर्युक्त माँग पेश होते ही वह निम्न बातों का शीघ्र-तिशीघ्र अध्ययन करे—

१. ग्राहक की आर्थिक स्थिति

यदि धनिक ग्राहक हो तो उसे ऊँचे दर्जे के जूते दिखाने चाहिये। उन्हें यदि कम दर्जे की वस्तुएँ दिखायी गयीं तो वे उसे अपनी प्रतिष्ठा के खिलाफ़

समझेंगे और अपने आपको अपमानित समझकर वहाँ से कोई भी कारण बतलाकर चले जायेंगे। इसके विपरीत यदि गरीब ग्राहक को अधिक मूल्य के और ऊँचे दर्जों के जूते बतलाये गये तो वह चौंक उठेगा और अपनी आर्थिक दीनता का प्रदर्शन करने की अपेक्षा अपने काबू के बाहर की चीज़ देखकर अच्छा मैं सोचकर बतलाऊंगा यह कह कर या भावों द्वारा व्यक्त कर वहाँ से चल देगा।

आर्थिक स्थिति की कल्पना ग्राहक की पोशाक, भाषा, बर्ताव, आदि बातों पर से की जा सकती है। उपर्युक्त सभी साधनों का उपयोग एक साथ किया जाना चाहिये; अन्यथा किसी एक साधन से ग्राहक की सच्ची परिस्थिति जानी नहीं जा सकती। कई बार ठाठ-बाट की उधार पोशाक धारण करने वाले दरिद्री और सादी पोशाक धारण करने वाले धनिक भी पाये जाते हैं। सब बातों का विचार करने पर भी गलती हो सकती है, पर ध्यान इतना ही रहे कि गलती केवल अपवाद स्वरूप ही हो।

२. आकार

ग्राहक को आकार के संबंध में नहीं पूछना चाहिए। कई बार विक्रेता पूछ बैठने हैं—‘आप को किस नंबर का जूता चाहिये?’ ग्राहक भला नंबर क्या जाने? पिछले वक्त खरीदे हुए जूते का नंबर भी वह अबतक किस लिये याद रखे? अतः ग्राहक के पैर का आकार ठीक प्रकार देखकर उस आकार के आसपास के दो तीन नंबरों के जूते दिखा देना चाहिये।

३. पद्धति (Style)

प्रायः प्रत्येक ग्राहक की अपनी स्वतंत्र रुचि होती है और एक ही पद्धति के जूते वे पसंद करते हैं। अतः ग्राहक जिस पद्धति का जूता पहिनकर आया हो उसी तरह के जूते उसे दिखलाने में हर्ज नहीं होगा। यदि उस पद्धति में कोई नया परिवर्तन किया गया हो तो वह परिवर्तित संस्करण जरूर दिखाना चाहिये। यदि ग्राहक दूसरी कोई पद्धति चाहता हो तो वह बहुधा आरंभ से ही बतला देगा कि उसे उस प्रकार के (जो वह पहने हुए है) जूते नहीं चाहिये।

४. मौसम

वस्तुएँ दिखाते समय मौसम का पूरा ध्यान रखना चाहिये। अक्सर बरसात में पानी से खराब न होने वाले (Water Proof) जूते, गर्मी में खुले जूते और सर्दी में बंद जूते ग्राहक चाहेंगे। इस बात को भूलना विक्रेता का बड़ा दोष माना

चायगा। यही नियम प्रत्येक वस्तु के लिये लागू हो सकता है। सर्दियों में ऊनी कपड़ा, गर्मी में पतला और बरसात में वर्षा से खराब न होने वाला—इन बातों की ओर सूक्ष्म ध्यान रखना जरूरी है।

सबसे महत्व की बात यह है कि अत्यंत कम दजों की और कम मूल्य की तथा अत्यंत अधिक मूल्य की और ऊँचे दजों की वस्तुएँ प्रारंभ में ही नहीं दिखानी चाहिये। उसी प्रकार ग्राहक को कौनसी (किस आकार की, पद्धति की, मूल्य की, रंग की आदि) वस्तु चाहिये इस संबंध में लगातार प्रश्न पूछ कर उसे घबड़ाना अच्छा नहीं है। सूक्ष्म निरीक्षण और अपनी कल्पना-शक्ति की कसौटी पर ग्राहक की मनोवांछित वस्तु का अनुमान लगाकर ठीक वस्तु उस के सामने पेश करने से ग्राहक कुतूहल से दाँतों तले उँगलियाँ दबाकर विक्रेता की मनही मन प्रशंसा करेगा। यदि यह आदर्श अवस्था हासिल न हो सकी तो भी हर्ज नहीं है। अपनी कल्पना के अनुसार ग्राहक के सम्मुख वस्तु पेश की जाने पर उस का आधार लेकर बोलना ग्राहक के लिये सुविधा जनक हो जाता है। वह यह बतला सकता है कि उसे उस वस्तु से छोटी वस्तु चाहिये या बड़ी, उसे वह रंग पसंद है या नहीं और उस की पद्धति (Style) में वह कौनसा परिवर्तन चाहता है। अतः केवल प्रश्नोत्तरों द्वारा ग्राहक की माँग का अन्दाज लगाने की व्यर्थ कोशिश करने की अपेक्षा सम्मुख साकार रूप में वस्तु पेश कर उससे कितनी कम या अधिक दजों की वस्तु चाहिये यह पूछना अधिक आसान है।

वस्तुओं का चुनाव

गणित्र पर वस्तुओं का बहुत बड़ा ढेर लगाना अच्छा नहीं माना जाता। ग्राहकों को दिखाने के लिये लार्ड हुई वस्तुओं के ढेर के कारण दृश्य अव्यवस्थित रूप धारण कर लेता है। ग्राहक भी यह सोचने लगते हैं कि इतनी अधिक तादाद में रखी गई वस्तुएँ सस्ते दाम की और हल्के दजों की होगी। टूटने-फूटने का भी काफी डर रहता है। इसमें एक-दूसरे प्रकार का दोष भी पैदा होता है कि इतनी सारी वस्तुएँ देखकर ग्राहक विचलित हो उठता है और कौनसी खरीदे और कौनसी न खरीदे, इस पद्योपेक्ष में पड़ जाता है। इस अवस्था में वह अधिक सोचना चाहता है और क्रय स्थगित कर देता है। अतः ग्राहक को कौनसी वस्तुएं पसंद आ सकती हैं इसका अन्दाज कर उसके उपयोग की चार-छः चुनी हुई वस्तुएँ ही उसे दिखानी चाहिये। वस्तुओं की संख्या न अत्यधिक हो और न अल्प। अत्यधिक वस्तुएँ बदि हों

तो उनमें से योग्य वस्तु चुनने में ग्राहक को काफी समय लगेगा और यह चुनाव करते समय हरेक वस्तु की विशेषता बतलाने में विक्रेता को भी अपना समय बर्बाद करना पड़ेगा। यदि विक्रेता ने ज़रा भी समय की बचत करने का प्रयत्न किया तो ग्राहक यह सोचने लगेगा कि विक्रेता उसे चुनाव में योग्य सहायता नहीं कर रहा है। इसके विपरीत यदि संख्या अत्यल्प हो तो ग्राहक यह सोचेगा कि तुलनात्मक दृष्टि से वस्तुएँ देखकर चुनाव किया जा सके इनकी प्रकाश की वस्तुएँ उस विक्रय-शाला में नहीं हैं। वह दूसरी किसी विक्रय-शाला में अन्य प्रकार देखना चाहेगा। उसकी गलतफहमी मिटाने का मौका भी विक्रेता को प्राप्त नहीं हो सकेगा। अतः यह दोनों छोर टालकर सुवर्णमध्य का अवलंब करना योग्य होगा। किसी भी प्रकार की पर्याप्त वस्तुएँ दिखानी चाहिये और 'अधिक प्रकार' की माँग करने पर अन्य वस्तुएँ दिखायी जानी चाहिये। ग्राहक की रुचि भिन्न है ऐसा देखते ही वस्तुओं का प्रकार बदल देना योग्य होगा।

वस्तुएँ किस प्रकार दिखाई जायँ ?

वस्तुएँ किस प्रकार दिखाई जायँ इसका वर्णन केवल प्रात्यक्षिक द्वारा ही योग्य रूप से किया जा सकता है। शब्दों द्वारा उसकी कल्पना मात्र दी जा सकती है। वस्तुएँ किस प्रकार दिखाई जाती हैं इस पर विक्रय-राशि का भविष्य निर्भर होता है। किसी एक विक्रय-शाला में वस्तुएँ आते ही तुरन्त बेची जाती हैं, और उसी की पड़ोस की विक्रय-शाला में उसी प्रकार की वस्तुएँ महीनों धूल खाते पड़ी रहती हैं। इसका कारण है उन विक्रय-शालाओं में प्रदान की जानेवाली वस्तु-हस्तांतरण और विक्रय-कला। नाजुक वस्तुएँ अत्यंत नाजुकता के साथ उठाकर उनकी विशेषताओं की ओर ग्राहकों को आकृष्ट कर तुलनात्मक दृष्टि से अपनी वस्तु किस प्रकार ऊँची है यह दिखलाना प्रवीण विक्रेता का लक्षण है। यदि विक्रेता यह कहे—“साहब देखिये, यह चाकू कितना सुन्दर है ! खोलने-बंद करने में ज़रा भी तकलीफ नहीं होती है.....पूरा फौलाद का बना हुआ है और उसका चमकीलापन कभी भी कम नहीं होगा इसी टंग का दूसरा भी चाकू है..... देखने में ठीक इसी के समान पर ध्यान रखियेगा वह इसकी नकल है.....सस्ता दाम देखकर भूल न कीजियेगा। वह रई लोहे का बना हुआ है”—तो ग्राहक उसकी अभिव्यंजना-शक्ति और ईमानदारी पर खुश हो जायगा।

वस्तुएँ सदा कागज में लपेटकर या डिब्बे में बंद करके रखनी चाहिये । ग्राहकों को दिखाने के पूर्व उन्हें भीतर ही साफ़ कर लेना चाहिये । कई बार ग्राहकों के मुँह के पास वस्तु ले जाने के पश्चात् उस के ऊपर की धूलि साफ़ करने की गलती विक्रेता करते हैं, वह बड़ा भद्दा दीखता है । यदि वस्तुओं का प्रत्यक्ष उपयोग आवश्यक हो तो वह बतलाना आवश्यक होगा । फल, घी आदि की विक्रय-शाला में प्रत्यक्ष गंध और रुचि दिखलाना पड़ता है और ऐसे मौकों पर ग्राहक अपने निर्णय का समर्थन (Confirmation) दूसरे किसी से भी चाहता है । अतः दो तीन व्यक्तियों को एक साथ प्रयोग (Trial) करने का मौका दिया जाना अधिक लाभप्रद होगा । यह सब ज्ञान विख्यात विक्रेताओं के कार्यों के अवलोकन द्वारा हासिल किया जा सकता है । उस के साथ-साथ विक्रेता के मन में भी इस कार्य के प्रति रुचि होनी चाहिये ज़बरन लादा हुआ कार्य कभी सफल नहीं हो सकता । कभी कभी ग्राहक बहुत ही अधिक छानबीन करने वाले होते हैं । वे अनावश्यक तादाद में वस्तुएँ देखते बैठते हैं । ऐसे मौकों पर न चिढ़ते हुए शांत दिल से वस्तुएँ दिखायी जानी चाहिये । किसी भी प्रकार का आलस या लापवाही ग्राहक के मन को दुखा सकती है ।

वस्तुएँ दिखाते समय सर्वत्र उत्साह एवं तत्परता का वातावरण निर्माण करना आवश्यक है । ग्राहक को देखते ही उसके अभिप्रायचन की सामग्री मालूम कर वस्तुएँ दिखाने में जुट जाना चाहिये । ग्राहक को राह देखते खड़े रखना बड़ा भारी दोष है जिसे अपमान का स्वरूप समझकर ग्राहक विक्रय-शाला में से निकल जाया करते हैं और दुबारा वे फिर वहाँ कभी नहीं जाते । इस प्रकार जानेवाले ग्राहक बाद में मनाने पर भी द्वार के बाहर निकल जाने पर वापिस नहीं आते । बहुत ही पुराना संबंध हो तो 'थोड़ी देर से आते हैं' यह कहकर निकल जाते हैं और प्रायः लौटते ही नहीं । वस्तु लाने के लिये भीतर गया हुआ विक्रेता कभी कभी वहीं पर अन्य किसी काम में लग जाता है और ग्राहक को नाहक राह देखते रखता है । इस प्रवृत्ति के कारण विक्रय-शाला बदनाम होती है ।

बार बार लगने वाली वस्तुओं की आळमारियाँ आसानी से खुलने वाली होनी चाहिये । जिस ग्राहक के चेहरे पर 'देखो भाई, मैं जग जल्दी में हूँ' इस प्रकार के भाव दीख रहे हों, उसकी सेवा सर्व प्रथम की जानी चाहिये । उन्हास एवं उत्साह के साथ शीघ्रातिशीघ्र डिब्बे का ढक्कन खोलकर उसका मन अपनी सर्वोत्तम (Perfect) सेवा द्वारा वस्तु में लगा देना चाहिये ।

ग्राहक को वस्तुएँ दिखाने ले जाना

कुछ वस्तुएँ काफ़ी बड़ी और भारी होती हैं, अतः उन्हें गणित्र पर रख कर नहीं दिखाया जा सकता। कुछ वस्तुएँ अत्यंत नाजुक होती हैं, जिन्हें बार-बार स्पर्श करने से उनकी कान्ति नष्ट हो जाती है या टूटने-फूटने का डर रहता है। इन दोनों प्रकार की वस्तुओं को उनके स्थान पर ही ग्राहक को ले जा कर दिखाना पड़ता है। वस्तुएँ दिखाने के लिए ले जाते समय विक्रेता को व्यवहार के संबंध में अधिक सावधानी रखनी पड़ती है। अत्यंत आदर एवं औदार्यपूर्ण व्यवहार से मार्गदर्शन करते हुए वस्तु की उपयोगिता का वर्णन उसे करना पड़ता है। यथासंभव स्वयं विक्रेता को वस्तु दिखाने के लिए जाना चाहिये। किसी सामान्य नौकर पर वह कार्य सौंपना अनुचित होगा; क्योंकि उससे ग्राहक, यह सोचकर कि हमारी योग्यता सामान्य नौकर पर सौंपने योग्य कम दर्जे की यह विक्रेता मान रहा है, नाराज़ होगा, साथ ही साथ दूसरी बात यह है कि नौकर ठीक रूप से वस्तु का महत्व नहीं बतला सकेगा और प्रभावपूर्ण संभाषण के अभाव में विक्रय नहीं होगा। यदि विक्रेता अत्यधिक कार्यव्यस्त हो तो यह कार्य लाचार होकर नौकर पर सौंपना ही पड़ेगा, किन्तु इस समय यह ज़रूर ध्यान रहे कि नौकर ऐसा ही हो जिसे वस्तु का पूर्ण ज्ञान हो और उसे अदब-विनय का पूर्ण ख्याल हो; साथ ही साथ ग्राहक को बुरा न लगे इस बात को भी देख लेना चाहिये। विक्रेता स्वयं नौकर के साथ ग्राहक का और उसकी माँग का योग्य परिचय करा दे और मुख्य बात दोहरा कर कह दे। उसी समय विनय के साथ, अपनी लाचारी के लिए, ग्राहक से क्षमा भी माँग लेनी चाहिये। इस समय शब्द-योजना और भाव-दर्शन की ओर ठीक ध्यान रखना आवश्यक है। कर्कश स्वर में नौकर को पुकार कर, 'ऐ लड़के, इधर आओ...साहब को... चीज़ दिखा दो ज़रा' ऐसा कहना सर्वथा अनुचित होगा। गालियाँ और डाँट सुननेवाले अनुभवशून्य विक्रेता पर सौंपे जाने से किस ग्राहक को अपमान महसूस नहीं होगा? साथ ही साथ वह कर्कश, कर्णकटु वाणी किस सम्यक् पुरुष की कोमल भावनाओं को नहीं दुखायेगी? इस प्रकार दुखाया गया ग्राहक स्वाभाविक रूप से उदासीन होकर यथासंभव जल्दी उस असम्यक् वातावरण से छुटकारा पाने की कोशिश करेगा और औपचारिक रूप से वस्तु को देख कर अपनी राह चलता बनेगा।

वस्तु के गुणों का दिग्दर्शन

अपने सव्यवहार द्वारा ग्राहक का मन आकृष्ट करने के पश्चात् उस आकर्षण का उपयोग वस्तु के संबंध में जिज्ञासा के निर्माण में करना चाहिये।

अपनी वस्तु की सर्वोत्तम विशेषता के प्रति ग्राहक का ध्यान सर्व प्रथम आकृष्ट करने से वस्तु का स्थायी प्रभाव ग्राहक के मस्तिष्क पर अंकित हो जाता है। उदाहरण के लिये प्लैस्टिक की कंधियाँ लीजिये। वे बड़ी तेजी से टूटती हैं, अतः उन्हें देखते ही ग्राहक के मन में टूटने की भावना जागृत होती है। यदि किसी विक्रेता की विक्रय-शाला में मजबूत प्लैस्टिक के कंधे होंगे तो 'साहब, यह दो दिन में टूटने वाली चीज़ नहीं है, एक सप्ताह के भीतर इसका एक दाँत भी टूट जाय तो चीज़ वापिस ले लेंगे' इस प्रकार की प्रत्याभूति (guarantee) देकर वस्तु के विशेष विक्रय-गुणों का (Selling points) का दिग्दर्शन किया जाना चाहिये। यदि मोतियों की विक्रय-शाला हो तो उनकी कान्ति दो-चार दिनों में लुप्त नहीं होती है, इस का विशेष प्रकार से उल्लेख करना होगा। घड़ियों के विक्रेता को अपनी घड़ियों की विशेष बातें (जैसे Shock proof, Water proof, और Fire proof आदि) बतलानी चाहिये जो अन्य घड़ियों में नहीं पाई जाती। साड़ियों का क्रय करने के लिए नव-विवाहित युगल यदि विक्रय-शाला में प्रविष्ट हुआ हो, तो अत्यंत नूतन भूषाचार की चमकीली-मड़कीली साड़ी दिखा कर युवक को अपनी सहधर्मिणी को संतोष दिलाने का सही रास्ता दिखाना चाहिये। कॉलेज की लड़कियाँ वह साड़ी कितनी अधिक पसंद करती हैं, इसका सुरुचिपूर्ण वर्णन ऐसे अवसर पर अधिक प्रभावोत्पादक हो सकता है। यदि ग्राहक आपके परिचय का हो और जिस व्यक्ति के लिये वह साड़ी खरीद रहा हो उसका भी आप से परिचय हो, तो उस व्यक्ति के रंग, रूप, उँचाई की दृष्टि से वह साड़ी अनुपम सिद्ध होगी इस बात का जिक्र किया जाना चाहिये। यदि साड़ी घर में काम करते समय पहनने के लिए चाहिये हो तो ऐसे प्रकार की दिखानी चाहिये जो जल्दी मैली न होती हो। स्टेनलेस स्टील के बर्तनों के विक्रय-गुणों का दिग्दर्शन करते समय मामूली पीतल के बर्तनों के दाम + कलई लगाने का व्यय = स्टेनलेस स्टील के दाम, यह सब अन्त में जा कर कैसे सिद्ध होता है इस बात का उल्लेख बड़ी चतुराई के साथ करने से ग्राहक बड़ा खुश होता है। सुहावने स्त्रिलीने के विक्रेता यह विशद करें कि उन स्त्रिलीनों पर लट्ठ होकर छोटे बच्चे अपनी माँ की याद तक कैसे भूल जाते हैं और उसे काम करने के लिए कैसे खुले छोड़ सकते हैं, यह बात विशेष रूप से शब्दों द्वारा चित्रित की जानी चाहिये। इस प्रकार प्रमुख गुणों की ओर आकृष्ट होकर मन्त्र-मुग्ध ग्राहक को बाद में धीरे-धीरे वस्तु के अन्य गुण भी बतलाने चाहिये जिससे विक्रय-संभाषण पूर्ण सफल हो सके। ग्राहक को अपनी केवल आवश्यकता व्यक्त

करने के लिए मौका देना चाहिये। उसकी उचित पूर्ति की पूरी जिम्मेवारी विक्रेता को उठा लेनी चाहिये। विक्रय-गुणों का दिग्दर्शन करते समय निम्न बातों की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये:

वस्तुओं का व्यवहार (Handling of Goods)

वस्तुओं का व्यवहार उनकी योग्यतानुसार होना चाहिये। नाजुक मोतियों के जेवर बड़ी सावधानी से नीले मखमल पर लगा कर दिखाने चाहिये और उन्हें निकालते ही एक बार पोंछ कर साफ करना चाहिये। रसायन-औषधियाँ, जर्दरी चीजें आदि का तौल अत्यंत सावधानी से किया जाय ताकि गड़बड़ी के कारण किसी की जान पर कुछ न बीते। बजनी वस्तुएं उटाने-धरने के लिए स्वतंत्र साधनों की आवश्यकता होती है। द्रव पदार्थ का दिग्दर्शन व विक्रय योग्य प्रकार से हो, जिससे छलकने-ढुलकने से नीचे की भूमि या कपड़े खराब होने की स्थिति न आने पाये। मूल्यवान और मूल्यशून्य वस्तुओं का व्यवहार एक ही साथ न किया जाना अच्छा होगा।

वस्तु का प्रत्यक्ष उपयोग (Trial of Goods)

कुछ वस्तुएँ ऐसी होती हैं जिनका प्रत्यक्ष प्रयोग या उपयोग विक्रय-पूर्व आवश्यक होता है। टोपी, तैयार कपड़े, आभूषण, चप्पामा, जूते, मोजे आदि वस्तुएँ शरीर-रचना की दृष्टि से योग्य हैं या नहीं यह देख लेना आवश्यक होता है। इस प्रकार की वस्तुओं का केवल सुंदर-वर्णन विक्रय के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता। वे वस्तुएँ दिखाने की अपेक्षा प्रत्यक्ष प्रयोग में उपयुक्त कर दिखलाने में सच्ची कुशलता है। उदाहरण के लिए तैयार कोट लीजिये। यदि उसे ग्राहक को पहना दिया जाय और आइने में उसे देखने के लिए कहा जाय तो उस कोट से अपनी सुन्दरता कितनी वर्धित हुई यह उसे ज्ञात हो सकेगा। प्रायः पहनने-ओढ़ने की वस्तुएँ अपनी समझ में प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए खरीदी जाती हैं, अतः उनको हस्तेमाल करने के पश्चात् लोग क्या कहेंगे यह बात भी काफी महत्त्व रखती है। अतः वस्तु पहनने के पश्चात् अपने मित्र या अन्य विक्रेता की ओर देख उन्हें पूछना चाहिये, 'क्यों भाई, कैसी दीखती है वस्तु?' यदि इस प्रश्न के उत्तर में "बहुत ही सुन्दर," इस प्रकार का वाक्य ग्राहक सुन लेता है तो वह यकीनन मान जाता है कि उस वस्तु के कारण समाज में उसकी प्रतिष्ठा जरूर बढ़ेगी।

वस्तुएँ प्रत्यक्ष प्रयोग में लाकर दिखाते समय कुछ मनोवैज्ञानिक बातों का ध्यान रखना जरूरी होता है। विक्रेता को यह स्पष्ट रूप से खयाल में रखना चाहिये कि स्त्री और पुरुषप्राहकों में अंतर होता है। स्त्रियों को अक्सर रंग, सुन्दरता, नाजुकता अनुकूलता (Finess) ये गुण अतिआवश्यक महसूस होते हैं। भूषाचारों की दृष्टि से अपनी वस्तुएँ अत्यंत आधुनिक होनी चाहिये इस बारे में वे अधिक सतर्क रहती हैं। इसके विपरीत पुरुष सुन्दरता की अपेक्षा मजबूती और टिकाऊपन की ओर अधिक ध्यान देते हैं। वे व्यवस्थित वस्तु चाहते हैं। मूल्य के संबंध में भी पुरुष अधिक सतर्क रहते हैं, वे अधिक दाम की वस्तु खरीदने में काफी हिचकिचाते हैं। ग्राहक की उम्र भी वस्तुओं के चुनाव में काफी महत्व रखती है। यदि ग्राहक युवक हो तो उसे अधिक गति और चटकीलापन पसंद आता है। मोटर-साइकिल दिखाते समय उसकी तेज गति की अधिक प्रशंसा करने से युवक को उसके प्रति ज्यादा आकर्षण होने लगता है। बुजुर्ग एवं मध्यमावस्था के ग्राहक को गति और सुरक्षितता, दोनों गुण आवश्यक लगते हैं और वृद्ध ग्राहक गति की अपेक्षा सुरक्षितता को अधिक पसंद करते हैं।

बड़ी विक्रय-शालाओं में पोशाक और आभूषणों के प्रत्यक्ष प्रयोग के लिए स्वतंत्र कमरे होते हैं। स्त्रियों के लिए अलग कमरा होना चाहिए, साथ ही साथ यदि आर्थिक दृष्टि से संभव हो तो वस्तुओं के प्रयोग के वैज्ञानिक-तज्ञ भी विक्रय-शाला में रखे जाने चाहिये। ग्राहक के साथ किस प्रकार का व्यवहार किया जाय इसका भी पूरा ज्ञान इन तज्ञों को होता है। स्त्री-ग्राहक को या बाल-ग्राहक को वस्तुएँ पहनाने के बाद उनकी प्रशंसा किस स्वर में और किन शब्दों में की जाय यह वे भली-भाँति जानते हैं। यदि वस्तुएँ पहनाने के बाद, अच्छी होनेपर भी, ग्राहक को पसंद नहीं आई तो उनपर अपना मत लादना अयोग्य होगा। उनकी इच्छानुसार वस्तु बदल कर देनी चाहिये।

कुछ वस्तुएँ वैज्ञानिक होती हैं, जिनका वैज्ञानिक रूप से ही प्रयोग करके दिखाना आवश्यक होता है। रेडियो का ही उदाहरण लीजिये। उसे ठीक लगाकर कौनसा स्टेशन किस मीटर पर आता है इसकी पूरी जानकारी देना होगा। उसके बाल्व और स्वर-परिवर्तन का पूरा घास्य गहराई के साथ समझा दिया जाना चाहिये। उसी प्रकार उसका प्रत्यक्ष उपयोग करते समय किन-किन बातों का ध्यान रखा जाना चाहिये, ये बातें भी बतलायी जायँ। आकाश में

बादल हों, बिजली कौंचती हो या अन्य कोई बाधक आपत्ति हो तो उस समय क्या काम करना चाहिये इसकी पूरी जानकारी ग्राहक के लिए आवश्यक है। रेडियो के समान ही सिलाई का यंत्र, घड़ी, मोटर, मोटर-साइकिल, ट्रैक्टर आदि यंत्रों की वैज्ञानिक जानकारी ग्राहक को दी जानी चाहिये। वैज्ञानिक आविष्कार प्रतिकर्ष होते रहते हैं और उनके आधारपर नये-नये यंत्र विपणि में आते हैं। पुराने और सनातनी विचार के ग्राहक रूढ़ि के कारण या अज्ञानता और डर के कारण उनका उपयोग करना नहीं चाहते। ऐसे मौकों पर उन यंत्रों के परिवर्तन का महत्त्व दर्शाकर अपना वैज्ञानिक भेज कर अपने व्यय से उन्हें प्रशिक्षण प्रदान करने की सुविधा देने में भी सार्य की कोई हानि नहीं है। कई बार अपने कारीगरों को नये ढंग की मशीन पसंद नहीं आयेगी यह समझ कर निर्माणी के मालिक उसे पसंद नहीं करते हैं। इस समय उनके पुराने यंत्र के किन किन दोषों को इस नये यंत्र में हटाया गया है और उसमें कार्य की गति (अधिक सावधानी के साथ-साथ) किस प्रकार जँची रखी गयी है, इसका सविस्तर वर्णन ग्राहकों को बतलाना जरूरी होता है।

‘अमुक एक प्रकार के यंत्र का उपयोग ग्राहक हमेशा करता आया है’, यह मान कर विक्रय के समय उसे उस प्रकार के यंत्र की सावधानी के संबंध में जानकारी देना उचित नहीं होगा। जब तक कोई धोखा नहीं होता, तब तक तो ठीक है, पर धोखा होते ही ग्राहक ‘विक्रेता को दोष देना प्रारंभ करेगा कि ‘आपने पहले से हमें सूचना क्यों नहीं की!’ इसके विपरीत हमेशा के यंत्र के संबंध में जानकारी देने पर ग्राहक यह समझकर कि ‘हम इतने वर्षों से इस यंत्र का उपयोग करते आये हैं, तो क्या हम इसकी इतनी सावधानी भी नहीं जानते हैं?’—अपमान महसूस करेंगे। अतः इधर कुँआ और उधर खाई की दुविधा में कई बार विक्रेता फँसता है। ऐसे समय पर बड़ी खूबी के साथ यह कहा जा सकता है ‘भाई, आप तो इस यंत्र की अमुक-अमुक सावधानी जानते ही हैं, पर जब आप अपने नौकरों को उसे उपयोग के लिए सौंपेंगे तब इस सावधानी का जिक्र करना न भूलियेगा। बस दोनों कार्य सिद्ध हो जाते हैं। सौंप भी मर जाता है और लाठी भी नहीं टूटती।

ग्राहक-विक्रेता प्रभोत्तर

ग्राहक से अधिक प्रश्न नहीं पूछे जाने चाहिये। कई बार ग्राहक को किसी वस्तु की अस्पष्ट कल्पना होती है। उसका वर्णन मात्र वह जानता है,

पर प्रत्यक्ष वस्तु देखी हुई नहीं होती। ऐसे समय पर उसके मनमें क्या है यह स्वर्षा के साथ जान लेना चाहिये; प्रश्नों की बौछार कर उसका अज्ञान व्यक्त होने जैसी परिस्थिति निर्माण करना विक्रय-शास्त्र के प्रतिकूल है। कुछ वर्षों पूर्व ऐसी पेन निकली थी जिसकी स्याही बरसों समाप्त नहीं होती थी। उस पेन के समाचार जान कर यदि ग्राहक पूछे कि 'क्यों भाई, स्याही समाप्त न होने वाली पेन आपके पास है?' तो उसके प्रत्युत्तर में पेन का नाम ले कर क्या आप...पेन चाहते हैं', इस प्रकार का प्रश्न पूछना अनुचित होगा; क्योंकि ग्राहक भला उसका नाम क्या जाने? उसी प्रकार यदि ग्राहक ने डाइनामा साइकिल के बारे में सुन रखा हो और धुंधली-सी कल्पना लेकर कहा कि 'बिना पैडल का उपयोग किये चलने वाली साइकिल आपके पास है?' तो 'क्या डाइनामा साइकिल के बारे में आप पूछ रहे हैं?' इस प्रकार का प्रश्न पूछ कर ग्राहक का अज्ञान प्रकट करने का प्रयत्न कभी नहीं करना चाहिये। चीज़ की बनावट, कम्पनी, मूल्य आदि के प्रबंध में लगातार प्रश्न पूछने की अपेक्षा ऐसे ही प्रश्न पूछे जायँ जिनका बहुत कुछ उत्तर प्रश्न में ही ग्राहक पा सके। उदाहरणार्थ—“देखिये, फिलिप्स साइकिल टिकने में बड़ी मजबूत और चलने में तेज होती है...हिन्दू थोड़ी कमजोर और मंद गति होती है पर है वह पूर्ण स्वदेशी, तो बतलाइये आप कौनसी चाहेंगे?” इस प्रश्न में उत्तर की पर्याप्त सामग्री मौजूद है और ग्राहक को स्वदेशी और सुन्दर इन दोनों के बीच चुनाव कर अपना उत्तर-मात्र तैयार करना है। यदि 'आपको यह फिलिप्स साइकिल दिखाऊँ?' ऐसा प्रश्न पूछा जाय और ग्राहक के चेहरे पर नापसंदगी के भाव व्यक्त होने लगें तो तुरन्त प्रश्न बदल देना चाहिये 'तो क्या हरक्यूल्स साइकिल दिखाऊँ?' जिससे इन्कार की भावना ग्राहक के मन में अधिक समय न रह सके।

ग्राहक द्वारा पूछे गये प्रश्न का उत्तर अत्यंत नम्र भाषा में, हँसते हुए और पूर्ण रूप से दिया जाना चाहिये। केवल 'हाँ' या 'नहीं' इन शब्दों में लापर्वाही के साथ उत्तर देना योग्य नहीं माना जाता। स्टेनलेस स्टील-वर्तनों का उदाहरण ले लीजिये। यदि ग्राहक यह पूछे, 'क्यों भाई, इन वर्तनों को राख से मॉर्जने में कोई हर्ज़ तो नहीं?' तो इस प्रश्न का उत्तर केवल 'नहीं' इस शब्द से देना पर्याप्त नहीं हो सकता। उसका पूर्ण उत्तर—'राख से मॉर्जने में हर्ज़ नहीं, पर राख अच्छी तरह छान लेनी चाहिये, अन्यथा छोटे कंकड़ों की उस पर लकीरें हो जायँगी। यदि साबुन के पानी से वर्तन साफ किये जायँ तो अधिक

अच्छा रहेगा'—इस प्रकार होगा। यदि 'पार्कर ५१' देखनेवाला माहक बड़ा पूछे—'क्या इस में कोई भी स्याही हस्तेमाक की जा सकती है?'—तो उसका उत्तर केवल 'नहीं' कहकर नहीं दिया जा सकता। 'नहीं' भाई, सिवा 'पार्कर ५१' के अन्य कोई भी स्याही इस में हस्तेमाल नहीं की जानी चाहिये, अन्यथा यह मूल्यवान पेन खराब हो जायगी'—यह हलका योग्य उत्तर होगा।

प्रश्नोत्तर का स्वर ग्राहक को देखकर बदला जाना चाहिये। अधिश्रित और दंष्ट्राती ग्राहकों को हमेशा ऊँचा स्वर सुनने की आदत होती है, अतः उनके साथ ऊँचे स्वर में भाषण करना होगा। इसके विपरीत सुसंस्कृत और उच्च-वर्गीय (विशेषतः स्त्री-ग्राहक) ग्राहक के मन में ऊँचा स्वर सुनकर चिढ़ निर्माण होती है। अतः उनके साथ मार्दवतापूर्ण स्वर में वार्तालाप करना होगा। सामान्यतः आवाज़ इतनी ही ऊँची रहे कि जिससे केवल ग्राहक सुन सके। अबोध-पड़ोस के अन्य व्यक्तियों को उससे तकलीफ नहीं होनी चाहिये। यदि ग्राहक अपनी वस्तु के संबंध में निरर्थक शिकायत कर रहा हो, तो उसका प्रतिवाद स्पष्ट और निश्चयात्मक स्वर में करना चाहिये ताकि ग्राहक के मन में किसी भी प्रकार का सन्देह न रहे।

कभी कभी ग्राहक बड़ा अजीब प्रश्न पूछ बैठते हैं। हल्के से हल्के दर्जे की वस्तु दिखाने पर भी वे कभी पूछ बैठते हैं—“इस से हल्की वस्तु नहीं है क्या?”—इस प्रकार का प्रश्न सुनकर आश्चर्य व्यक्त करते हुए उपहास भरी निगाह से विक्रेता को उसकी ओर नहीं देखना चाहिये। कुछ वस्तुएँ काफी महंगी होती हैं और आने-पाई से खरीदी नहीं जा सकती। उदाहरणार्थ इत्र की दूकान पर जाकर कोई एक आने के इत्र की माँग करे अथवा कोई आंचे आने की केसर माँगने लगे तो उसकी अज्ञानता के कारण उपहास की हँसी व्यक्त नहीं करनी चाहिये। उसे ठीक और मृदु भाषा में समझाकर बतलाना चाहिये।

आवकल नकली चीजें अत्यधिक प्रमाण में निकलने लगी हैं और विज्ञापन में असत्य-कथन तथा अतिशयोक्ति की मात्रा बहुत अधिक बढ़ रही है, जिसके परिणामस्वरूप ग्राहकों का मन सदा शंकास्पद बना रहता है। पूर्ण-रूप से यकीन पाने के लिये वे बार बार प्रश्न पूछकर अपनी शंका का निवारण करना चाहते हैं। 'इस कपड़े का रंग फीका तो नहीं पड़ेगा न?' 'यह पेन्सिल कभी तो नहीं है?' 'इस कागज़ में स्याही फैलेगी तो नहीं?' इस प्रकार के प्रश्न के उत्तर में एक दो बार 'नहीं' कहने पर भी यदि ग्राहक बार बार बड़ी

प्रश्न पूछे तो विक्रेता को चिढ़कर “भाई, एक बार तो बतला दिया ‘नहीं नहीं...नहीं’; बार बार वही प्रश्न पूछकर परेशान क्यों करते हो ? खरीदना हो तो खरीद लो नहीं तो रख दो...व्यर्थ मैं हमारा समय क्यों बरबाद करते हों ?” ऐसा उत्तर देना उचित नहीं कहा जा सकता । “नहीं साहब, विश्वास कीजियेगा वस्तु उत्तम है और उसमें आप कहते हैं वह दोष निर्माण हो जाय तो वस्तु वापिस ले लेंगे...रंग नहीं फीका पड़ेगा साहब...रंग थोड़ा तो निकलेगा, पर उस से कपड़े की कान्ति और बढ़ेगी रंग खुलने के कारण” यह उत्तर सर्वोत्तम और यथोचित होगा ।

मूल्य और महत्त्व (Price and Value)

मूल्य के संबंध में विक्रेता का स्वयं भाषण करना योग्य नहीं है, जब तक कि ग्राहक उस संबंध में पूछता नहीं है । विशेषतः जब वस्तु का मूल्य अधिक होगा, तब उस वस्तु के गुणों की पूरी छाप ग्राहक के मन पर अंकित करने के पश्चात् और क्रय-औत्सुक्य निर्माण करने के पश्चात् ही धीरे से मूल्य बतलाना चाहिये । मूल्य सुनकर यदि ग्राहक कुछ सहम जाता है तो उसी बात को दूसरे ढंग से बतलाना चाहिये । उदाहरणार्थ पाँच हजार का आगोप (बीमा) सुनकर यदि ग्राहक आश्चर्य से देखने लगे, तो उसे समझाना चाहिये ‘भाई, सोचिए तो आपको प्रतिमाह केवल १५ रुपये देने पड़ेंगे जिसके आधार पर आपको अन्त में एकसाय पाच हजार की राशि प्राप्त होगी । मान लीजिए कि आपका एक और पुत्र है जिसकी फीस आपको चुकानी पड़ती है ... इसका आपको वृद्धावस्था में कितना लाभ होगा सोचिए तो जरा !!’ इस प्रकार कहते ही ग्राहक का रुख बदल जायगा । जो मूल्य उसे अपनी ताकत के बाहर लग रहा था, वह अब मामूली और योग्य महसूस होगा और उस मूल्य के बदले में होने वाले लाभ की दृष्टि से सोचते हुए वह व्यय उसे अति तुच्छ लगने लगेगा । सस्ती और महँगी चीजों की तुलना भी इस समय पर विक्रय-भाषण में सहायक हो सकती है । मान लीजिए कि जापानी साइकिल १०० रुपये में मिलती है और अमेरिकन ३०० में । अब विक्रेता को चाहिये कि दोनों साइकिलों की आयु और सस्ती साइकिल की दुरुस्ती के लिये लगने वाला व्यय इनका विचार करते हुए दोनों का मूल्य अन्त में समान ही पड़ने वाला है, यह ग्राहक को विस्तार-पूर्वक समझा दे । उसके अलावा यह भी समझा दे कि हल्के दर्जे की साइकिल शरीर-स्वास्थ्य पर असर करेगी, यह नुकसान तो बहुत बड़ा है । अधिक मूल्य की वस्तुओं के बारे में क्रय-विक्रय सुविधा प्रदान कर मूल्य-भय को हटाना चाहिए ।

विक्रेता को यह कभी भी न भूलना चाहिए कि मूख की अपेक्षा वस्तु का महत्त्व अधिक परिणामकारी होता है। मन-पसंद वस्तु के संग्रह के लिये मनुष्य अन्य किसी प्रकार का त्याग करने के लिए उद्यत होता है। “चाहे जो हो जाय पर वह वस्तु मैं खरीद कर ही रहूँगा” इस प्रकार के उद्गार हमारे लिये नये नहीं हैं। अत्युत्तम खिलाड़ी चाहे एक समय भूखा रहें पर उत्तम मूखवान हॉकीस्टिक जरूर खरीदेगा। गायन-वादन प्रिय सज्जन फटे चियनों में घूमेगा पर अपनी पसंदगी का वादन-साधन जरूर खरीदेगा। अतः वस्तु ग्राहक के उद्देश्य की ठीक पूर्ति करती है यह उसे जैचे इसी ढंग से आरंभ से अंत तक भाषण का रस रहना चाहिये।

वस्तु के महत्त्व का वर्णन करते समय वह वस्तु ग्राहक की मनोरचना, भूषाचार और विचार आदि के लिये योग्य है या नहीं यह बात पहले सोच लेनी होगी। गलत निर्णय द्राग महत्त्व का वर्णन करना योग्य नहीं है। किसी ग्राहक को गहरा रंग पसंद आता है, किसी को फीका; किसीको चुस्त कपड़े पसंद आते हैं, किसी को ढीले। अतः जिसकी जैसी पसंदगी हो वैसा ही महत्त्व उसे बताना चाहिये। नव-विवाहित दम्पति को नये फर्नीचर के संबंध में किया गया उपदेश ठीक लगेगा; किन्तु इसके विरुद्ध बुजुर्ग दम्पति उस उपदेश से बहकहकर कि ‘क्या हमें इतना भी नहीं समझता’ चिढ़ उठेंगे। उन्हें तो वैज्ञानिक समाचार में अधिक रस आयगा। बिजली के टेबिल-फैन का उदाहरण लीजिए। उसकी स्थिति किस प्रकार बदली जा सकती है, बच्चों के कमरे में भी उसे सुरक्षित किस प्रकार रखा जा सकता है और प्रत्यक्ष-रूप में या केवल अप्रत्यक्ष किसी भी रूप से किस प्रकार वह हवा प्रदान करता है, इन बातों का महत्त्व उन्हें अधिक आकृष्ट कर सकेगा।

वस्तु का महत्त्व व्यक्त करने के लिये उसकी पूर्ण जानकारी आवश्यक है। केवल अन्दाज से गर्पे हाँकना उचित नहीं है। केवल ‘अत्युत्तम’ ‘अति सुन्दर’ आदि शब्द प्रयोग करने से ग्राहक खुश नहीं हो सकता। वस्तु उत्तम क्यों है इस का पूरा विवरण बतलाया जाना चाहिये—यदि टेबिल-लैम्प का वर्णन करना हो तो वह पढ़ाई की दृष्टि से किस प्रकार उपयुक्त है यह बतलाना योग्य होगा। योग्य वर्णन के लिये विक्रेता का शब्द-भांडार परिपूर्ण होना चाहिये। प्रत्येक विभाग के, प्रत्येक गुण और सावधानी के सारे नाम उसे मालूम होने चाहिये। आवश्यक शब्दों की सूची कागज पर लिखकर कंठस्थ करना लाभदायी

होगा। महत्त्व बतलाते समय घूमते-फिरते अधूरे वाक्यों का प्रयोग करना, अनावश्यक अधिक बोलना, एक काम समाप्त करने के पूर्व ही दूसरे ग्राहक के साथ वार्तालाप प्रारंभ करना ये सब दोष-पूर्ण कार्य हैं।

प्रतिक्रिया बिन्दु (Reaction Point)

प्रदर्शन, विक्रेताओं का व्यवहार और वस्तु की विशेषता इन बातों का संयुक्त परिणाम ग्राहक के मन पर होता है जिसके पश्चात् वस्तु के कय के संबंध में निश्चयात्मक भूमिका उसके मन में पैदा होने लगती है। ग्राहक की यह मनःस्थिति प्रतिक्रिया बिन्दु (Reaction) कहलाती है।

विक्रेता और ग्राहक के बीच चलने वाले वार्तालाप को सुरुभ्य कहानी का स्वरूप प्राप्त होने से वार्तालाप के नीरस अंक भी रसपूर्ण महसूस होने लगते हैं जिस के आधार पर वस्तु के महत्त्व का चित्र ग्राहकों के दिल पर आसानी से अंकित किया जा सकता है। एकबार वस्तु के लोकप्रिय बन जाने के बाद उसके प्रति जनता के मन में प्रेम पैदा होता है और फिर बगैर सोचे उस वस्तु का वे कय किया करते हैं। ५०१ साबुन, जिलेट ब्लेड, अमृतांजन, बाटा के जूते आदि के उदाहरण प्रत्यक्ष हैं। अतः वार्तालाप और वस्तु के गुणों का दिग्दर्शन करते समय उसकी लोकप्रियता और विशेषताओं का योग्य वर्णन किया जाना चाहिये। बड़े सज्जनों द्वारा या बहुमत द्वारा पसंद की गई चीज़ ग्राहक बगैर सोचे खरीदता है, इसलिये बड़ों के अभिप्राय उसे योग्य समय पर दिखलाकर वस्तु के प्रति उसके मन में अनुकूल प्रतिक्रिया बिन्दु (favourable reactionary point) निर्माण करना चाहिए। सखी की वर्षगांठ पर किसी ने यदि लेडी-बॉच भेंट की और वह उस सहेली को बेहद पसंद आयी हो तो उसका अभिप्राय मँगाकर उसे घड़ियों की आलमारी में जड़वा कर रखना चाहिये। सुन्दर वस्तुओं के संबंध में विख्यात अभिनेत्रियों और अन्य वस्तुओं के संबंध में नेताओं के अभिमत दिखाने पर ग्राहकों के मन पर अनुकूल प्रतिक्रिया होती है। पं. जवाहरलालजी द्वारा प्रशंसित सिनेमा फिल्म के थिएटर में कितनी मीढ़ लगती है वह हम सब जानते ही हैं। यदि हॉकी-स्टिक के बारे में वार्तालाप चल रहा हो तो किसी अज्ञातविख्यात खिलाड़ी को उस बनावट की स्टिक कैसे पसंद आयी इस का सरस वर्णन किया जाना चाहिये।

जब ग्राहक के मन में वस्तुके संबंध में कोई शंका होती है, तब अनुकूल प्रतिक्रिया निर्माण करने में बाधा पैदा होती है। प्रभाकर लल्लटेन का उदाहरण

लैजिए । वह उसके गुणों के लिये सुविख्यात है, पर यदि ग्राहक यह कहीं सुन ले कि उसके बर्नर में से बंसी ठीक नहीं चढ़ती, तो वह शंका की निगाह से देखना आरंभ करेगा । ऐसे मौकों पर शिकायत का मूल खोजना चाहिये । युद्धकालीन परिस्थिति में उत्तम सामग्री के अभाव में वह दोष जरूर आया था; अतः अपनी उस लाचारी की स्थिति के लिये क्षमा माँग लेनी चाहिये और कहना चाहिये कि उन दिनों का दोष-पूर्ण मॉडेल गलती से उन के भित्र के पास गया होगा । शंका निवारण होने पर प्रतिक्रिया का अनुकूलता में परिवर्तन होता है ।

वस्तु की जो विशेषता होगी उसी पर भाषण में अधिक ध्यान देना चाहिये । अपने प्रतिस्पर्धियों की वस्तुओं के गुणों के साथ तुलना करते बैठना ठीक नहीं है; क्योंकि उससे ग्राहक प्रतिस्पर्धी की वस्तु देखने के बाद ही क्रय के निर्णय का विचार कर सकता है जिससे ग्राहक का वस्तु पर केन्द्रीभूत हुआ ध्यान विचलित हो सकता है । गौण बातों का वर्णन अन्त में और अत्यंत संक्षेप में किया जाना चाहिये । डोंगरे बालामृत पीने से बच्चों की तन्दुरुस्ती कितनी अच्छी रहती है और बच्चे कितने खुश रहते हैं इस प्रमुख बात का उल्लेख-मात्र अनुकूल प्रतिक्रिया निर्माण कर सकता है ।

वस्तु के गुणों का वर्णन करते समय प्रारंभिक एक दो बातें कहते ही यदि ग्राहक प्रभावित हुआ और उसके मन में क्रय-विश्वास निर्माण हुई तो उसके पश्चात् वस्तु के गुणों का अनावश्यक वर्णन करना उचित नहीं है । भाषण तुरन्त स्थगित कर विक्रय-कार्य में जुट जाना चाहिये, अन्यथा ग्राहक चिढ़ उठेगा और उसके मन पर हुआ अनुकूल प्रभाव भी समाप्त होकर उसका क्रय-निर्णय चंचलवस्था को प्राप्त होगा । अनुकूल प्रतिक्रिया होते ही भाषण समाप्त कर वस्तु के सहवास में ग्राहक को मग्न होने का मौका देना चाहिये जिससे उसका निश्चय स्थिर हो कर गहरा बन जाय ।

सूचना, जँचना और निर्णय

(Suggestions, Conviction and Decision)

अनुकूल प्रतिक्रिया निर्माण करने की दृष्टि से उपर्युक्त नीति का अवलंबन करने पर ग्राहक वस्तु का क्रय निश्चित रूप से करेगा ही, किन्तु यदि इन प्रयत्नों के बावजूद भी ऐसा लगे कि ग्राहक के मन में शंका शेष रही है तो अत्यंत नम्र भाव से 'भार्य, आपने वस्तु के गुणों का सविस्तर वर्णन सुन लिया

है, आप के प्रश्नों के उत्तर भी हमने दे दिये, फिर भी आपको पूर्ण रूप से संतोष नहीं हुआ मालूम होता है, तो बतलाइए मैं आप की और क्या सेवा कर सकता हूँ ? ग्राहकों को संतोष दिलाना तो हमारा कर्तव्य है !' इस प्रकार का प्रश्न पूछने में कोई हर्ज नहीं होगा । कई बार ग्राहक, विशेषतः स्त्री-ग्राहक, अपना स्वतंत्र रूप से निर्णय नहीं ले सकता और इसलिये उसे वस्तु अच्छी नहीं ऐसा विक्रेता महसूस करने लगता है । ऐसे समय पर निर्णय लेने में ग्राहक की विक्रेता स्वयं सहायता करे ताकि ग्राहक के मन में कोई डर हो तो वह हट जाय । पूर्ण रूप से मित्र के समान विक्रेता को अपनी मनोभूमिका तैयार कर लेनी चाहिये ।

कई बार ग्राहक सोचता है, 'खरीदेंगे बाद में आराम से, जल्दी क्या है ।' इस समय 'आगे देखेंगे' में क्या हानि हो सकती है इस का योग्य कारण ढूँढकर उचित उत्तर ग्राहक को दिया जाना चाहिये । कोई यंत्र-वस्तु हो तो आगे खरीदने से उसकी निर्माणी के उत्पादन का किस प्रकार नुकसान होगा यह ठीक से समझा देना उचित होगा और बतलाना होगा कि आज खरीदी करने से आप की आय अवश्य बढ़ेगी, जो मामूली क्रय के आलस्यवश रुकी हुई है । यदि घरेलू वस्तु हो तो बतलाना चाहिये—'भाई एक बार बात छूट गयी कि फिर क्रय करना मुश्किल है.....और आगे तो आपकी ज़िम्मेवारियों के साथ साथ घर का खर्च भी बढ़ता जायगा, तब फिर क्या खरीद सकोगे ? बाद में भाई-बहनों के विवाह, बच्चों की शिक्षा, मेहमान आदि में ही इतना व्यय होगा कि वस्तु खरीदना आपके लिए असंभव हो जायगा । उसी प्रकार यदि मूल्य बढ़ने की संभावना हो तो बतलाना होगा, 'देखिए, मेरी राय में तो अगले सप्ताह में मूल्य-वृद्धि की संभावना है, नाहक अधिक दाम देकर फिर आपको वस्तु खरीदना पड़ेगा ।' इस के बाद यदि आपको यह महसूस होने लगे कि ग्राहक निश्चित रूप से क्रय की मनःस्थिति में पहुँच गया है, तो उसे और एक थोड़ासा धक्का देने की ज़रूरत होती है । कहना चाहिये 'अच्छा भाई, तो फिर वह वस्तु पैक करने के लिए कहता हूँ, ।' लेकिन यह सब आग्रह करते समय इतना ज़रूर ध्यान रहे कि ग्राहक पर किसी प्रकार की ज़बरदस्ती न हो रही हो । ज़बरन विक्रय अनुचित कार्य है ।

ग्राहक कई बार आदतवश 'नहीं' कहते हैं, अतः उनका 'नहीं' मामूली प्रयत्नों द्वारा 'हाँ' में परिणत किया जा सकता है, इस बात को कभी न भूलें । एकाएक ऐसा बिन्दु (Point) खोज निकालना चाहिये जिससे ग्राहक की नकारात्मक भूमिका तुरन्त परिवर्तित हो जाय । इन सब प्रयत्नों के बावजूद भी यदि विक्रय

नहीं होता है तो विक्रेता को निराश नहीं होना चाहिये। उसे यह समझना चाहिये कि अतिशय निपुण विक्रेता को भी ऐसे कुछ ग्राहक मिलते ही हैं जो वार्तालाप के पश्चात् भी क्रय नहीं करते। उसे संतोष मानना चाहिये कि उसने अपनी ओर से पूर्ण कोशिश की है और वह कोशिश कभी किसी रूप में उसे लाभ पहुँचानेवाली है। उस वार्तालाप को विशापन-मात्र समझ लेना उचित होगा।

उपर्युक्त नीति का अवलंब निश्चित रूप से विक्रेता को सफलता की ओर ले जायगा। 'ग्राहक की क्रय इच्छा + अच्छी वस्तु + योग्य गुणवर्णन + व्यवस्थित भाषण = अपने पक्ष का निर्णय'—इस सूत्र को कभी नहीं भूलना चाहिये। उपर्युक्त वर्णन के पश्चात् भी यदि ग्राहक के मन में किसी प्रकार की अनिच्छा या संदेह शेष रहा हो तो वस्तु के क्रय से होनेवाला लाभ और उसके लिये किया जानेवाला त्याग (मूल्य के रूप में हानि) इन दोनों की तुलना करते हुए अन्त में शुद्ध लाभ (Net gain) किस प्रकार होता है इसका सुरभ्य तथा जँचने-योग्य पद्धति से वर्णन करना होगा। वस्तु के अभाव से होनेवाली हानियों की पूर्ण कल्पना ग्राहक को देने पर उसे वस्तुस्थिति का वास्तविक ज्ञान होगा। कई बार विक्रेता वस्तु के क्रय के लिये किये जानेवाले त्याग का उल्लेख ही नहीं करना चाहते हैं, केवल गुणों का बखान करते रहते हैं। संभवतः यह एक पक्षीय वार्तालाप सुनकर ग्राहक का मन शंकित हो उठता है। अतः विक्रेता को अपनी मनःस्थिति तराजू के समान करना चाहिये जिसके एक पलड़े में वस्तु के गुण और दूसरे में त्याग रखकर यह सिद्ध कर देना चाहिये कि गुणों का पलड़ा भारी है।

शंकाओं का निरसन करते समय सभी शंकाओं की चर्चा एक साथ करना उचित नहीं होगा। सर्वप्रथम सबसे बड़ी शंका लेकर उसका निरसन करना चाहिये। उसके बाद धीरे-धीरे अन्य छोटी शंकाओं का निरसन करते हुए वस्तु का शब्द-चित्र ग्राहक के सम्मुख स्पष्ट और निखरे स्वरूप में खड़ा कर देना चाहिये। यह सब तटस्थ प्रकृति से किसी न्याय-देवता के समान किया जाय तो अधिक प्रभावशाली सिद्ध होगा।

विक्रय समाप्त करना

इस प्रकार शंका निरसन के पश्चात् ग्राहक के अभियाचन का निर्णयार्थक स्वरूप विक्रेता को मालूम होगा। निश्चित की गई वस्तुएँ योग्य कार्यकर्ता द्वारा बाँधी जानी चाहिये जिसके पूर्व वह अच्छी अवस्था में है या नहीं (टूटी तो नहीं, पूर्ण संख्या गलत तो नहीं आदि) इस को देख लेना अच्छा होगा।

वस्तु बौंधी जाते समय विक्रेता उसका बिल बना दे। बिल सावधानी के साथ, स्पष्ट अक्षरों में तथा स्थानिक भाषा में बनाना चाहिये। कुछ ग्राहकों को, जो कि सरकारी कर्मचारी होते हैं, वस्तुओं (विशेषतः औषधियाँ) के दाम सरकार से वसूल करने होते हैं, उनके लिये साफ अक्षरों में और उनका खुद का नाम लिखकर पूर्ण विवरण के साथ बिल बनाना चाहिये।

इस प्रकार सारा कार्य समाप्त होने पर स्थानिक पद्धति के अनुसार ग्राहक को बिदा देनी चाहिये। बिदाई के समय पर अनावश्यक चर्चा करते रहना अनुचित है। उसी प्रकार विक्रय समाप्त होने पर चर्चा में से तुरन्त इस प्रकार हाथ खींच लेना कि अब ग्राहक के साथ अपना कोई संबंध नहीं है, यह व्यवहार भी उचित नहीं कहा जा सकता। शांति के साथ सारे कार्य किये जाने चाहिये।

ग्राहकों की शिकायतें और उनका निराकरण

भिन्न भिन्न प्रकृति के ग्राहकों की रुचि भी भिन्न भिन्न होती है। अतः किस ग्राहक की किस समय कैसी शिकायत आयेगी, नहीं कहा जा सकता। कोई ग्राहक किसी एक वस्तु को पाकर हर्षित होता है तो दूसरा उसीके दर्शन मात्र से नाक-भौं सिकोड़ने लगता है। उल्टू का व्यापार-चिन्ह (Tarde Mark) देखकर परम संतोष से पश्चिमी ग्राहक छाता खरीद करेंगे, उसके विपरीत भारतीय ग्राहक उसे अशुभ समझकर उसकी ओर घृणा की निगाह से देखेंगे।

यद्यपि अनेक प्रकार की शिकायतों का सामना विक्रेता को करना पड़ता है और कौनसी शिकायत का निराकरण किस बात से होगा यह कहना असंभव है, तथापि सामान्य शिकायतों और उनके उत्तरों का अध्ययन विक्रेता के लिये ज़रूरी है। सर्व प्रथम महत्व की बात यह है कि ग्राहक की शिकायत वास्तव में सत्य है या नहीं यह देख लेना चाहिये और यदि वह सत्य हो तो उसका निराकरण ठीक रूप से कर देना चाहिये। यदि शिकायत बेजुनियाद और असत्य हो तो ग्राहक को समझा देना चाहिये। बात छोटी-सी हो और ग्राहक की गलती होते हुए भी वह यदि जिद्द करता हो तो उतनी हानि बरदास्त कर उसे संतोष प्रदान कर देना चाहिये। इस प्रकार की नीति का अवलंब उसी ग्राहक के साथ हो जो अपनी सार्थ से प्रतिर्कष काफ़ी कर करता है, और जो करीब करीब स्थायी ग्राहक हो।

१. केवल बहाना

ग्राहक कभी कभी झूठ-मूठ की शिकायत ले आते हैं, वे स्वयं भी जानते हैं कि उनकी शिकायत में कोई सार नहीं है। वे अपना अज्ञान या असमर्थता छिपाने के लिये शिकायत करते हैं। इस परिस्थिति में विक्रेता को चाहिये कि वह इस बात का पता न चलने दे कि उसे असली हालत मालूम हो गई है। उसे तो ऐसा ही भाव प्रकट करना चाहिये कि ग्राहक की शिकायत को वह सत्य समझता है। अन्यथा ग्राहक के मन में शर्म पैदा होगी और मुआमला उल्टा हो जायगा। बड़ी सावधानी के साथ पेश आते हुए दूसरी जगह सस्ती चीजें दिखानी चाहिये और यदि संभव हो तो कयाबकय (Hire Purchase) जैसी सहूलियत प्रदान करनी चाहिये। मूल्य, गुण आदि के संबंध में यदि ग्राहक के मन में संदेह हो तो 'चीज खराब निकलने पर लौटा दीजिए; अन्यथा इस से सस्ती मिले तो वापिस लूँगा' इस प्रकार का आश्वासन दिया जा सकता है।

यदि ग्राहक जानबूझकर इस प्रकार का आरोप करता हो जिस से सत्य की बदनामी हो सकती है, तो उस बात का बड़ी शान्ति और धीरज के साथ सौम्य शब्दों में विरोध करना चाहिये। ऐसे मौकों पर चुप्पी साधने से या दब जाने से ख्याति (good will) को धोखा पहुँच सकता है।

२. यही वस्तु अन्यत्र सस्ते दाम में मिलती है

इस प्रकार शिकायत सुनते ही विक्रेता को पता लगाना चाहिये या उसे मालूम करना चाहिए कि ग्राहक द्वारा दी गई जानकारी कहां तक सत्य है। ग्राहक से ही पूछा जा सकता है कि—क्या आपने दूसरी विक्रय-शाला की चीज अच्छी तरह देख ली थी? क्या वह इसी चिन्हांकन की थी? हमारे इस चिन्हांकन की नकल होने लगी है—और इतना कह कर यदि वह नकली वस्तु आप के पास हो तो तुरन्त लाकर दिखा देनी चाहिये। ग्राहक समझ जायगा कि दोनों चीजें दिखाने में एक-सी होने पर भी भिन्न हैं। वस्तुकी चमक, टिकाऊपन, उपयोगिता आदि विशेष बातों की ओर उसका ध्यान आकृष्ट करना ज़रूरी है।

यदि वास्तव में अपना दाम प्रतिस्पर्धी की तुलना में अधिक हो तो उसका कारण खोज कर इलाज ढूँढ निकालना चाहिये।

३. अन्य विक्रय-शालाओं में वस्तु देख आते हैं

अन्यत्र वस्तुएँ देखने का मोह दो कारणों से हो सकता है—(अ) अधिक प्रकार की चीजें देख सकें :— इस परिस्थिति को टालने के लिये सर्वोत्तम उपाय

यही है कि अपनी विक्रय-शाला में ही विभिन्न प्रकारों का स्टॉक (stock) रखा जाय और ग्राहक को दिखाया जाय । —(आ) अन्यत्र यही वस्तु यदि सस्ती मिल सके तो देख लें :— इस प्रकार की मनोवृत्ति को संतोष प्रदान करने के लिये यह प्रत्याभूति देनी चाहिये कि अपना मूल्य विपणि की किसी भी विक्रय शाला से अधिक नहीं है और यदि हो तो वस्तु वापिस लेने की तैयारी है। उसी प्रकार अपने पास उत्पादक या बहुशो-विक्रेता-द्वारा भेजी गयीं चालू मूल्य सूची- (Current Price List) हो तो वह भी दिखा देनी चाहिये जिससे ग्राहक को पूरा विश्वास हो जाय और अन्यत्र तुलना करने की बात उसके मन में न उठे ।

४. अच्छा, सोचकर बतलाते हैं

ग्राहक यदि तुरन्त निर्णय न लेना चाहता हो और सोचकर तै करना चाहता हो तो उस पर ज़बरदस्ती करने से कोई लाभ न होगा । इस स्थिति में एक प्रकार से धोखा भी हो सकता है कि अपनी विक्रय-शाला से निकल जाने पर अन्य किसी प्रतिस्पर्धी द्वारा प्रभावित होकर कहीं वहाँ से वस्तुएँ खरीद न बैठे । इस धोखे से बचने का एक ही मार्ग है कि अपनी वस्तु के गुणों की अभिट छाप उसके दिल पर जमा दी जाय जिससे अन्य स्थान पर वह प्रभावित न हो सके । साथ ही साथ यह भी बतला दिया जाय कि (यदि सत्य हो) वस्तुओं का स्टॉक काफी कम है, फिर भी उसकी सुविधा के लिये ३-४ दिनों तक वस्तु उसके लिये सुरक्षित रखी जायगी ; इस प्रकार के अपनेपन के भावों का असर सदा अनुकूल होता है ।

५. अन्य किसी की सलाह लेने पर निर्णय लेंगे

कुछ ग्राहकों को अपने निर्णय पर भरोसा नहीं होता, वे घरवालों या मित्रों की सलाह लेकर क्रय करना चाहते हैं । इस समय अच्छा मार्ग तो यह है कि नौकर के हाथ वस्तु के विभिन्न प्रकार के न्यादर्श (नमूने) ग्राहक के साथ भेज दिये जायें और उसे दूसरे की सलाह लेने का मौका दिया जाय । विक्रेता-द्वारा दी गई इस सुविधा के कारण ग्राहक का प्रभावित होना स्वाभाविक है ।

यदि ग्राहक के सलाहकार कुछ दिनों बाद विक्रय-शाला में आकर ही वस्तु देखना चाहते हों तो उसके मन पर वस्तु के गुणों की इस प्रकार छाप डाली जानी चाहिये कि वह अपने सलाहकारों को पहले इसी विक्रय-शाला में लावे ।

६. मुझे तो अपने मित्र के लिये वस्तु खरीदनी है

ऐसे मौके पर मित्र की रुचि तथा सामाजिक दर्जे का अंदाज लगाना होगा। वार्तालाप में सहज रीति से इन बातों की जानकारी हासिल करने की कला विक्रेता के लिये ज़रूरी है। वस्तु किस उपयोग या प्रसंग के उपलक्ष्य में दी जा रही है इसकी जानकारी भी चुनाव (Selection) में सहायक हो सकती है। यदि आवश्यक हो तो नौकर के हाथ मित्र को दिखाने वस्तुएँ भेजने में भी हर्ज नहीं है। मित्र बाहर गाँव हो तो उसके आने तक राह देखने और वस्तु सुरक्षित रखने की सहूलियत देकर ग्राहक को अनुगृहीत किया जा सकता है।

७. कुछ भी कहिये...वस्तु पसंद नहीं आ रही है

कभी कभी ग्राहक नापसंदगी का कारण नहीं बतला सकता किन्तु वस्तु उसे पसंद नहीं आती। इस प्रकार की शिकायत का निवारण करना बड़ा जटिल कार्य है। ग्राहक की आवश्यकता का पूर्ण रूप से अध्ययन कर वह वस्तु में कौन से गुण चाहता है, इसका अंदाज कर वे गुण वस्तु में हैं यह सिद्ध करना ही इसका हल हो सकता है।

८. वस्तु में दोष हैं

वस्तु की बनावट, रंग, आकार, भूपाचार, चमक आदि में दोष ग्राहक के ध्यान में आने से वस्तु नापसंद हो सकती है। दूसरी वस्तु बदलकर देना ही इसका सरल हल है।

विक्रय-पश्चात्-सेवा (Post-Sale-Service)

विक्रय समाप्त करने के पश्चात् वस्तुओं की एक बार इस प्रकार प्रशंसा की जानी चाहिये ताकि ग्राहक यह महसूस करे कि कब से वह बड़े फायदे में रहा है। उसी प्रकार वस्तु ग्राहक के हाथ में देकर उसकी राशि प्राप्त करते ही वस्तु के प्रति अपना कर्तव्य समाप्त हो गया, ऐसा विक्रेता को नहीं समझना चाहिये; क्योंकि उसने वस्तु नहीं बल्कि वस्तु का उपयोग बेचा है। यदि वह वस्तु निरुपयोगी सिद्ध हुई तो वह वास्तविक विक्रय नहीं कहलायेगा। अतः विक्रय समाप्त करने के पश्चात् विक्रेता को चाहिये कि वह ग्राहक को इस प्रकार का आश्वासन दे कि वस्तु निरुपयोगी सिद्ध होने पर या बीच ही में बिगड़ने पर उसे बदल करे या अन्य मार्ग से उपयुक्त बनाने की उसकी (विक्रेता की) जिम्मेदारी रहेगी।

कुछ अवधि की प्रत्याभूति (Guarantee) देना भी ज़रूरी होता है। उस अवधि के बीच ग्राहक के अपराध के बिना ही वस्तु बिगड़ जाय; तो उसकी बिना-मूल्य दुरुस्ती की जानी चाहिये। प्रायः घड़ियाँ, रेडियो, जूते, निर्माण-यंत्र आदि के संबंध में यह प्रत्याभूति दी जाती है। योग्य उपयोग के कारण बिगड़ी हुई वस्तु का जीर्णोद्धार (Repairs) भी कुछ कम दाम में करा देने की प्रथा कई विक्रय-शालाओं में है (जैसे बाटा कंपनी में)। यदि इस प्रकार की सुविधा अपनी विक्रय-शाला में हो तो उसका उल्लेख ज़रूर करना चाहिये। यदि बड़े बड़े यंत्रों की सार्थ हो तो अपने इंजीनियर ग्राहकों की निर्माणियों में भेजकर जीर्णोद्धार का कार्य करा देना भी विक्रय-शाला का कर्तव्य है। यदि कोई वस्तु नाजुक हो और उसके विभाग (Parts) मँहगे हों, तो ग्राहक को यह बतलाना चाहिये कि उन वस्तुओं का जीर्णोद्धार वं उसी विक्रय-शाला में करा लें, अन्यथा अन्य जीर्णोद्धारक उसके उत्तम विभाग निकाल सकता है।

अपने पास वस्तु के खुले-विभाग (Spare parts) हों तो उसको जानकारी ग्राहक को ज़रूर दी जानी चाहिये। कई बार खुले-विभाग (Spare parts) न मिलने के कारण ग्राहक को बड़ा परेशान होना पड़ता है और कभी कभी पूरे यंत्र का उपयोग त्याग देना पड़ता है।

ग्राहक-द्वारा खरीदी गई वस्तु यदि वैज्ञानिक पद्धति की हो तो उसके साथ उसके उपयोग का विवरण देनेवाला पूरा साहित्य (Literature) देना चाहिये। उसका महत्वपूर्ण विभाग अधोरेखांकित करना चाहिये और विशेष धोखे की बातें लाल स्याही से चिन्हांकित करनी चाहिये। विशेषतः धोखे के यंत्रों और दवाइयों के बारे में यह सावधानी अत्यावश्यक है।

अन्त में जाते-जाते ग्राहक-द्वारा किये गये क्रय से संबंधित अन्य कोई वस्तु अपने पास हो तो उसकी याद सहज रूप से केवल जानकारी के लिए देना लाभ-दायक सिद्ध होता है। यदि ग्राहक अपनी लड़की को विवाह में भेंट देने के लिए बर्तन खरीदता है तो उसे अन्त में 'पानदान' की याद दिलाने पर ग्राहक कह सकता है—'अरे हों भाई, यह चीज़ तो मैं भूल ही गया था।' इस याद के कारण दो कार्य होते हैं : ग्राहकों की सहानुभूति प्राप्त होती है और अपने विज्ञय द्वारा आर्थिक लाभ भी होता है।

प्रवासी विक्रेता Travelling Salesman

विक्रय-शाला में कार्य करने वाले विक्रेताओं के संबंध में अबतक विस्तार पूर्वक चर्चा की गई। विक्रेताओं का दूसरा प्रकार है—प्रवासी विक्रेता। बड़ी सार्य स्थानीय विक्रय की अपेक्षा भिन्न भिन्न प्रदेशों से आदेश एकत्रित कर उनको थोक (बहुशो) प्रमाण में कार्यान्वित करना ही उचित लाभदायी समझती हैं। इन सार्यों के पास प्रवासी विक्रेताओं की बड़ी फौज हुआ करती है जिनके भरोसे वे करोड़ों का विनियोग किया करती हैं। इन प्रवासी-विक्रेताओं के बारे में जानकारी हासिल करना भी विक्रय कला का एक अविभाज्य अंग है। इन विक्रेताओं को महीनों प्रवास में रहना पड़ता है और चन्द नमूनों तथा विवरणों के आधार पर अपना विक्रय-भाषण सफल बनाकर दिखाना पड़ता है जिसके लिये उन्हें विक्रय-शाला में कार्य करने वाले ग्राहकों की अपेक्षा बहुत बड़े प्रमाण में पूर्व तैयारी करनी पड़ती है।

पूर्व तैयारी में 'प्रदेश-अध्ययन' प्रथम स्थान रखता है। विक्रेताओं के प्रशिक्षण के बाद उनकी रुचि और प्रबंधक की इच्छानुसार उन्हें प्रदेश वंटित किया जाता है। उसके पश्चात् प्रवासी विक्रेता को उस प्रदेश की सूक्ष्म जानकारी हासिल कर लेनी चाहिए। प्रवास के कौन-कौनसे साधन उपलब्ध और सहूलियत के हो सकते हैं इस बात का अध्ययन कर उस दृष्टि से प्रवास-कार्यक्रम निश्चित कर लेना योग्य होगा। प्रवास में कहाँ कहाँ रुकने और भोजन का प्रबंध हो सकता है इसकी भी जानकारी हासिल कर लेनी चाहिए। प्रथम प्रवास में थोड़ा अधिक समय देना पड़ेगा, किन्तु बाद में जैसे जैसे सारी जानकारी प्राप्त होगी, परिचय बढ़ेगा और घूमने की आदत होगी वैसे वैसे समय की बचत होती रहेगी।

प्रवास की पूर्व योजना बनाकर उसकी एक प्रति अपने पास और दूसरी सार्य के पास देना प्रवासी-विक्रेता का कर्तव्य है। जिन शहरों और देशांतों में विक्रेता जा रहा हो वहाँ के पुराने या संभाव्य ग्राहकों की सूची यदि सार्य के पास हो तो वह इस प्रवासी-विक्रेता के सुपुर्द कर देगी जिसके आधार पर प्रवासी विक्रेता अपना मुलाकात-कार्यक्रम तय करेगा। यदि इस प्रकार की सूची सार्य में तैयार न हो तो जिन जिन साधनों और व्यक्तियों द्वारा अपने प्रदेश के संभाव्य ग्राहकों की जानकारी हासिल की जा सकती है, कर लेनी चाहिए। इसकी सूची

बनाकर एक प्रति अपनी सार्य के पास भी दे दी जाय ताकि उल्लेख (Record) के नाते वह स्थायी चीज सार्य के पास बनी रहे। सार्य से यह प्रार्थना करनी होगी कि इन सब संभाव्य ग्राहकों को वस्तु का तथा विक्रेता का परिचय, प्रवास कार्यक्रम आदि बातों के बारे में वह परिचलन-पत्रों द्वारा जानकारी दे दे। इस प्रकार बनाई गई सूची के अनुसार प्रत्यक्ष प्रवास करते समय जो जो नई बातें प्रवासी-विक्रेता की निगाह में आयगी उन सबका उल्लेख अपनी पुरानी सूची में कर उसकी जानकारी अपने सार्य को भी प्रवासी-विक्रेता दे दे। इस सूची के 'ग्राहकों की विशेषताएँ' (सार्य की प्रतिष्ठा, वह कितने वर्षों से कार्य कर रही है, कौनसी प्रमुख वस्तुओं का व्यवसाय करती है, प्रबंधक कौन और किस विचार के हैं आदि) स्वतंत्र फाइल में लिख रखनी चाहिये जो स्थायी उल्लेख (Record) बन सके।

इस प्रकार प्रवास योजना बना लेने के पश्चात् अपनी वस्तुओं और नमूनों की ओर प्रवासी विक्रेता को ध्यान देना होगा। वस्तुओं के गुण, उनकी विशेषतायें, बनावट, उपयोग आदि के संबंध में पूरा ज्ञान हासिल करना आवश्यक है। अपनी नमूने (न्यादर्श) को सामग्री भी पूरी और प्रतिनिधि स्वरूप होनी चाहिये। कितनी वस्तुएँ नमूने के बतौर लें, उनको रखने के लिए कौनसी सन्दूकें या डिब्बे लें यह सब वस्तुओं के प्रकार पर निर्भर रहेगा। इत्र की छोटी-छुट्टियों के लिए छोटी चमड़े की पेटी पर्याप्त है। इसके विपरीत रेडियो के आदर्श साथ रखने हों तो हरेक के लिये स्वतंत्र पेटी ही रखनी होगी। न्यादर्श की वस्तुएँ टूटने-फूटने, और कान्ति हीन होने की नौबत कभी खड़ी नहीं होनी चाहिये। और हर वस्तु रखने-उठाने की दृष्टिसे वे सुविधाजनक होनी चाहिये। न्यादर्शों के साथ वस्तु विवरण-साहित्य और विक्रय-साहित्य रखना आवश्यक होगा जिस के अभाव में वस्तुओं का उपयोग समझाना संभव नहीं हो सकेगा।

उपर्युक्त पूर्व-तैयारी के पश्चात् विक्रेता को प्रवास के लिये निकलना होगा। साथ में पर्याप्त पोशाक, ओढ़ने-बिछाने के कपड़े, नाश्ते की सामान्य सामग्री और मामूली दवाइयाँ (आयोडिन, बोरिक पाऊडर, सेरोडिन आदि) भी रखनी चाहिये। किसी भी शहर में पहुँचने पर किस व्यापारी की प्रथम मुलाकात ली जाय यह निश्चित करना होगा! यदि बड़ा शहर हो तो टेलीफोन द्वारा मुलाकात और फुर्सद का समय पूछ लेना उचित होगा।

इस प्रकार विक्रेता यदि किसी व्यापारी की विक्रय-शाखा या कार्यालय में मुलाकात करने पहुँचता है तो कई बार सहायक कर्म-चारी से प्रथम मुलाकात

होती है और ये सहायक विक्रेता को कुछ बहाना बतलाकर उसकी प्रमुख दूकानदार से भेंट नहीं होने देते। ऐसे मौकों पर इन सहायकों के साथ बड़ी विनम्रता और आकर्षक स्वरूप के साथ पेश आना चाहिये और यह जैसा देना चाहिये कि यदि उसकी दूकानदार के साथ मुलाकात न हुई तो विक्रय-शाला की हानि होगी जिसकी जिम्मेदारी इन सहायकों पर रहेगी। जहाँ तक संभव हो विक्रय के संबंध में सहायकों से बात करना योग्य नहीं है, क्योंकि न तो वे उसका महत्त्व पूर्ण रूप से समझेंगे, न भाषण का सही सार दूकान-मालिक को दे सकेंगे। कभी कभी विक्रेता को यह बतला दिया जाता है कि विक्रय-शाला के मालिक काम में लगे हुए हैं और उस समय उनसे मिल नहीं सकेंगे। यदि वास्तव में मालिक अत्यंत कार्य-व्यस्त हो, तो उससे ज़बरदस्ती भेंट करना उचित नहीं है। वह नाहक झुंझला उठेगा या विक्रय-भाषण ठीक से नहीं कर पायगा। किन्तु यदि किसी छंटेसे कारण के लिये यह ज़बाब मिलता है—‘बाद में आइए’ तो समझ लेना चाहिए यह ‘बाद में आइए’ एक ही समय में समाप्त नहीं होने वाला है, वह लगातार चलता ही रहेगा। अतः यथासंभव उसी समय मुलाकात के लिये प्रयत्न कर विलम्ब के कारण होने वाली हानि को समझा देना चाहिये।

विक्रय-शाला में प्रवेश पाने के बाद शीघ्र विहंगम दृष्टि से उस की सजावट, कार्यालय-रचना, मालिक की पोशाक आदि बातों का अध्ययन कर लेना चाहिये जिस से अपने भाषण का रुख किस प्रकार रखा जाय और अपनी वस्तुएँ विक्रय-शाला के लिए कहाँ तक उपयुक्त हो सकती हैं, इस की कल्पना आ सके। पोशाक और कार्यालय-रचना से मालिक आधुनिक स्वरूप का महसूस हो तो उसे चटकी-मटकीली चीजों के नमूने प्रथमतः दिखाने चाहिये और सामान्य चर्चा करते समय भी आधुनिकता को बार बार दोहराना चाहिये। यदि पुराने मत का दूकानदार हो तो प्राचीन संस्कृति की प्रशंसा करते हुए भाषण प्रारंभ करना उचित होगा। वातायनों में स्थित वस्तुओं की जाति की नहीं, सस्ती और अत्यंत आकर्षक वस्तुएँ पास हों तो निकाल कर तुलनात्मक दृष्टि से उनके महत्त्व का वर्णन करना अधिक प्रभावोत्पादक सिद्ध होगा। वातायनों की वस्तुएँ जिस विक्रेता ने प्रदान (Supply) की उस विक्रेता से अधिक और उदार सहूलियतें आप दे सकते हैं इस बात को भाषण में कभी नहीं भूलना चाहिये। गुण, दाम और उपयोगिता की दृष्टि से अपनी वस्तुओं का योग्य वर्णन किया जाना चाहिये और प्रत्येक बात का वर्णन करने के पश्चात् उसका सामने के व्यक्ति पर क्या प्रतिक्रिया हो रही

हे इस बात को देखते रहना चाहिये। जहाँ पर भी दूकान-मालिक के चेहरे पर असंतोष की भावना दीख पड़े, अपने भाषण का स्वर तुरन्त बदलना ही विक्रेता की कसौटी होगी।

विक्रेता को जब बिल्कुल नयी वस्तु का प्रचार करना होता है तब काफी मेहनत उठानी पड़ती है। नयी वस्तु पर एकाएक लोग विश्वास नहीं करते हैं, इसलिये मित्रता के नाते पेश आना और वस्तु के निरुपयोगी सिद्ध होने पर वापिस लेने का वचन देना ज़रूरी होता है। यदि वैज्ञानिक वस्तु हो (जैसे दवाइयों, यंत्र आदि) तो उस के बनावट (Composition) की जानकारी दूकानदार आवश्यक समझते हैं। अतः विक्रेता को तत्संबंधी सब बातें सविस्तर बतलानी चाहिये। नयी नयी वस्तु को स्वीकार करने में दूकानदारों की झिझक होती है तब उसी शहर या विभाग के किसी अन्य प्रमुख प्रभावक दूकानदारने वस्तुएँ खरीद की हो और उसे बहुत ही लाभप्रद सिद्ध हुई हो तो उसका प्रमाण-पत्र दिखा देना अधिक अच्छा रहेगा। कई बार प्रचार के नाने व्यापारियों को मुफ्त नमूने (Free Samples) देने पड़ते हैं और कभी कभी यदि वस्तुएँ न बिक सकें तो एक निश्चित अवधि के भीतर वापिस लौटा लेने का आश्वासन भी देना पड़ता है।

व्यापारी अपने विक्रय-द्वारा आर्थिक लाभ और ग्राहकों का संतोष चाहते हैं। अतः इन दोनों बातों के लिये अपनी वस्तुएँ अपने प्रतिस्पर्धी की अपेक्षा अधिक सहायक कैसे होती हैं यह योग्य शब्दों में, प्रतिस्पर्धी की निंदा न करते हुए, समझाना चाहिये। वस्तुएँ दिखाना, उनका प्रत्यक्ष उपयोग बतलाना, उसके पश्चात् की प्रतिक्रिया का अध्ययन करना और सूचनाएँ देना आदि बातों की चर्चा विक्रय-शाला के विक्रेता के वर्णन में आ चुकी हैं। उसी नीति का कुछ योग्य परिवर्तित रूप में प्रवासी-विक्रेता को अवलंब लेना होगा। हाँ, उसे एक बात नहीं भूलना चाहिये कि अब वह सामान्य उपभोक्ता ग्राहक के साथ बात नहीं कर रहा है, बल्कि जो स्वयं विक्रेता का कार्य कर रहा है ऐसे व्यापारी-ग्राहक के साथ बात कर रहा है।

आदर्श विक्रेता के गुण

विक्रेता के प्रत्येक कार्य की चर्चा और विक्रय-शाला के प्रबंध का सविस्तर वर्णन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि विक्रेता के लिए कुछ

गुण आवश्यक गुण होने हैं। ये गुण कुछ लोगों में स्वाभाविक रूप से ही होते हैं। अक्सर व्यापार-वातावरण में पले हुए व्यक्ति में ये गुण सिवा किसी प्रयास के ही आ जाते हैं, जैसे इस को जन्मतः ही तैरना। लेकिन जिन को उस प्रकार की वातावरण-सुविधा प्राप्त नहीं हुई उन्हें ये गुण प्रयत्न-पूर्वक हासिल करने पड़ते हैं। प्रयत्न से कार्य-सफलता जरूर मिलती है, किन्तु प्रयत्न के पूर्व-यह देख लेना चाहिये कि अपने मन में इस व्यवसाय के प्रति स्वाभाविक लगन है या नहीं। अन्यथा स्वभाव के खिलाफ जाकर किये गये प्रयत्न अयोग्य प्रतिक्रिया निर्माण कर सकते हैं।

आदर्श विक्रेता के निम्न लिखित गुण माने जाते हैं।—

१. उत्तम स्वास्थ्य एवं शरीर-रचना

शरीर-रचना इश्वरीय देन है। कुछ लोग गौर वर्ण, ऊँचे-पूरे और हठे-कठे होते हैं और कुछ दुर्बल, टिंगने और अभद्र-दर्शन होते हैं। जिन्हें यह इश्वरीय देन प्राप्त हुई है, वे तो बड़भागी ही हैं, पर दुर्भाग्यवश जिन्हें वह प्राप्त नहीं हुई उन्हें भगवानने जिस किसी प्रकार का शरीर दिया हो उसे विकृत नहीं होने देना चाहिये। योग्य व्यायाम और समयानुकूल भोजन कर उसे मोटा होने से बचना चाहिये, यदि कृश शरीर हो तो पुष्ट-भोजन और नियमित कार्यक्रम से उसे बलिष्ठ बनाना चाहिये। यदि टिंगनेपन का दोष हो तो ऊँची एड़ी के जूते पहन कर उस दोष को दूर करना चाहिये। अनावश्यक शरीर-विकृति को प्रयत्न पूर्वक टालना आवश्यक है। तिरछा देखना, बारबार पलकें मिचमिचाना, भौं सिकोड़ना, नाखून दातों में डालना, नाक में उंगलियाँ डालना आदि अस्वच्छ आदतें प्रयत्न से टाली जा सकती हैं।

स्वास्थ्य यदि अच्छा रहा तो मन भी प्रसन्न रहता है—(A Sound mind in a sound body)। स्वास्थ्यहीन मनुष्य सदा चिढ़ा करता है। ऐसे स्वभाव को प्रादिक बरदाश्त नहीं कर सकते। व्याधिमस्त विक्रेता विक्रय-शाला के लिये निश्चित असफलता का स्पष्ट चिन्ह है। विशेषतः प्रवासी-विक्रेता के लिये उत्तम स्वास्थ्य अनिवार्य बात है।

२. उत्साह पूर्ण एवं मधुर स्वभाव

विक्रेता का कार्य बहुत ही कलमत्तक है। हजारों प्रादिकों के अनेक उत्तर उसे अपने अकेले मुँह से देना पड़ता है। बार बार वही वर्णन बतला कर अनेक

वस्तुएँ दिखानी पड़ती हैं। यह कार्य सुस्ती से नहीं किया जा सकता। बिजली-सी चमक और उत्साह उसके लिये आवश्यक है। उदासीन, ललाट पर तले और नाक-भौं सिकोड़कर बैठे हुए विक्रेता की ओर ग्राहक आकृष्ट नहीं हो सकते। अत्यंत उत्साह के साथ और सब से मीठी वाणी से भाषण करते हुए वह कार्य उसे करना चाहिये।

३. पोशाक

उत्तम स्वास्थ्य और मधुर स्वभाव को यदि योग्य पोशाक का साथ मिल जाय तो वह संयोग दूध और चीनी के संयोग के समान उपयोगी होगा। पोशाक व्यक्तित्व (Personality) को बनाती है। विक्रेता की पोशाक भड़कीले रंग की और चटकीली-मटकीली न हो, सादी और शरीर पर फबने वाली हो। वह अद्यावत होने हुए भी छिछोरपन की झलक प्रकट करने वाली न हो। पोशाक सदा स्वच्छ एवं सले, दाग आदि दोषों से रहित होनी चाहिये जिसके लिये विक्रेता की आदतें भी स्वच्छ होना जरूरी है। पान-तमाग्वु, सुंघनी आदि की आदतें अनुचित समझी जाती हैं।

४. संकट-समय पर शान्ति

व्यापार में सदा उच्चावचन होते रहते हैं और कभी कभी एकाएक भयावह परिस्थिति निर्माण हो सकती है जिससे घबड़ा कर विक्रेता को धीरज नहीं खोना चाहिये। यह तो वास्तव में विक्रेता के लिए परीक्षा का समय होता है। इस मौके पर उसे शान्ति धारण करना चाहिये। अपनी यह दशा हर किसी से कदते फिरने की आवश्यकता नहीं है। 'ढकी मुट्ठी लाख की' इस नीति का अवलंब यहाँ पर जरूरी है। इसी बीच परिस्थिति बदल सकती है और उससे लाभ हो सकता है, क्योंकि अवसाद-समय लगातार तो चलता नहीं है। यदि विक्रेता धीरज खोकर निराशाजनक व्यवहार करना प्रारंभ करता है तो परिस्थिति काबु के बाहर हो जायगी और नौकर चाकर तक अवज्ञा करना प्रारंभ करेंगे। उत्तमर्ण भी अपना ऋण तुरन्त वापिस चाहेंगे। अतः विक्रेता को चाहिये कि वह संकट के समय में बड़ी सावधानी के साथ व्यवहार करे।

५. संभाषण-निपुणता और नम्रता

भाषण-कला विक्रेता का अविभाज्य अंग है, जिसके अभाव में वह अपनी वस्तुओं या सेवाओं का महत्त्व ही ग्राहकों को नहीं बतला सकेगा। विक्रेता को

चाहिये कि वह योग्य रीतिसे अपने भाव व्यक्त करना सीख ले। लगातार थोकेते ही रहना, अधूरा बोलना, अस्पष्ट बोलना आदि भाषण-दोष माने जाते हैं जिनसे विक्रेता को बचना चाहिये। भाषण में विनोद आवश्यक है, फिर भी वह अशुचि निर्माण करनेवाला (विशेषतः स्त्री-प्राहकों के मन में) न हो। पात्र देखकर भाषा बदलनी होगी। अशिक्षित ग्रामीण ग्राहक के साथ स्पष्ट और ऊँचे स्वर में तथा सरल भाषा में बोलना होगा; सुशिक्षित शहरी ग्राहक के साथ धीमी और सभ्य भाषा में वार्तालाप करना होगा। वस्तु का वर्णन करते समय शब्दाडंबर और पाण्डित्य-प्रदर्शन को टालना चाहिये। प्रायः विक्रय-कार्य के अलावा अन्य बातें उस समय नहीं करनी चाहिये। भाषण के समय सभ्यता के सारे नियमों का पालन किया जाना चाहिये। अंगड़ाइयाँ लेना, उबासियाँ लेना आदि भाषण-समय के बड़े दोष हैं।

भाषण नम्रता-पूर्ण होना चाहिये, लेकिन भाव भंगियाँ, गिड़गिड़ाता, मुँह बिगाड़कर अति नम्रता दिखाना आदि बातें अयोग्य हैं। टीका-टिप्पणी, उपहास, व्यंग-दर्शन आदि बातों से अलिप्त रहना अच्छा है।

६. आत्मविश्वास और जीवन्तता

आत्मविश्वास सफलता का बीज है। आत्मविश्वास के अभाव में मन में सदा घबराहट रहती है जिससे बननेवाला काम भी बिगड़ जाता है। आत्म-विश्वास के साथ कार्य करने से न आनेवाला कार्य भी बन जाता है। जीवन्तता के कारण कार्य-सिद्धि अन्त में ज़रूर हासिल होती है।

७. अपने व्यवसाय के प्रति प्रेम

विक्रय-व्यवसाय के प्रति जिस व्यक्ति के मन में स्वाभाविक प्रेम हो, उसे ही इस व्यवसाय को स्वीकार करना चाहिये। ज़बरदस्ती मन के खिलाफ़ काम करने में कोई सार नहीं है, क्योंकि उसका उत्सार उस व्यवसाय में अधिक समय तक टिक नहीं सकेगा और स्वाभाविक रुचि न होने के कारण उस कार्य को वह दिल से कर भी नहीं सकेगा।

८. स्थिर-विचार और निश्चय

विक्रेता का मन किसी के बदलावे में न आनेवाला होना चाहिये। किसी एक बात का विचार कर अपना मत बनाने की ओर वह बनने के पश्चात् उस के अनुसार, अड़चनों के बावजूद भी, (जबतक वह उस में विश्वास करता है) चलने की उस के मन की ताकत होनी चाहिये। किसी के सामान्य विशेष से, डराने

से यह बटुकाने से उसका निश्चय विचलित नहीं होना चाहिये। उसी प्रकार उसके विचार भी स्थिर होने चाहिये अन्यथा व्यापारियों को उसपर विश्वास करना मुश्किल हो जायगा। अपने शब्द का पालन करना उसका कर्तव्य है। बात-बात में बदलने वाले विक्रेता को उस व्यापार-विश्व में स्थान नहीं है जहाँ केवल 'शब्द' के भरोसे लाखों का क्रय-विक्रय होता है।

९. द्वेष-ईर्ष्या से अलिप्त रहना

अपने प्रतिस्पर्धी का द्वेष करना विक्रेता का बड़ा दोष है जिसके कारण आपसी संबंधों में इतना तनाव-खिंचाव निर्माण होता है कि वह आम जनता के लिए एक चर्चा की बात हो बैठती है और उसके कारण विक्रेता बदनाम हो जाता है। ग्राहक यह भी समझने लगते हैं कि विक्रेता अपनी जुटियों को छिपाने के लिए दूसरों की निंदा करता होगा। आपसी द्वेष के कारण कभी कभी खून तक हो जाते हैं। द्वेष करने वाला विक्रेता अक्सर अन्य व्यक्तियों के लिए घृणा का पात्र हो जाता है। अतः विक्रेता को चाहिए कि वह अपने प्रतिस्पर्धियों के साथ सहयोग और मित्रता की भावना से व्यवहार करे।

प्रश्न

१. विक्रय-कला की सर्वोत्तम पूर्ण परिभाषा तैयार कीजिए और बतलाइए कि विक्रय-कला 'कला' है या 'विज्ञान' (शास्त्र) ?

२. 'किसी भी व्यापार की धमनियाँ विक्रय-कला है'—क्या आप इस कथन से सहमत हैं ?

३. भारत की विक्रय कला कहाँ तक परिपूर्ण है ? उसके विकास के लिये कुछ सुझाव पेश कीजिये।

४. विक्रय-कला का अर्थ-शास्त्र के विभिन्न अंगों से क्या संबंध है ?

५. विक्रय शाला में किन किन उद्देश्यों से ग्राहक प्रवेश करते हैं ? उनके साथ विक्रेता किस प्रकार व्यवहार करे ?

६. 'ग्राह्य-प्रदर्शन का उद्देश्य ग्राहकों को आकृष्ट कर द्वार तक लाना है'—इस कथन का समर्थन कीजिए।

७. बाह्य-प्रदर्शन प्रभाव पूर्ण किस प्रकार किया जा सकता है ?

८. वातायन-प्रदर्शन की परिभाषा कर उसका विक्रय-क्षेत्र में महत्व वर्णन कीजिए ।

९. अभिविन्यसन-कला को अभिनेत्री की उपाय दी जाती है, क्या यह ठीक है ? विक्रय-शाला के अभिविन्यसन का मार्ग-दर्शन कीजिए ।

१०. आन्तरिक प्रदर्शन का मूल उद्देश्य क्या है ? उसमें कौनसी बातें समाविष्ट हैं ?

११. प्रदर्शनों में प्रकाश और रंगों का महत्त्व कहाँ तक है ?

१२. ग्राहकों के विशेष प्रकार बतलाकर उनके साथ विक्रेता का व्यवहार किस प्रकार रहे यह स्पष्ट कीजिए ।

१३. ग्राहक के साथ विक्रेता कब और कैसे वार्तालाप प्रारंभ करे ? कब स्वयं ग्राहक को वार्तालाप प्रारंभ करने का मौका दे ?

१४. वस्तुएँ किस प्रकार दिखायी जायँ ? वस्तु दिखाने ले जाने और वस्तुओं के प्रत्यक्ष उपयोग के बारे में कौनसी सावधानी रखनी होगी ?

१५. विक्रेता-ग्राहक के बीच प्रश्नोत्तर किस प्रकार होने चाहिये ? एक आदर्श वार्तालाप की कल्पना कर संवाद के रूप में लिखिए ?

१६. ग्राहकों की सर्व साधारण कौनसी शिकायतें होती हैं ? उनका आप निराकरण किस प्रकार करेंगे ?

१७. आदर्श विक्रेता की कल्पना कर उसके गुणों का वर्णन कीजिए ?

१८. प्रवासी-विक्रेता के लिये कौन-कौनसे गुण आवश्यक होते हैं ? उन्हें कौनसी सुविधायें प्रदान की जानी चाहिये ?

१९. टिप्पणियाँ लिखिए—

(अ) प्रतिक्रिया बिन्दु, (ब) मूल्य और महत्व,

(क) विक्रय-पश्चात्-सेवा ।

विक्रय-प्रणालियाँ

(Methods of Marketing)

सामाजिक रहन-सहन की उन्नति के साथ-साथ विक्रय-प्रणालियों में भी क्रान्ति होती रही। प्राचीन काल में वस्तुएँ देखने के पश्चात् ही ग्राहक उन का क्रय किया करते थे। आज भी पिछड़े हुए राष्ट्रों में, जहाँ पर प्रमापीकरण और वर्गीकरण संभव नहीं हो पाया, क्रय-विक्रय उसी रीति से चलता है। किन्तु जब व्यापार को व्यापक स्वरूप प्राप्त हुआ और हजारों मीलें से वस्तुएँ एकत्रित कर उनका विश्वव्यापी विपणि में वितरण प्रारंभ हुआ तब वस्तु को प्रत्यक्ष देखकर क्रय-विक्रय करना असंभव होने लगा। अतः केवल १९ वीं शताब्दी में छोटे नमूने (न्यादर्श) भेज कर विक्रय प्रारंभ हुआ और वही कुछ हद तक अब भी चले रहा है। किन्तु विश्व-विख्यात वस्तुओं का व्यापार आज केवल वर्णन द्वारा किया जाता है।

भ्रमविभाजन-पूर्व जमाने में उत्पादन कुटीर-उद्योग के स्वरूप का था और उत्पादक उत्पादन तथा विपणन की पूरी जिम्मेदारी स्वयं उठाता था। किन्तु जैसे-जैसे उत्पादन-प्रमाण बढ़ता गया, उत्पादक ने विपणन-कार्य छोड़ कर केवल उत्पादन कार्य में अपना ध्यान केन्द्रीभूत रखना प्रारंभ किया। उत्पादन के साथ साथ वितरण कार्य में ध्यान देना उसके लिये संभव नहीं था। अतः उत्पादकों ने ऐसा वर्ग ढूँढ़ निकाला जिसके पास विपणन-कला मौजूद थी और जो वितरण के लिये पूँजी लगा सकता था।

उसके पश्चात् तीसरी शताब्दी में नयी विचार-प्रणाली चल निकली। जब अवसाद-समय से उत्पादक प्रस्त होने लगे, तब वे सोचते रहे कि मध्यजन (Middleman) को हटाने से उनको दिया जाने वाला लाभ वस्तु मूल्य से घटाकर कम मूल्य में ग्राहकों को वस्तुएँ बेची जा सकती हैं या यदि पूर्व-मूल्य में ही बेची गयीं तो मध्य जनों को दिया जाने वाला वर्तन बचाया जा सकता है। उपभोक्ता भी यह सोचने लगे कि मध्यजनों का लाभ, उन्हें हटाने से, बचाया जा सकता है और सहकारी साधों द्वारा साँचे उत्पादक के पास आदेश भेज कर चीजें कम

दाम में हासिल की जा सकती हैं। जो कार्य बहुशो तथा अल्पशो विक्रेता करते थे, उसे अपने विक्रेताओं की तथा विज्ञापन की सहायता से कर ग्राहकों के साथ उसके द्वारा सीधा सम्पर्क प्रस्थापित करने की और अधिक लाभ पाने की उत्पादक कोशिश करने लगे। कुछ उत्पादक इस प्रयत्न में सफल रहे। सहकारी साधों ने इस सफलता में काफी सहायता की। किन्तु यह सफलता अपनी निजी सीमा रखती है और उसकी प्रगति बहुत ही कम हो पायी है।

मध्यजनों का कार्य (Work of the Middleman)

यद्यपि कुछ निर्मित (Manufactured) वस्तुओं के विक्रय में मध्यजनों को हटाना संभव हो सका, कच्चा माल और अनाज के विक्रय में वह असंभव सिद्ध हुआ है। अतः मध्यजनों की सेवाओं से हम सम्पूर्णतः मुक्ति नहीं पा सकते। मध्यजनों के प्रमुख दो प्रकार हैं :

१. बहुशो-विक्रेता और २. अल्पशो-विक्रेता।

१. बहुशो-विक्रेता द्वारा विक्रय (Sales through the Whole-Saler)

बहुशो-विक्रेता प्रायः उस व्यापारी को कहते हैं, जो उत्पादक और अल्पशो विक्रेता के बीच मध्यजन का कार्य करता है। वह उत्पादक से या विदेशी व्यापारियों से बहुत बड़े प्रमाण में वस्तुएँ खरीदकर अल्पशो-विक्रेताओं को अपरिवर्तित अवस्था में बेचता है। बहुशो-विक्रेता अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखता है या कभी-कभी वह उत्पादक के अभिकर्ता के नाते कार्य करता है। इन दिनों बहुशो-विक्रेता का व्यापार-विश्व में एक अमिट-सा स्थान रखता है। अल्पशो विक्रेता भी सीधे उत्पादक से क्रय करने की अपेक्षा बहुशो विक्रेता के द्वारा ही वस्तुएँ खरीदना चाहता है जिसके निम्न कारण हैं :

१. बहुशो-विक्रेता, अल्पशो-विक्रेता को समयानुसार वितरित करने के लिये, अपने भांडागारों में वस्तुएँ रखता है। अतः अल्पशो-विक्रेता के लिये समग्र-कार्य का प्रबंध रखने की ज़रूरत नहीं रहती और उसका भांडागार-व्यय बच जाता है।

२. अल्पशो-विक्रेता-द्वारा उत्पादक के पास भेजे गये अभियाचन (orders) इतने जल्दी कार्यान्वित नहीं हो सकते जितने जल्दी बहुशो-विक्रेता के पास भेजे गये अभियाचन हो सकते हैं। इस सुविधा के कारण अल्पशो-विक्रेता की विक्रयगति (Turn over) बढ़ जाती है और साथ ही साथ लाभ भी।

३. समय-समय पर वस्तुएँ क्रय करने की इस प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त होने के कारण अल्पशो-विक्रेता के पास वस्तुओं का संग्रह बना रहता है और मृत स्क्रॉप (dead stock) होने का डर समाप्त हो जाता है।

४. वस्तु-मूल्याँ में स्थिरता निर्माण कर बहुशो-विक्रेता उच्चावचन के भय से उत्पादक, अल्पशो विक्रेताओं और उपभोक्ताओं की रक्षा करता है। अवसाद काल में उत्पादित वस्तुओं को अपने पास संग्रहीत कर वह विपणि में अनावश्यक अधिक प्रदाय (Supply) निर्माण नहीं होने देता जिससे वस्तुओं का मूल्य नहीं गिर पाता। उभी प्रकार अभियाचन-वृद्धि के समय योग्य साधनों द्वारा शीघ्रता से वस्तुओं का प्रदाय बढ़ाकर मूल्य-वृद्धि को रोक रखता है।

५. अल्पशो-विक्रेताओं को वह प्रत्यय-सुविधाएँ प्रदान कर उनमें व्यापार का ढाढ़स बँधाता है और निर्धन किन्तु कुशल व्यापारियों को विकास की सुविधाएँ प्रदान करता है।

६. बहुशो-विक्रेता अपनी वस्तुओं के सभी प्रकार निर्माणियों से प्राप्त कर अपने अल्पशो-विक्रेताओं को वितरित किया करते हैं। अतः अल्पशो-विक्रेताओं को भिन्न-भिन्न उत्पादकों से सम्पर्क प्रस्थापित करने में समय की बरबादी नहीं करनी पड़ती।

७. बहुशो-विक्रेता वस्तु-प्रदाय स्थानों की अच्छी जानकारी रखता है और वह उन्हीं उत्पादकों से वस्तुएँ खरीदता है जो सस्ते दाम में योग्य वस्तुएँ या (अन्यों की तुलना में) समान दाम में अच्छी वस्तुएँ दे सकें। ये वस्तुएँ वह अल्पशो-विक्रेता को देता है। इस प्रकार प्राप्त की गयी सस्ती और अच्छी चीजें अल्पशो-विक्रेता उपभोक्ताओं को प्रतियोगिता मूल्य (competitive price) में बेच सकता है जिससे उन्हें सर्वोत्तम संतोष प्राप्त होता है।

बहुशो-विक्रेता उत्पादकों की भी सेवा किया करता है जिसका विवरण इस प्रकार है :

१. उत्पादित वस्तुओं के विक्रय का पूर्ण उत्तरदायित्व बहुशो-विक्रेता स्वीकार करते हैं जिससे चिन्तभुक्त होकर उत्पादक अपनी सारी शक्ति उत्पादन कार्य में केन्द्रीभूत कर वस्तुएँ सुन्दर, सस्ती और अद्यावत (Up to date) बनाकर उपभोक्ताओं को सर्वोत्तम संतोष प्रदान कर सकते हैं।

२. बहुशो-विक्रेता विपणि अन्वेषण कर उसका निचोड़ उत्पादकों के पास भेजते रहते हैं जिससे उत्पादक अपना उत्पादन का प्रमाण और भूषाचार भविष्यकालीन अभियाचनके अनुसार निर्धारित कर सकता है।

३. बहुशो-विक्रेता ने उत्पादक की वितरण-कार्य में लगने वाली पूँजी और भ्रम दोनों को बचाया है, जिनका उपयोग उत्पादन-वृद्धि के लिये वह कर सकता है।

४. भविष्यकालीन अभियाचित वस्तुओं के लिये बहुशो-विक्रेता उत्पादकों को अग्रिम (Advance) दिया करते हैं जिसकी सहायता से उत्पादक योग्य समय में कच्ची सामग्री सस्ते भाव से खरीद सकते हैं। इस प्रकार उत्पादन-व्यय कम कर अपने प्रतिस्पर्धी से वह टक्कर ले सकता है।

५. बहुशो-विक्रेता भविष्यकाल में निर्माण होनेवाली वस्तुओं की खरीदी का पहले से ही प्रसंविदा करते हैं, अतः निर्माणित वस्तुओं के विक्रय की उत्पादक को चिन्ता नहीं रहती।

६. वस्तुओं के विपणन के लिए किन-किन प्रदेशों में गुंजाइश है इसका अन्वेषण बहुशो-विक्रेता करते हैं और उस अन्वेषण का पूरा लाभ उत्पादक को प्रदान करते हैं।

उपर्युक्त कारणों से बहुशो-विक्रेता का, वितरण-कार्य में, स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण है। कभी-कभी अल्पशो-विक्रेता अपनी निजी निर्माणी प्रारंभ करते हैं या उत्पादक स्वयं अपना बहुशो-संगठन प्रारंभ करते हैं। इस प्रकार के संगठन में उत्पादन और वितरण इन दोनों विभागों की संयुक्त-नीति के कारण काफी लाभ होता है; किन्तु यह कार्य वे ही सार्थक कर सकती हैं जिन के पास पर्याप्त पूँजी होती है और योग्य संगठन संभव होता है।

क्या बहुशो-विक्रेता को हटाया जा सकता है ?

आजकल बहुशो-विक्रेता के खिलाफ़ बड़ा आंदोलन प्रारंभ हो गया है। उत्पादन-व्यय और विक्रय-व्यय के सारे अन्तर को बहुशो-विक्रेता निगल जाता है। इस व्यय को, सीधे उत्पादकों से संबंध प्रस्थापित कर बचाया जा सकता है, ऐसी मतप्रणाली अल्पशो-विक्रेताओं, उपभोक्ताओं और उत्पादकों के मन में जड़ पकड़ रही है। वे सोचते हैं:

१. बहुशो-विक्रेता विक्रय का ज़रा भी कार्य नहीं करता है, उत्पादकों से वस्तुएँ उठाकर अल्पशो विक्रेताओं के हाथों में रख भर देता है। अतः उसे विक्रेता की अपेक्षा प्रदाता (Supplier) ही कहना चाहिए। वह न तो वस्तुओं में नई उपयोगिता निर्माण करता है, न किसी प्रकार उपभोक्ताओं की सेवा करता है।

२. प्रायः एक बहुशो-विक्रेता अपने निश्चित क्षेत्र में ही कार्य करता है, फिर भी किसी एक क्षेत्र में प्रतियोगिता के कारण अनेक बहुशो-विक्रेता आतिच्छादन (Overlapping) किया करते हैं जिस से बहुत कुछ विक्रय-प्रयत्न (Sales effort) व्यर्थ जाते हैं।

३. इस बहुशो-विक्रेता के खिलाफ उत्पादक की सबसे बड़ी शिकायत यह है कि वह किसी एक उत्पादक का बोध-चिन्हित वस्तुओं का ही व्यापार नहीं करता, बल्कि कई उत्पादकों की चीज़ें अपने पास रखता है, जिससे उसपर पूर्ण भरोसा रखना किसी भी उत्पादक को संभव नहीं हो सकता। अतः आजकल उत्पादक अपनी वस्तुएँ बोध चिन्हांकित कर सीधे बेचने की कोशिश करने लगा है। बहुशो-विक्रेता केवल उन्हीं उत्पादकों की चीज़ों के विक्रय में अधिक रुचि रखता है जो उसे अधिक बर्तन देते हैं। बहुशो-विक्रेता का अपनी बोध-चिन्हांकित वस्तुएँ होती हैं और उन के साथ उसी प्रकार की अन्य उत्पादकों की वस्तुएँ बेचते समय उन अन्य वस्तुओं के लिये वह विशेष प्रयत्न नहीं करता।

४. बहुशो-विक्रेता के मन में अल्पशो-विक्रेताओं के प्रति अधिक रुचि होती है; उन्हीं का वह भला देखता है। उत्पादकों की वस्तुओं का प्रचार किस प्रकार हो इस दिशा में वे अधिक नहीं सोचते। विशेषतः आविष्कारों के पश्चात् निर्माण हुई नई वस्तुओं के प्रचार में बहुशो-विक्रेता का उपयोग प्रायः नहीं होता; क्योंकि प्रारंभ में उसे उन वस्तुओं के विपणन में विशेष आर्थिक लाभ नहीं होता, अतः यह कार्य स्वयं उत्पादक को ही करना पड़ता है।

उपर्युक्त कारणों से तथा शीघ्र आवागमन के साधन, प्रेक्षालय-सेवा, प्रेष-द्वारा मूल्य-देय (V. P. P.) आदि सुविधाओं के कारण अब उपभोक्ता उत्पादक के साथ सीधा सम्पर्क स्थापित करने में व्यस्त है। और बहु-विभागी भांडार, श्रृंखला विक्रय-शाला, सहकारी भांडार आदि संस्थाओं ने सीधे उत्पादक के साथ नाता जोड़ना प्रारंभ कर दिया है। उत्पादकों ने भी, व्यापक विज्ञापन और अपने विशेष बोध-चिन्हों द्वारा, सीधे उपभोक्ताओं के पास पहुँचने की काफी हद तक सफल साधना प्रारंभ की है।

इन प्रयत्नों के बावजूद भी बहुशो-विक्रेता अब भी जिन्दा है और रहेगा। कई कार्य ऐसे होते हैं जिन्हें बहुशो-विक्रेता ही कर सकता है। उदाहरणार्थ हानि-भय लीजिए। व्यापार सदा हानिभय (Risk) से परिपूर्ण होता है जिसका उत्तर-दायित्व स्वीकार करने की न तो उत्पादक की हिम्मत है न अल्पशो-विक्रेता की। अतः कम से कम हानिभययुक्त व्यापार से उसे हटाना असंभव है। इतनाही नहीं, बल्कि बहुविभागी भांडार या बहुविक्रय-शाला जब बहुशो-विक्रेता को हटाने के प्रयत्न करती है तब स्वयं बहुशो-विक्रेता बन जाती है। जिस व्यापार में सालभर भांडागार, अधिक पूँजी, गहन विपणि-अन्वेषण, प्रत्यय-आवश्यकता इन बातों का महत्त्व होता है वहाँपर बहुशो-विक्रेता का तो अमिट स्थान है। बहुशो-विक्रेता के खिलाफ यह आरोप लगाया जाता है कि उसके पारिभ्रमिक (Remuneration) के कारण वस्तु-मूल्य बढ़ जाता है; किन्तु यह आरोप निराधार है। इस प्रतिस्पर्धा के ज़माने में बहुशो-विक्रेताओं के बीच भी प्रतियोगिता बनी रहती है जिससे वे अपना वितरण-व्यय अत्यल्प रखने की कोशिश करते हैं। उन के द्वारा प्रदान की गयी सेवाओं का ख्याल करते हुए उनका व्यय नगण्य होता है और बड़े प्रमाण में व्यापार किया जाने के कारण यह व्यय और भी घट जाता है।

अल्पशो-विक्रेता द्वारा विक्रय (Sales Through Retailer)

अल्पशो-विक्रेता प्रत्यक्ष उपभोक्ताओं के साथ नज़दीक का सम्पर्क प्रस्थापित कर विक्रय करता है। वस्तुओं का प्रदेशों के कोने-कोने में प्रचार एवं विज्ञापन कर उनका योग्य प्रणाली द्वारा विक्रय करना उनका कार्य है। घनिष्ठ संबंध, वैयक्तिक सेवा और ईमानदारी के कारण अल्पशो-विक्रेता उपभोक्ता के विश्वास पात्र हो बैठे हैं। इसी विश्वास के कारण उपभोक्ता भी सीधे उत्पादकों से वस्तुएँ खरीदने की अपेक्षा अल्पशो विक्रेताओं द्वारा ही खरीदते हैं। अद्यावत् वस्तुएँ आवश्यक प्रमाण में और योग्य मूल्य में प्राप्त करने की सुविधा अल्पशो-विक्रेता ही दे सकता है। वस्तुओं के साथ-साथ वैयक्तिक विक्रय-कला और सेवा भी अल्पशो-विक्रेता प्रदान करता है। उपभोक्ताओं की शिक्षायतों का निराकरण अतिशीघ्रता से बिना अल्पशो-विक्रेता के होना असंभव है।

अल्पशो-विक्रय के निम्न प्रमुख प्रकार हैं:

१. स्वतंत्र एकल व्यापारी (Proprietor)
२. बहुविभागी भांडागार (Departmental Stores)

३. श्रृंखला विक्रय-शाला (Chain Shops)
४. प्रेष्यादेश व्यापार (Mail-order Business)
५. द्वार-द्वार विक्रय (House to House Sales)
६. क़या-वक़य विक्रय (Hire Purchase Selling)

१. स्वतंत्र एकल व्यापारी

अपनी छोटीसी विक्रय-शाला द्वारा अपने प्रदेश के ग्राहकों से सम्पर्क प्रस्थापित कर अपनी ईमानदारी और प्रामाणिक सेवा के भरोसे विक्रय करनेवाली यह एक विक्रय-प्रणाली है। इसमें विक्रय-शाला की सफलता या असफलता की पूरी जिम्मेवारी किसी एक व्यक्ति या भागिता सार्थ पर ही होती है और वह व्यक्ति या सार्थ विक्रय-शाला के विकास के साथ विकसित होती है तथा उसके पतन के साथ स्वयं डूब जाती है। भारत के प्रायः सभी देशों और छोटे शहरों में इस प्रकार की विक्रय-शालाएँ अत्यंत लोकप्रिय हैं। बहुशो-विक्रेताओं से या समय-समय पर सीधे उत्पादकों से वस्तुएँ खरीदकर ये सार्थ उन्हें संग्रहीत करती हैं और अपने ग्राहकों के योग्यतानुसार उन्हें सुविधायें (प्रत्यय, प्रदान (Delivery) आदि) प्रदान कर सारे वर्ष तक क्रय करती हैं।

वैयक्तिक लाभ के प्रलोभन के कारण एकलव्यापारी परिभ्रमपूर्वक और कम खर्चीली पद्धति से कार्य करते हैं जिससे वस्तु-मूल्य काफी कम रह सकता है। क्रय संबंधी निर्णय के बारे में उसे किसी की इज़ाज़त नहीं लेनी पड़ती, जिस से समयानुसार नांति परिवर्तित कर वह अपने कार्य में नित्य नूतनता तथा प्रत्यास्थता (Elasticity) निर्माण कर योग्य ग्राहकों की योग्य कद्र करता है। वह अपने व्यवहार गुप्त रख सकता है। ग्राहकों का विश्वास उसके लिये सब से बड़ी पूँजी है जिसे वह प्रयत्नपूर्वक संभालता है। अपनी निजी छोटीसी पूँजी ही उसके व्यापार के लिये पर्याप्त रहती है और अर्थ के लिये दूसरों के भरोसे रहने की नौबत उस पर कभी नहीं आती।

एकल व्यापारी की कुछ कमजोरियाँ भी हैं। उसकी पूँजी अत्यंत सीमित होती है जिसके कारण व्यापक स्वरूप में क्रय-विक्रय संभव नहीं होता। परिणामतः वस्तुएँ महँगी बेचकर ही अपने उदर-निर्वाह का उसे प्रबंध करना पड़ता है। वैयक्तिक कार्यशक्ति, कार्य-साधन और व्यापार-क्षेत्र विस्तार ये सब बातें अत्यंत सीमित होने के कारण उसका आय बहुत ही कम होती है। संग्रह-सुविधाएँ,

विशपन आदि बातें उसकी ताकत के बाहर की हैं और तशों की सेवा उसको कभी नसीब नहीं होती ।

२. बहुविभागी भांडागार (Departmental Stores)

अल्पशो विक्रय का सब से बड़ा स्वरूप 'बहुविभागी भांडागार' है । अल्प-शो व्यापार की उन्नति दो दिशाओं में हो सकती है—१. शहर के भिन्न भिन्न विभागों में या प्रदेश के भिन्न-भिन्न शहरों में शाखाएँ खोलकर और २. विक्रय-शाला के अनेक विभाग खोलकर । प्रथम प्रणाली 'बहु-विक्रय-शाला' के नाम से विख्यात है और द्वितीय 'बहु-विभागी भांडागार' के नाम से ।

एक प्रकार की विक्रय-शाला अपना व्यापार किसी एक ही वर्ग की वस्तु में या एक ही वस्तु में एक निश्चित सीमा तक बढ़ा सकती है । यह सीमा विक्रय-शाला की ओर आकृष्ट होनेवाले ग्राहकों की संख्या पर निर्भर होगी । जब ग्राहकों की संख्या बढ़ाना संभव नहीं होता तब उन्हें ग्राहकों की करीब सभी माँगों की पूर्ति कर अपना व्यापार बढ़ाने का प्रयत्न किया जाता है । अनेक विभाग खोलकर कई प्रकार की वस्तुओं का संग्रह किया जाता है ताकि उसी विक्रय-शाला में ग्राहक अपनी आवश्यकतानुसार सभी चीजें खरीद सके । इस प्रकार बहु-विभागी भांडागार अस्तित्व में आता है । इस प्रकार के बहु-विभागी भांडागार तब ही स्थापित किये जा सकते हैं जब ग्राहकों की संख्या केन्द्रीभूत हो । पिछली शताब्दी में औद्योगिक क्रान्ति के कारण शहरों की संख्या बढ़ी जिस से यह केन्द्रीकरण संभव हुआ । इन भांडागारों के लिये दूसरी आवश्यक चीज है विशाल पूँजी जो प्रमंडल-प्रणाली के कारण संभव होने लगी ।

शहर के किसी प्रमुख हिस्से में बहु-विभागी भांडागार की योजना की जाती है जहाँ तीन-चार रास्ते मिलते हों । भांडागार कई विभागों में विभाजित किया जाता है और प्रत्येक विभाग का स्वतंत्र प्रबंधक होता है । जीवनोपयोगी सभी चीजें खरीदी जा सकें इस प्रकार का व्यापक प्रबंध इन भांडागारों में रहता है । इसी कारण इन भांडागारों को विश्व-प्रदाता (Universal Provider) कहते हैं । दैनिक ग्राहकों के लिये ये भांडागार एक बड़े आकर्षण के साधन होते हैं; क्योंकि उनकी प्रतिष्ठा को संभालनेवाली सारी सुविधाएँ यहाँ पर मौजूद रहती हैं । बिभ्रांति-गृह, उपहार-गृह, टेलीफोन, लेखन-प्रबंध, पत्र-पेटी (Post Box) आदि सारी सुविधाएँ ग्राहकों को मुफ्त प्रदान की जाती हैं । इतना ही नहीं, बल्कि ग्राहकों की वस्तुएँ उनके घर बहुत ही कम व्यय में पहुँचा दी जाती

हैं। विशाल प्रमाण में विज्ञापन द्वारा ग्राहकों को भांडागार की ओर आकृष्ट किया जाता है और टेलीफोन द्वारा आदेश भी स्वीकार किये जाते हैं।

उपर्युक्त योग्य तथा अत्यंत उपयुक्त सेवाओं के कारण ये भांडागार अमेरिका जैसे धन-सम्पन्न राष्ट्रों में बहुत ही लोकप्रिय हो गये हैं। भारत में इनकी संख्या नहीं के समान ही है। बम्बई का 'व्हाईट हॉल' मद्रास का 'मिलीटरी डिपार्टमेंटल स्टोअर' विशेष उल्लेखनीय हैं।

इन भांडागारों का सर्व प्रथम लाभ यह है कि ग्राहक एक ही स्थान पर जीवन की सभी चीजें खरीद सकता है। कई दुकानों की धूल छाननेकी नौबत से वह बच जाता है। आराम की सुविधाएँ ग्राहकों को खूब संतोष देती हैं जिस से विक्रय-कला का अंतिम उद्देश्य—ग्राहकों का संतोष—संभव होता है। भांडागार के किसी एक विभाग में जाने पर सहज ही दूसरे विभाग की वस्तुओं की ओर ग्राहकों की निगाह जाती है। इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से अन्य विभागों का विज्ञापन संभव होता रहता है।

उपर्युक्त सेवा के बावजूद भी बहुविभागी भांडागारों का प्रचार जितने प्रमाण में होना चाहिये, नहीं हो सका। उनकी प्रगति न होने के निम्न-लिखित कारण हैं :

१. बहु-विभागी भांडागार शहर के किसी केन्द्रीभूत स्थान में बसा हुआ होता है, अतः भिन्न-भिन्न विभागों के सभी ग्राहकों का सतत सम्पर्क असंभव हो जाता है।

२. भांडागार का प्रति-कर्मचारी विक्रय बहुत कम रहता है जिससे विक्रय-व्यय बढ़ जाता है। भांडागार के विभाग की योग्यता उसी विभाग की वस्तुओं का व्यापार करनेवाली अन्य स्वतंत्र विक्रय-शाला की तुलना में काफी कम होती है।

३. भांडागार के कर्मचारी केवल वैतनिक होने के कारण विक्रय-वृद्धि में उन्हें उतनी दिलचस्पी नहीं होती जितनी अल्प-शो विक्रेता को हुआ करती है।

४. इन भांडागारों का प्रबंधन और विज्ञापन व्यय इतना अधिक होता है कि उसकी वसूली मूल्य-वृद्धि के सिवा संभव नहीं होती और परिणामतः उपभोक्ताओं को आर्थिक हानि उठानी पड़ती है।

५. प्रेष्यादेश व्यापारियों ने वस्तुएँ ग्राहकों के घर पहुँचाने की जो सुविधाएँ प्रदान करना प्रारंभ किया, उससे स्पर्धा करना बहु-विभागी भांडागारों को संभव नहीं हुआ।

६. बहु-विभागी भाड़ागार आरंभ में बहुत बड़े प्रमाण में वस्तुओं का क्रय करते थे जिससे कम दाम में उन्हें वस्तुएँ प्राप्त होती थीं। किन्तु श्रृंखला विक्रय-शालाओं का भी व्यापक विक्रय होने लगा और वे भी बड़े प्रमाण में वस्तुएँ खरीदने लगीं। परिणामतः इन दोनों के क्रय-मूल्य में कोई अंतर नहीं रहा। बहु-विभागी भाड़ागारों को अधिक स्कंध रखना ज़रूरी होता है जिस से मूल्य उच्चावचन का भय सदा बना रहता है (यद्यपि इस स्फीतिकारी समय में इस प्रकार का स्कंध रखना लाभप्रद सिद्ध हुआ है!)।

३. श्रृंखला विक्रय-शाला (Chain Shops)

श्रृंखला पद्धति वह पद्धति है जिसमें भिन्न-भिन्न विक्रय-शालाएँ एक ही प्रबंधक के देखरेख में रहती हैं और जिनमें समान वस्तुओं का विक्रय होता है। हरेक विक्रय-शाला के गेजमर्ग के कार्य में अन्तर रह सकता है। जब किसी एक विक्रय-शाला का व्यापार काफी बढ़ता है और उसके पश्चात् उसी विक्रय-शाला का अधिक विस्तार लाभकारी नहीं रहता तब भिन्न-भिन्न विभागों में शाखाएँ खोली जाती हैं। इस का मतलब यह नहीं कि इस प्रकार की विक्रय-शालाएँ केवल अल्पशो-विक्रेता द्वारा खोली जाती हैं, अन्यो द्वारा नहीं। अल्पशो व्यापार को अपने अधीन कर उपभोक्ताओं से सीधे सम्पर्क पाने के लिये, मध्यजनों द्वारा निगल जाने वाला लाभ अपने पास भी रखने के लिये और अपनी वस्तुओं का विक्रय बढ़ाने के लिये उत्पादक भी अपनी श्रृंखला विक्रय-शाला खोलता है। सतत और बड़े प्रमाण में जिन वस्तुओं का अभियाचन रहता है उन वस्तुओं की श्रृंखला विक्रय-शालाएँ खोलना उत्पादक के लिये अधिक लाभप्रद होगा। इस प्रकार खोली गई शाखाएँ ग्राहकों के बीच उत्पादक की ख्याति बढ़ाती हैं। यह प्रणाली उन्हीं वस्तुओं के लिये प्रयुक्त हो सकती है जहाँ थोड़े लाभ के आधारपर अधिक विक्रय राशि बढ़ाई जा सकती है। जिन वस्तुओं का समावेश 'जीवनोपयोगी आवश्यकताओं' (Necessaries for Life) में किया जाता है, उन वस्तुओं के लिये यह प्रणाली अधिक उपयुक्त सिद्ध हो सकती है।

इन विक्रय-शालाओं को स्वतंत्र एकल व्यापारी और बहुविभागी भाड़ागार इन दोनों के साथ प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है। बहुविभागी भाड़ागार और श्रृंखला विक्रय-शालाओं के उद्देश्य भिन्न होते हैं। बहुविभागी भाड़ागार चारों ओर से अपने पास आने के लिये ग्राहकों को आकृष्ट करते हैं, इस के ठीक विपरीत श्रृंखला विक्रय-शालाएँ अपनी शाखाओंद्वारा ग्राहकों के पास पहुँचकर उन की सेवा

करना चाहती हैं। दूसरा भेद यह है कि शृंखला विक्रय-शालाएँ कुछ चुनी हुई वस्तुओं का ही व्यापार करती हैं और बहुविभागी भांडागार के समान जीवन की सभी चीजें एक ही स्थान में प्रदान करने का दावा नहीं करती।

व्यापक शाखा-प्रणाली के कारण शृंखला विक्रय-शालाओं का क्रय भी बहुत बड़े प्रमाण में होता है जिससे उन्हें उत्पादक या बहुशो-विक्रेता दर संबंधी या अन्य प्रकार की विस्तृत सुविधाएँ प्रदान करते हैं। इन सुविधाओं के कारण और विशाल विक्रय-राशि के कारण ये विक्रय-शालाएँ अपना वस्तु-मूल्य काफी कम रख सकती हैं। जनता के निकट सम्पर्क के कारण ग्राहकों की माँग, रुचि, भूषाचार आदि संबंधी पूरी जानकारी वे आसानी से हासिल कर सकती हैं। उन का कार्य काफी सरल होता है। केन्द्रीय कार्यालय सभी विक्रय-शालाओं के लिये मूल्य, विपणन प्रणाली, विज्ञापन, लेखाकर्म, पत्र-व्यवहार, प्रबंधन और विक्रय-शाला रचना आदि संबंधी समान नीति निर्धारित करता है। सभी विक्रय-शालाओं का बाह्य और भीतरी दृश्य समान रखने की यथासंभव कोशिश की जाती है ताकि एक स्थान पर विक्रय-शाला देखने पर दूसरे स्थान की विक्रय-शाला देखते ही पूर्व विक्रय-शाला का स्मरण हो। शाखा प्रबंधकों को केवल विक्रय-मूल्य बतलाया जाता है और वस्तुओं का मूल मूल्य वह नहीं जानता। आवश्यक प्रमाण में उसे वस्तुएँ भेजी जाती हैं और हर रोज़ विक्रय द्वारा प्राप्त राशि अधि-कोष में जाकर उसे जमा करानी पड़ती है। इन शाखा-प्रबंधकों को कार्य के प्रति स्फूर्तिमान् रखने के लिये उन के बीच प्रतियोगिता की भावना जाग्रत की जाती है।

इस प्रणाली का सबसे बड़ा दोष यह है कि प्रबंधक केवल केन्द्रीय कार्यों के आदेशों को कार्यान्वित करनेवाला यंत्र का एक पुर्जा बन जाता है। ग्राहक की योग्यता को या समय को देखकर नीति-परिवर्तन का अधिकार इन शाखा-प्रबंधकों को नहीं रहने के कारण हर वक्त केन्द्रीय कार्यालय से इजाजत लेनी पड़ती है, जिस से विपणन-प्रवाह में बाधा आती है। परिणामतः कई बार वस्तुओं का मृत-स्कंध बन जाता है।

शृंखला विक्रय-शाला पद्धति के समान ही व्यापार करने वाली 'बहुविक्रय शाला' पद्धति (Multiple Shop System) है। व्यवसाय नीति की दृष्टि से इन दोनों में विशेष अन्तर नहीं है। कई लेखकों ने तो इन दोनों को एक ही माना है, फिर भी उनमें जो सूक्ष्म भेद है उसे सुझाया नहीं जा सकता। सभी शृंखला विक्रय-शालाओं की वस्तुएँ निश्चित रूप से समान ही रहती हैं,

इसके विपरीत बहुविक्रय-शालाओं की भिन्न-भिन्न शाखाओं की वस्तुओं में कभी-कभी थोड़ा-बहुत अंतर रह सकता है। सभी शृंखला विक्रय शालाएँ एक ही आकार की, एक प्रकार का दृश्य दर्शानेवाली और वातायन-प्रणाली को अपनाये रखने की कोशिश करती हैं, उतने प्रमाण में उस दिशा में बहुविक्रय-शालाएँ प्रयत्न नहीं करती।

४. प्रेषादेश व्यापार (Mail Order Business)

स्वतंत्र विक्रय-शालाएँ न रखकर केवल प्रेषादेश द्वारा (Mail order) किये जानेवाले विक्रय को प्रेषादेश व्यापार कहते हैं। कभी-कभी विक्रय-शालाएँ भी अपना एक स्वतंत्र प्रेषादेश व्यापार-विभाग खोल देती हैं। ग्राहकों के साथ सीधा सम्पर्क प्रस्थापित करने का उत्पादकों एवं बहुशो-विक्रेताओं का यह प्रयत्न है।

इस व्यापार में अपनी वस्तुओं का व्यापक एवं गहन विज्ञापन किया जाता है। साथ ही संभाव्य ग्राहकों के पास परिपत्र, सूची-पुस्तिका, समाचार पत्रिकाएँ और अन्य छपी हुई सामग्री भेजकर वस्तुओं की उपयोगिता और गुणों का उन पर प्रभाव डाला जाता है। स्थानीय विक्रेताओं, सरकारी मार्गदर्शिकाओं (Government Directories), जॉब-पत्रों या अन्य मार्गों द्वारा संभाव्य ग्राहकों की सूची तैयार की जाती है और उन्हें तथा पुराने ग्राहकों को प्रतिवर्ष प्रेषालय द्वारा विज्ञापन-सामग्री भेजकर उनसे सतत सम्पर्क रखा जाता है। प्रतिवर्ष क्रय करने वाले ग्राहकों की एक स्वीकृत सूची (Approved List) बना ली जाती है और उन्हें अग्नि-सुरक्षित (Fire Proof) आलमारियों में रखा जाता है। यह सूची इस व्यापार की अत्यंत महत्वपूर्ण वस्तु है। ग्राहकों के परिवर्तित पते और मृत-ग्राहकों की जानकारी हर वर्ष शत कर उस प्रकार का परिवर्तन कर दिया जाता है जिससे अनावश्यक पत्र-व्यवहार बच जाय। विज्ञापनों के अन्त में ऐसी पर्णिकाएँ (Coupons) जोड़ी जाती हैं जिन्हें बगैर टिकट लगाये भेजा जा सकता है। इन पर्णिकाओं पर ग्राहक अपने आदेश लिख भेजते हैं। सभी मार्गों द्वारा प्राप्त आदेशों को प्रेष द्वारा या रेस्वे पार्सल से भेज कर कार्यान्वित किया जाता है। उपभोग्य वस्तुओं (Consumers Goods) के बारे में यह प्रणाली तो सफल सिद्ध हुई ही है, पर साथ ही बड़े-बड़े यंत्रों के उत्पादक और बहुशो-विक्रेता भी इन दिनों इस प्रणाली का उपयोग कर प्रवासी-विक्रेताओं पर किये जानेवाले व्यय को बचाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

इस व्यापार में विक्रेता का सम्पर्क और मानवी स्पर्श का अभाव ज़रूर है, पर ऐसे अनेक ग्राहक होते हैं जो प्रत्यक्ष विक्रेताओं से, विक्रय-शालाओं में जाकर,

बात करने में समय बर्बाद नहीं करना चाहते। उन्हें लगता है कि फुर्सत के समय पर (प्रेष द्वारा प्रेषित) समाचार पढ़कर वस्तुओं की जानकारी हासिल की जा सकती है और प्रेष द्वारा आदेश भेजकर प्रेपालय द्वारा ही वस्तुएँ प्राप्त की जा सकती हैं। इन ग्राहकों के लिए यह प्रणाली सर्वोत्तम सिद्ध हुई है। यह प्रणाली उन देशों में, जहाँ कम विक्रय-शालाएँ होती हैं, अधिक उपयुक्त सिद्ध हुई है। छोटी-छोटी वस्तुएँ खरीदने के लिए बार-बार शहरों में जाने की अपेक्षा प्रेपालय द्वारा क्रय करना ही सुविधाजनक होता है।

ग्राहकों को लगातार विक्रय-साहित्य भेजकर बहुत व्यापक प्रमाण में विक्रय किया जाता है जिससे बढ़ती हुई विक्रय-राशि प्रति वस्तु विक्रय व्यय घटाने में सहायक होती है। विक्रय-शाला-व्यय और प्रदर्शन-व्यय भी इस पद्धति के लिये आवश्यक नहीं होता।

चूँकि ग्राहक विक्रय के पूर्व वस्तुओं को देख नहीं सकता, कई बार असंतोष-जनक वस्तुएँ ग्राहक के हाथ में आती हैं। भारत के प्रेषादेश व्यापार में यह दोष काफी बड़े प्रमाण में इन दिनों (स्फीति काल में) आ गया है। कई बार न्यादर्श वस्तुएँ मँगाकर यह दोष हटाने की चेष्टा की जाती है, किन्तु वह पूर्णतया सफल नहीं हो पायी है। अतः इस व्यापार में व्यापारी की ईमानदारी पर ही पूर्णतया निर्भर रहना पड़ता है। उसी प्रकार मार्ग में वस्तुओं की होने वाली टूट-फूट और कान्तिहीनता की जिम्मेवारी को कौन सहन करे, यह तय करना बड़ा कठिन होता है। अतः जबतक वस्तुएँ असंतोषजनक या अयोग्य स्थिति में प्राप्त होने पर लौटाई जाने की सुविधा प्रदान नहीं की जाती तबतक इस व्यापार का अवलंब लेना एक प्रकार से धोखा ही है।

मूल्यवान और छोटी वस्तुओं के लिये यह व्यापार-पद्धति बहुत ही उपयुक्त सिद्ध हुई है। जड़-जवाहर, इत्र, घड़ियाँ, फाउण्टेन-पेन, दवाइयों, बीज आदि वस्तुएँ आज भी बहुत बड़ी तादाद में इस पद्धति द्वारा बेची जाती हैं। अमेरिका में इस प्रणाली का प्रचार बहुत ही विशाल प्रमाण में पाया जाता है। किन्तु बड़ी, भारी, शीघ्र-नाशवान वस्तुओं के लिए यह पद्धति अनुपयुक्त है। मोटरों, सभ्जियों का व्यापार प्रेषादेश द्वारा असंभव है।

प्रेषादेश वस्तुएँ 'प्राप्त होने पर शोधन' (Cash on delivery) और प्रेषद्वारा मूल्यदेय (V. P. P.) इन दो प्रणालियों से बेची जाती हैं। कुछ विश्वसनीय और प्रतिष्ठित ग्राहकों को प्रत्यय भी प्रदान किया जाता है।

५. द्वार-द्वार विक्रय (House to House Selling)

द्वार-द्वार पर जाकर विक्रय करने वालों का बहुत बड़ा समुदाय हर देश में और विशेषतः भारत में कार्य करता है। जीवनोपयोगी तथा नित्योपयोगी वस्तुएँ छोटी सन्दूक में रखकर, गट्टों में बाँध कर या हाथगाड़ी में रखकर विक्रय किया जाता है। ये वस्तुएँ प्रायः कम मूल्य की और छोटी होती हैं। इस प्रणाली द्वारा बेची जाने वाली वस्तुएँ सामान्यतः तीन विभागों में विभाजित की जा सकती हैं :

१. सस्ती उपभोग्य वस्तुएँ—तैयार कपड़े, स्टेशनरी सामान, हथ, चूड़ियाँ सज्जी, मसाले, फल, ब्रश, आईने, तेल आदि।

२. गृह-सुगार वस्तुएँ—रंग, वारनिश, झाड़ू, पर्दे आदि

३. सेवार्थ—आगोप, मनोरंजन दृश्य, खेल आदि।

कुछ ऐसी चीजें होती हैं जिनका बहुतांश केवल द्वार-द्वार विक्रय-प्रणाली से ही वितरित किया जा सकता है जैसे समाचार-पत्र, दूध-मखन, खिलौने, बेकरी की वस्तुएँ आदि। जिन वस्तुओं की पाख गृहिणियाँ ही उत्तम प्रकार से कर सकती हैं, उन सब वस्तुओं का समावेश अधिकतर इस प्रणाली में होता है, क्योंकि गृहिणियाँ विक्रय-शाला में जा कर अपना समय नहीं दे सकती और भारतीय महिलाएँ उसे पसंद भी नहीं करती। इस प्रकार बेची जाने वाली वस्तुओं में वैयक्तिक प्रभाव (Personal Influence) बहुत अधिक कार्य करता है और विक्रय-सफलता विक्रेता के व्यक्तित्व पर निर्भर रहती है। विक्रय-शालाओं में जिन वस्तुओं का विक्रय संभव नहीं होता वे वस्तुएँ भी इस प्रणाली द्वारा आसानी से बेची जा सकती हैं। यदि द्वार-द्वार विक्रय किसी विक्रय-शाला का एक हिस्सा ही हो तो उसके द्वारा विक्रय-शाला का उत्तम प्रकार से विज्ञापन किया जा सकता है।

द्वार-द्वार पर विक्रय की जाने वाली वस्तुओं और उनके व्यापारियों की संख्या बहुत ही सीमित होती है। वस्तुएँ बरतक पहुँचा देने के कारण उनका प्रतिवस्तु मूल्य भी कुछ बढ़ जाता है। इस प्रणाली में काफी शरीर-परिश्रम आवश्यक होता है। कमजोर स्वास्थ्य के लोग इस व्यवसाय को स्वीकार नहीं कर सकते। इसके अलावा इस प्रकार द्वार-द्वार भटक कर विक्रय करना प्रतिष्ठा के प्रतिकूल समझा जाता है। यह विक्रय प्रायः लोक-व्यवहार द्वारा ही

किया जाता है और ग्राहकों को प्रत्यय-सुविधाएँ प्राप्त नहीं होतीं। यह बड़ी खर्चीली प्रणाली है और बहुत ही कम प्रमाण में इसके जरिये वितरण हो सकता है, अतः उत्पादक इस का उपयोग करना पसंद नहीं करते।

इस पद्धति से बेची जाने वाली वस्तुओं का धूप, सर्दी, धूलि आदि के कारण खराब होने का काफी डर रहता है। कई बार ये विक्रेता ग्राहकों को नकली वस्तुएँ बेचते हैं और अधिक दाम वसूल करते हैं। इस प्रकार दिया गया धोखा मालूम होने पर भी उन विक्रेताओं को ढूँढ निकालना प्रायः संभव नहीं होता। अतः अविश्वसनीय वस्तुओं का कय इन विक्रेताओं के पास कोई भी नहीं करना चाहता। इनमें से कुछ विक्रेता बड़े धूर्त और धोखा देने वाले होते हैं।

द्वार-द्वार विक्रय करने वाले कुछ विक्रेता अपना नियमित क्रय करते हैं। किसी भी मोहल्ले के लिये सप्ताह का एक दिन और समय भी निश्चित कर देते हैं। ये विक्रेता प्रायः ईमानदार होते हैं। यात्रायें, प्रदर्शनी और विशेष उत्सव में घूमकर विक्रय करने वाले विक्रेताओं का भी इसी प्रणाली में समावेश किया जाता है। इस प्रणाली में साइकिल, मोटर, संयान भाडवाहन (Station Vago.) हाथ-गाड़ी आदि साधनों का बहुत बड़ा उपयोग होता है।

६. क्रयावक्रय पद्धति द्वारा विक्रय

(Sales through Hire-Purchase System)

क्रयावक्रय पद्धति विक्रय की वह पद्धति है जिसमें वस्तुएँ ग्राहक को इस शर्त पर बेची जाती हैं कि वह वस्तु का प्रदान (Delivery) लेते समय प्रथम और उस के पश्चात् निश्चित अवधि के बाद निश्चित राशि विक्रेता को देने का वादा करता है। वस्तु का स्वामित्व ग्राहक को सारे प्रभाग (Installments) देने के पश्चात् ही प्राप्त होता है। तब तक वस्तु केवल भाटक पर ली गई है, ऐसा माना जाता है। उस वस्तुको बेचने का ग्राहक को अधिकार नहीं होता है, जब तक कि पूरे प्रभाग वह न दे दे और यदि वह बेच दे तो खरीदार से वस्तु विक्रेता वापिस ले सकता है। यदि ग्राहक बीच ही में प्रभाग-शोधन बंद कर दे तो उसे वस्तु लौटा देनी पड़ती है और तब तक दिये गये प्रभाग 'भाटक' (Rent) ही माने जाते हैं। प्रभाग क्रय (Installment Purchase) प्रणाली भी इसी प्रकार की है। अंतुर इतना ही है कि प्रभाग-क्रय पद्धति में वस्तु प्रदान करते ही ग्राहक को स्वामित्व प्राप्त हो जाता है और उसके पश्चात् तुरन्त ही वह, यदि चाहे, तो वस्तु अन्य किसी को बेच सकता है। विक्रेता को यदि पूरे प्रभाग प्राप्त न हुए तो वह अपनी राशि के लिये ग्राहक पर नालिश कर सकता है।

क्रयवक्रय व्यापार-पद्धति अवसाद-काल में ढूँढ निकाली गई। उस समय ग्राहकों की क्रय-शक्ति कम हो जाने के कारण वे वस्तुएँ खरीदने में असमर्थ थे। अतः उनसे प्रभागों द्वारा राशि वसूल कर उन्हें प्रत्यय प्रदान करने की यह प्रणाली व्यापारियों की आपसी प्रतियोगिता में से निकल पड़ी। इस सुविधा के प्रलोभन में आकर उपभोक्ताओं ने अपनी क्रय-शक्ति का खयाल न कर अनावश्यक क्रय कर डाला।

अमेरिका और पश्चिमी राष्ट्रों में इस प्रणाली का प्रचार बहुत ही अधिक प्रमाण में हुआ। उत्पादकों को प्रभाग वसूली की जिम्मेवारी से भी मुक्ति देने वाली संस्थाएँ प्रस्थापित हुईं जो कुछ वर्तन पाकर प्रभाग वसूल करने लगीं। भारत में सीने के यंत्र, रेडियो, मोटर और अन्य यंत्रों के समान मँहगी और स्थास्तु (Durable) वस्तुओं के विक्रय में यह प्रणाली शुरू हुई है, यद्यपि उसका प्रचार अब भी सीमित है।

इस प्रणाली का लाभ यह है कि सामान्य और मध्यम-वर्गीय लोगों के लिये भी आरामदायिनी मँहगी वस्तुएँ खरीदना संभव हो सका। इससे ग्राहकों तथा उत्पादकों दोनों को लाभ हुआ। इस प्रणाली के अभाव में मँहगी वस्तुएँ बेचना उत्पादकों के लिये असंभव होता। इसका दूसरा पक्ष यह है कि इस प्रणाली द्वारा क्रय करनेवाले ग्राहक अपनी आर्थिक स्थिति का ध्यान नहीं रखते। वेसे ही क्रयवक्रय पद्धति में खरीदी गई वस्तुएँ नष्टनिधित्व समय पर नष्टनिधि की मानी जाती हैं और परिणामतः विक्रेता को हानि हो सकती है।

सीधे ग्राहकों को विक्रय

उपभोक्ताओं को सीधे विक्रय करने में सबसे बड़ा लाभ यह है कि उपभोक्ताओं के साथ उत्पादक नजदीक का वैयक्तिक सम्पर्क प्रस्थापित कर सकता है, जिस से किसी भी प्रकार की गलतफहमी की गुंजाइश नहीं रहती। मध्यजनों पर किया जानेवाला व्यय बच जाने से प्रतिवस्तु मूल्य कम रखा जा सकता है। ग्राहकों की माँग का तात्पर्य वह आसानी से समझ सकता है। परंतु इस प्रणाली को सफ़लतापूर्वक कार्यान्वित करने के लिये प्रारंभ से ही उचित योजना बनानी ज़रूरी है। साथ ही इस प्रणाली में उत्पादक को विज्ञापन पर काफी व्यय करना पड़ता है। उत्पादन, विज्ञापन, वितरण आदि सब कार्यों का केन्द्रीकरण हो जाने से कार्य शीघ्रता से हो नहीं सकता।

ग्राहकों को सधे विक्रय करने की तीन प्रणालियाँ हैं :

१. प्रेषादेश व्यापार,
२. द्वार-द्वार विक्रय,
३. स्ट्रॉलला विक्रय-शालाएँ,

४. उत्पादकों के प्रदर्शन-गृह (Show Rooms) और अल्प-शो विक्रय-गृह (Retails out lets) ।

उपर्युक्त चार में से तीन प्रकारों का विवेचन अल्प-शो विक्रय-प्रणाली में किया जा चुका है । उत्पादकों के प्रदर्शन-गृहों (Show Rooms) और अल्प-शो विक्रय-गृहों का वर्णन यहाँ पर संक्षेप में दिया जाता है ।

उत्पादकों के मन में जब अल्प-शो विक्रेताओं का भी उच्चाटन करने की भावना जागृत हुई तब भिन्न-भिन्न विभागों में अपनी विक्रय शालाएँ प्रस्थापित करना लाजमी हुआ । वस्त्र, काँच के बर्तन आदि वस्तुओं के उत्पादक प्रत्येक विभाग में अपने प्रदर्शन-गृह खोलकर उनके द्वारा छोटे प्रमाण में उन्हीं विक्रय-शालाओं में और व्यापक प्रमाण में केन्द्रीय सार्व-कार्यालय में ग्राहकों के आदेश आकृष्ट करने लगे । कई बार यह अनुभव किया गया कि अपनी अकेली वस्तुओं का विक्रय करना संभव नहीं था; ऐसे समय पर उत्पादक को अपनी वस्तुओं के साथ-साथ अन्य उत्पादक की वस्तुएँ भी इन प्रदर्शन-गृहों में सजाकर बेचनी पड़ती हैं ताकि पर्याप्त विक्रय द्वारा योग्य लाभ प्राप्त हो सके और अन्य वस्तुओं के आकर्षण द्वारा अपनी निर्मित वस्तुओं का अधिक विक्रय किया जा सके । उदाहरण के लिये रबर के खिलौने ले सकते हैं जिनके साथ अन्य खिलौने भी रखना ज़रूरी हो जाता है ।

छोटे उत्पादकों के लिये यह प्रणाली लाभकारी सिद्ध नहीं हो सकती; किंतु अनेक प्रकार की वस्तुओं का, या एक ही प्रकार की वस्तुओं का व्यापक प्रमाण में, उत्पादन करने वाली और वितरण के लिये पर्याप्त पूंजी रखने वाले उत्पादकों के लिये यह प्रणाली लाभकारी सिद्ध हुई है । उत्पादकों को प्रमुख स्थानों में प्रदर्शन-गृह खोलने पड़ते हैं जिनका कार्पी भाटक देना पड़ता है । उसी प्रकार प्रबंधकों, बातायनों, विज्ञापनों आदि पर उसे कार्पी व्यय करना पड़ता है । अतः बहुत बड़े परिमाण में विक्रय किये बिना यह प्रणाली लाभकारी नहीं हो सकती ।

इन विक्रय-शालाओं का उपयोग उत्पादक विभागीय संग्रह-भांडागारों (Depots) के समान भी कर सकते हैं और उन स्थानों से अन्य अल्पशो-विक्रेताओं को वस्तुएँ वितरित की जाती हैं। इन प्रदर्शन गृहों और विक्रय-शालाओं को प्रायः अपनी उत्पादन वस्तुओं तक ही सीमित रहना पड़ता है, अतः अन्य विक्रय-शालाओं को जो अनेक (Varied) उत्पादकों से प्रतियोगिता दर में वस्तुएँ खरीदने की सहूलियत प्राप्त हो सकती है, वह इन्हें नहीं हो सकती।

दूर भाष द्वारा विक्रय (Selling by Telephone)

यह प्रणाली पश्चिमी राष्ट्रों में ही कुछ अंश तक सफल हुई है। स्थानीय ग्राहक अल्पशो-विक्रेता से दूर-भाष द्वारा सम्पर्क प्रस्थापित कर आदेश भेजते हैं और विक्रय-शालाएँ संयान-वाहन (Station Vagon) द्वारा वस्तुएँ भेज कर आदेशों को कार्यान्वित करती हैं। इस प्रणाली से ग्राहकों का समय और वाहन-व्यय बचता है। वस्तुएँ घर पहुँचाने के लिए मामूली शुल्क बिना जाता है। दूसरे शहरों से भी दूर-भाष द्वारा आदेश प्राप्त किये जाते हैं। इंग्लैंड में ऐसे आदेशों के दूर-भाष का कुछ कम दर लगाया जाता है।

स्कंध-विनिमय (Stock Exchange) और परिकल्पना (Speculation) व्यापार करने वाले व्यापारियों का क्रय-विक्रय तो रात-दिन दूर-भाष से ही चलता है। भारत में भी स्कंध-विनिमयों और परिकल्पनाओं का व्यापार इसी प्रणाली द्वारा चलता है, पर विक्रय-शालाओं द्वारा दूर-भाष की सहायता से आदेश स्वीकार किये जाने की प्रणाली भारत में अधिक प्रचलित नहीं है।

ग्राहक अपने पास मूल्य-सूची रखते हैं और उसके आधार पर आदेश भेजते हैं। अतः परिवर्तित सूची पत्रिकाएँ बार-बार ग्राहकों को भेजते रहना पड़ता है। प्रति-दिन या प्रति-सप्ताह मूल्य परिवर्तन होनेवाली चीजों के लिये मूल्य सूची रखना संभव नहीं होता। दूर-भाष द्वारा कभी-कभी अस्पष्ट सुनाई देता है जिस से आदेश समझने में गलतफहमी हो सकती है। इस प्रणाली में वस्तु-क्रय पूर्व समय में वस्तु का निरीक्षण असंभव होता है, अतः केवल वर्णन द्वारा खरीदी जानेवाली वस्तुओं के लिए ही यह प्रणाली उपयुक्त हो सकती है। दूर-भाष-यंत्र के पास लगातार किसी-न-किसी को बैठे रहना पड़ता है। इस यांत्रिकता के कारण उकताकर वहाँ बैठनेवाला व्यक्ति असह्य भाषा का प्रयोग कर सकता है। भाष्य में इस प्रणाली का विकास संभव है।

प्रश्न

१. बहुशो-विक्रेता किसे कहते हैं ? वह उत्पादक और अल्पशो-विक्रेता को किस प्रकार सहायता करता है ?

२. क्या बहुशो-विक्रेता को हटाया जा सकता है ? क्या उसे हटाना उचित है ?

३. 'कंठच्छेदी प्रतिस्पर्धा के बावजूद भी 'एकल व्यापारी' भारत में अब भी प्रमुख विक्रय प्रणाली है' सकारण चर्चा कीजिए ।

४. 'बहु विभागी भांडार भारत में लोक-प्रिय नहीं हो सके'—साधार चर्चा कीजिए और बहुविभागी भांडार की जानकारी दीजिए ।

५. 'बहु विक्रय-शाला और शृंखला विक्रय-शालाओं का उद्देश्य ग्राहकों के करीब पहुँचने का है' इस कथन का समर्थन कीजिए ।

६. प्रेषादेश व्यापार कहाँ और कब योग्य समझा जाता है ?

७. टिप्पणियाँ लिखिए :—

(अ) पथ विक्रेता (Street seller) (आ) दूर-भाष द्वारा विक्रय

(इ) न्यादर्श और वर्णन द्वारा विक्रय (ई) कयावकय पद्धति

(Hire Purchase System)

: ३ :

विक्रय प्रवर्तन

(Sales Promotion)

प्रथम महायुद्ध के बाद हर एक सार्व्य किसी न किसी रूप में विक्रय प्रवर्तन का कार्य अधिक सकर्कता से करने लगी । कई मद्रस्व पूर्ण विक्रय-शालाओं ने इस कार्य को संगठित और सुचारु रूप से चलाने के लिए एक स्वतंत्र विभाग खोला, किन्तु कई बिना स्वतंत्र विभाग के भी प्रवर्तन-कार्य में संलग्न रहीं ।

संसार के व्यापार, उद्योग एवं वाणिज्य में उच्चवचनों (Fluctuations) एवं व्यापार-चक्रों (Trade Cycles) का होना पूँजीवादी आर्थिक-व्यवस्था की कट्टर देन है । व्यापार-चक्र के कारण विश्व-विपणि में व्यापार-अवसाद (Trade Depression) होते रहते हैं । ऐसे समय विपणि में प्रति स्पर्धा बढ़ती है । किसी भी व्यापार में योग्य प्रति-स्पर्धा का बढ़ना व्यापार-प्रगति की दृष्टि से उचित ही होगा; किन्तु व्यापार-अवसाद के समय वह योग्य प्रति-स्पर्धा कंठच्छेदी प्रति-स्पर्धा में परिणत होती है । हर प्रबंधक अपनी वस्तुओं का मूल्य घटाकर ग्राहकों को अपनी ओर खींचने का प्रयत्न करता है । इस नीति के कारण कोई भी सार्व्य स्थायी ग्राहक नहीं बना सकती । इस तथ्य को जान कर मूल्य घटाने की नीति विदेशी सार्व्यों ने प्रथम महायुद्ध के बाद त्याग दी । और सार्व्य के ग्राहकों को स्थायी बनाने तथा नये ग्राहकों को उसकी ओर आकृष्ट करने के लिये 'विज्ञापन विभाग' में अधिक दिलचस्पी ली जाने लगी । किन्तु यह महसूस होने लगा कि केवल विज्ञापन विभाग का उत्थान ही सार्व्य की समस्याओं का पर्याप्त हल नहीं है । अतः विक्रय-वृद्धि के लिये एक नये विभाग का आविष्कार किया गया । और यह विभाग 'विक्रय-प्रवर्तन विभाग' के नाम से विख्यात हुआ । सार्व्य के लिये नये-नये ग्राहक खोज निकालना और उन के तथा पूर्व ग्राहकों के मन में सार्व्य की ईमानदारी का सिक्का जमा देना-स्थायी ग्राहकों की संख्या बढ़ाना-ही विक्रय-प्रवर्तन विभाग का प्रमुख कार्य है । सार्व्य की वस्तुओं की जहाँ माँग हो, वहाँ स्थायी माँग प्रस्थापित करना और नयी माँग बढ़ाना तथा नयी विपणि की खोज द्वारा अपने उद्देश्यों की पूर्ति यह विभाग किया करता है ।

परिभाषा

विक्रय प्रवर्तन की परिभाषा के संबंध में विक्रय-विशारदों के भिन्न भिन्न मत हैं। इसका मतलब यह नहीं कि उन में मूलभूत सिद्धांतों के बारे में गलत-फहमी है। भिन्नता केवल दृष्टिकोण की है। इस विभाग की व्यापकता के साथ-साथ उसे परिभाषा में परिमित करने की समस्या भी जटिल होती गयी।

कई विद्वान 'वाणिज्य कृत विज्ञापन ही विक्रय-प्रवर्तन है,' ऐसा मानते हैं। किन्तु यह केवल संकुचित दृष्टिकोण है। अन्य कुछ विद्वान 'विक्रय-वृद्धि के हेतु समय-समय पर किये जाने वाले प्रयत्नों' को विक्रय-प्रवर्तन के नाम से संबोधित करते हैं। श्री. एडवर्ड ओण्ड हॉवर्ड के मतानुसार, 'वे सारे कार्य जिन की प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष या अन्य प्रकार की सहायता से लाभकारक विक्रय में वृद्धि होती है, विक्रय प्रवर्तन में सम्मिलित हैं।' सीधी और सरल भाषा में कहा जा सकता है कि किसी भी सार्थ द्वारा, उसे उपलब्ध सारी शक्तियों, गुणों, माध्यमों आदि का विक्रय-वृद्धि के लिये उपयोग किया जाना ही विक्रय प्रवर्तन-कार्य है। सार्थ के किसी भी विभाग का वह कार्य जो विक्रय बढ़ाने के हेतु किया जाता है, विक्रय-प्रवर्तन कार्य है। अतः स्वाभाविक रूप में क्षेत्र-विस्तार के कारण विक्रय-प्रवर्तन विभाग की परिभाषा जटिल बनती गयी। इस विभाग का संबंध सभी विभागों से आता है।

स्वतंत्र विभाग ही क्यों ?

अब सवाल यह है कि क्या 'विक्रय-प्रवर्तन विभाग स्वतंत्र हो ? किसी भी सार्थ या विक्रय-शाला का अंतिम उद्देश्य है कि ग्राहकों को परमोच्च संतोष प्रदान कर अधिक से-अधिक शुद्ध लाभ प्राप्त किया जाय। केवल विक्रय-राशि को बढ़ाने में किसी भी सार्थ की दिलचस्पी नहीं रह सकती। अतः विक्रय-राशि की वृद्धि के साथ-साथ शुद्ध-लाभ की वृद्धि भी परमावश्यक है। यदि वे सारे कार्य, जो विक्रय बढ़ाने के लिये किये जाते हैं, आपस में संबंधित और योजनाबद्ध न रहे तो संभव है व्यय अधिक बढ़ जाय व कार्य सुचारु रूप से न चल सके। परिणामतः शुद्ध लाभ, विक्रय बढ़ाने के बावजूद भी उतना ही रहे या उचित प्रमाण में न बढ़ सके। उक्त संभावना से बचने के लिये सीधा उपाय यह होगा कि विक्रय-वृद्धि के लिये किये गये कार्यों को योजना-बद्ध किया जाय और उसके लिये एक अलग विभाग प्रस्थापित किया जाय।

नगहर, १९४८ में भी. जोसेफ बी. शेफील्ड ने विक्रय-प्रवर्तन विभाग का महत्व व्यक्त किया। आपने उस विभाग की तुलना रंगमंच के दिग्दर्शक (Stage Manager) के साथ की है। अच्छे अभिनेता-अभिनेत्रियाँ, सुन्दर दृश्य और सुन्दर संभाषण होते हुये भी यदि उनका दिग्दर्शन ठीक न हो तो बड़ा खराब दृश्य प्रेक्षकों के सम्मुख प्रस्तुत होगा। ठीक इसके विपरीत यदि अभिनेता-अभिनेत्रियाँ सामान्य हों, दृश्य मामूली हो और भाषण-संभाषण में भी कोई मौलिकता न हो, फिर भी उनका दिग्दर्शन उत्तम हो, तो प्रेक्षकों की तालियाँ और प्रशंसा उन्हें प्राप्त होगी और समाचार-पत्र भी उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगेंगे। उसी प्रकार अच्छी वस्तुएँ, निपुण-विक्रेता और विशाल विज्ञापन आदि सुविधाएँ प्राप्त होने पर भी प्रवर्तन कला के अभाव से सार्थ का विक्रय कार्य असफल भी हो सकता है। ठीक इसके विपरीत उपर्युक्त प्रमाण में सारी सुविधाएँ प्राप्त न होते हुए भी कुशल प्रवर्तक अपनी सार्थ का विक्रय-कार्य सफल बना सकता है।

किसी भी निर्माणी, सार्थ या विक्रय-शाला के पिछले वर्षों के लेख-वृत्तों (Reports), लेखा-कर्म-पुस्तों (Account Books) एवं समंश (Statistics) के अध्ययन के पश्चात् गत वर्षों की व्यापार-उन्नति या अवनति का अध्ययन किया जा सकता है और निष्कर्षों के प्रकाश में नई विक्रय-नीति निर्धारित की जा सकती है। वस्तुओं के क्रय-विक्रय तथा भिन्न-भिन्न व्ययों के संबंध में योजनाएँ बनाई जा सकती हैं। परन्तु इस तरह की योजनाएँ बना लेना मात्र किसी भी विक्रय-शाला या सार्थ का ध्येय नहीं हो सकता। इन विक्रय-योजनाओं के अनुसार वर्ष-भर पूरे उत्साह के साथ कार्य कर विक्रय-राशि और शुद्ध-लाभ-राशि अधिक से अधिक बढ़ाना किसी भी विक्रय-शाला का प्रमुख ध्येय होगा। विज्ञापन-विभाग, ऋय-विभाग, विक्रय-विभाग, कार्यकर्ता-विभाग इत्यादि के कार्यों को संबंधित करना तथा उक्त विभागों के कार्य में शिथिलता न आने देना विक्रय-प्रवर्तन विभाग का सर्व प्रथम कार्य है। यह विभाग किसी अन्य विभाग की देखभाल में रहकर पूर्ण रूपेण संतोषजनक कार्य नहीं कर सकता। इसलिये इस विभाग का स्वतंत्र स्थान रखना ही अधिक उपयुक्त होगा। इसका मतलब यह कदापि नहीं हो सकता कि इस विभाग का अन्य विभागों पर अंकुश रहे। इस विभाग को केवल इतने अधिकार हों, कि यह अन्य विभाग से जानकारी और समंश प्राप्त कर सके, भिन्न विभागों के कर्मचारियों को आपसी कार्यों से परिचित

करा सके और उन भिन्न विभागों के कार्यों को शृंखला-बद्ध बना दे। यह विभाग अन्य विभागों को सलाह, मार्ग-दर्शन तथा जानकारी दे सकता है, आदेश नहीं। सार्थ या विक्रय-शाला की अर्थ-नीति, विक्रय-नीति एवं अन्य जानकारीयों से सार्थ के ग्राहकों को, जिनमें अल्प-शो-विक्रेता और बहुशो-विक्रेता भी सम्मिलित हैं, हमेशा परिचित कराते रहना और विक्रय व्यय की राशि आवश्यकता से अधिक न बढ़ने देकर उसे कम करने का प्रयत्न करना, विक्रय-प्रवर्तन विभाग के अन्य महत्वपूर्ण कार्य हैं। उक्त कार्यों को सफलतापूर्वक करने के लिये विज्ञान विभाग, कार्यकर्ताओं का शिक्षण-विभाग, तथा ग्राहकों के साथ संबंध इत्यादि बातों की ओर विशेष ध्यान दिया जायगा। इस विभाग का कार्यक्षेत्र विक्रय-शाला या सार्थ के क्षेत्र और महत्व के अनुसार घटाया-बढ़ाया जा सकता है।

विभाग (Departments)

विश्लेषणात्मक दृष्टि से विक्रय-प्रवर्तन कार्य के दो विभाग किये जा सकते हैं :

(१) अपनी विक्रय-शाला या सार्थ का विकास-कार्य।

(२) विक्रय-शाला के ग्राहकों से संबंधित कार्य।

सार्थ या विक्रय-शाला के कार्य क्षेत्र को ध्यान में रखते हुए विक्रय-शाला विकास कार्य को निम्न विभागों में विभाजित किया जा सकता है :

(अ) विज्ञापन विभाग,

(आ) सार्थ के विक्रेताओं से संबंधित कार्य,

(अि) विपणि-अन्वेषण कार्य (यदि वह स्वतंत्र विभाग न हो।)

(अ) विज्ञापन विभाग

यह विभाग साधारणतः एक स्वतंत्र प्रबंधक की देखरेख में कार्य करता है। फिर भी इस विभाग पर विक्रय प्रवर्तन विभाग की देखरेख रहती है। विज्ञापन विभाग द्वारा किसी भी वस्तु का विज्ञापन कर देने के पश्चात् प्रवर्तन-विभाग का यह कार्य है कि विज्ञापन द्वारा वस्तु और सार्थ के बारे में उत्पन्न की गयी लगन कायम रखी जाय और उसे वृद्धिगत करने की कोशिश की जाय। यह कार्य निम्न मागों द्वारा किया जा सकता है :

(१) संवेष्टन (Packages)

सार्थ और वस्तु का ग्राहकों के मन पर सर्व प्रथम उसके संवेष्टन-द्वारा प्रभाव पड़ता है। विज्ञापन में यदि संवेष्टन के प्रकार पर प्रकाश डाला गया हो तो

संवेष्टन ठीक उसी प्रकार का होना चाहिए। यदि विज्ञापन में संवेष्टन के संबंध में जिक्र न हो तो विक्रय-प्रवर्तन विभाग अपनी सुविधा के अनुसार संवेष्टन निश्चित कर सकता है। अन्य सार्य तथा अन्य वस्तुओं से अपनी सार्य व वस्तुओं को भिन्न दर्शाना संवेष्टन का प्रयमोद्देश्य है। 'ब्रुक बॉड' चाय का संवेष्टन देखते ही अधिक चर्चा न कर ग्राहक उसे स्वीकार कर लेता है। वह यह जानता है कि इस ढँग के संवेष्टन में सिवा ब्रुक बॉड के दूसरी कोई चाय होही नहीं सकती। उसी प्रकार टाटा ऑइल कम्पनी का नारियल का तेल उस की बोतल की आकृति देखकर ही खरीदा जाता है। संवेष्टन की सहायता से वस्तुओं को लाने-लेवाने में सुविधा होती है। टूटने फूटने की संभावना भी कम होती है। संवेष्टन में एक प्रकार की आकर्षण-शक्ति होती है। संवेष्टन के उद्बोधक चिह्न विज्ञापन-कार्य भी करते हैं। यदि संवेष्टन इस प्रकार का हो कि उसमें की वस्तु का उपयोग करने के पश्चात् उस संवेष्टन का उपयोग अन्य कार्य के लिये किया जा सके तो उसके संबंध में ग्राहकों को अधिक आकर्षण होता है। ग्लूकोज़ शर्कर के डिब्बे का उदाहरण इस संबंध में दिया जा सकता है। संवेष्टन वस्तुओं की नमी, धूल, धूप आदि से रक्षा करता है। विक्रय-प्रवर्तन विभाग का यह कार्य होता है कि वह संवेष्टन की महत्त्व पर विज्ञापन द्वारा पूर्ण प्रकाश डाले। निर्माणी के ग्राहक संवेष्टन की उपयोगिता से अपरिचित न रह्ये जायँ। यदि निर्माणी के ग्राहक संवेष्टन की योग्यता से अपरिचित रह्ये गये, तो प्रवर्तन-विभाग अपने ग्राहकों को वस्तुओं के संवेष्टन के बारे में जानकारी देने में असमर्थ रहेंगे और फल स्वरूप वस्तुओं के विक्रय पर बुरा प्रभाव पड़ेगा।

साधारणतः ग्राहकों से चिरपरिचित संवेष्टन को नहीं बदलना चाहिये। संवेष्टन का परिवर्तन कई प्रकार की कठिनाइयां उपस्थित करता है। किसी एक संवेष्टन की वस्तु का नित्य उपयोग करते-करते ग्राहकों के मन में उस संवेष्टन के प्रति एक प्रकार का मोह निर्माण हो जाता है और सामान्य रूप से उसे त्यागने के लिये उनका मन राजी नहीं होता। संवेष्टन का परिवर्तन ग्राहकों के मन में संदेह पैदा कर सकता है कि संवेष्टन परिवर्तन के साथ साथ संभवतः वस्तुओं के गुणों में भी परिवर्तन कर दिया गया हो। वे उन वस्तुओं को पहली वस्तुओं की तुलना में कम दजों की समझ बैठते हैं।

साधारणतः निम्न कारणों से संवेष्टन में परिवर्तन किया जाता है :—

(१) संवेष्टन तथा बोध-चिन्हों की वस्तुओं के गुणों के साथ विसंगति—जैसे तकली छाप मील का कपड़ा, महात्मा गांधी की छाप वाला बीड़ी का संवेष्टन ।

(२) आर्थिक परिस्थिति—कंठच्छेदी प्रतिस्पर्धा का सामना करने के लिये कई बार संवेष्टन-व्यय कम करने के लिये संवेष्टन-परिवर्तन करना पड़ता है । इन्डो-पेन-ग्राम और कपूर का संवेष्टन अब टिन का नहीं रहा, पृष्ठों (स्ट्रॉ बोर्ड) का बनाया गया है ।

(३) अनिवार्य परिस्थिति—युद्धकालीन परिस्थिति में परिवेष्टन-सामग्री के अभाव के कारण संवेष्टन में परिवर्तन करना पड़ता है । ग्लेक्सो ग्लूकोज के संवेष्टन युद्धकाल में पृष्ठों के बना दिये गये थे; अब वे फिर से टिन के बना दिये गये हैं ।

(४) भूपाचार परिवर्तन—भूपाचार परिवर्तन के कारण यदि वस्तुओं में परिवर्तन हुआ तो उसके संवेष्टन में भी परिवर्तन अनिवार्य हो जाता है ।

संवेष्टन में यदि परिवर्तन किया गया तो प्रवर्तन-विभाग का यह कार्य हो जाता है कि वह उस परिवर्तन के संबंध में अपने ग्राहकों को पूरी जानकारी दे । साथ ही साथ उसका पूर्ण विज्ञापन भी करा दे ताकि वस्तु के अन्तिम उपभोक्ता भी उस परिवर्तन से पूर्ण परिचित हो जायँ । विज्ञापित किया जाय कि नूतन संवेष्टन की वस्तुओं के गुणों में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया गया है । यदि परिवर्तन अनिवार्यता के कारण और अस्थायी स्वरूप का ही तो ग्राहकों को अभिवचन देना चाहिये कि सामान्य परिस्थिति निमार्ण होते पुगना ही संवेष्टन प्रारंभ कर दिया जायगा ।

यदि विक्रेताओं के पास संवेष्टन-परिवर्तित वस्तुओं का पुराना स्कंध अधिक हो और विक्रेताओं को हानि की संभावना हो तो ऐसे समय सार्थक यह कर्तव्य हो जाता है कि वह पुरानी वस्तुएँ विक्रेता से वापिस ले ले और संवेष्टन परिवर्तित कर व्यय-मुक्त उन्हें दे दे । यदि यह आर्थिक दृष्टिसे उचित और संभव न हो तो परिवर्तन ऐसे ही समय पर किया जाय, जब कि पुराना स्कंध करीब-करीब समाप्त होने को आया हो । मौसमी वस्तुओं के संबंध में यह आसानी से किया जा सकता है । उस्त मागों के अलावा विक्रेताओं को उधार नीति, अपहार नीति आदि द्वारा सहूलियतें दी जा सकती हैं । इन सहूलियतों के कारण विक्रेता उन पुरानी चीजों को आसानी से बेच सकते हैं ।

विज्ञापन विभाग किसी प्रकार के विक्रय-साहित्य द्वारा ग्राहकों को जानकारी पहुँचाने का कार्य न करता हो तो विक्रय-प्रवर्तन विभाग वह कार्य अवश्यमेव करे। विक्रय-साहित्य द्वारा प्रवर्तन विभाग विक्रय-शला की आर्थिक दृष्टिकोण से बहुत बड़ी सहायता कर सकता है। अपरिचित वस्तुओं की वह जानकारी दे सकता है। इस साहित्य की सहायता से भावी विक्रय भूमिका बाँधी जा सकती है।

विज्ञापन कार्य से काफी सम्पर्क रखनेवाला दूसरा कार्य प्रपत्र-पत्र (Form Letters) और अनुसरण पत्र (Follow up Letters) भेजना है। विक्रय-प्रवर्तन विभाग का यह अत्यंत महत्वपूर्ण अंग है।

प्रपत्र पत्र

प्रति दिन आनेवाले पत्रों का उत्तर देने के लिये इन पत्रों का उपयोग किया जाता है। विक्रय पत्रों का यह एक महत्वपूर्ण विभाग है। प्रति दिन के व्यवसाय में एक ही प्रकार के अनेक पत्र आया करते हैं। हमेशा उनके उत्तर लिखाते रहता प्रवर्तक के लिए समय की बर्बादी होगी। उसी प्रकार लिपिक को भी यह कार्य सौंपाना नहीं जा सकता। एक ही प्रकार के पत्र जो हमेशा आया करते हैं, उन का उत्तर भी साधारणतः निश्चित प्रकार का होता है। ऐसे पत्रों का आदर्श उत्तर प्रवर्तक तैयार करता है। आनेवाले पत्रों के उत्तर में किम प्रकार का उत्तर दिया जाय इस ओर संकेत मात्र कर दिया जाता है और लिपिक उसे लिख भेजता है। कई बार पूर्ण पत्र की नकल न करते हुए दो-चार आदर्श-पत्रों में से कुछ परिच्छेद लेकर उत्तर तैयार कर दिया जाता है।

परिपत्र (Circular Letters) और प्रपत्र पत्र में काफी हद तक समानता होते हुये भी कुछ सूक्ष्म भेद है। परिपत्र सार्य के सभी ग्राहकों को भेजे जाते हैं, किन्तु प्रपत्र-पत्र ग्राहकों के पत्रों के उत्तर में या जिन ग्राहकों का पत्र-व्यवहार रुक गया है उन्हें जाग्रत कर पत्र-व्यवहार फिर प्रारंभ करने लिये भेजे जाते हैं।

प्रपत्र पत्र पूर्ण सावधानी पूर्वक लिखे जाने चाहिये। प्रथम परिच्छेद अत्यंत आकर्षक हो। जिस बात में ग्राहक को रुचि हो वह बात प्रथम परिच्छेद में ही लिख देनी चाहिए। भाषा आकर्षक और रचना मनोरम होनी चाहिये। पत्र प्रारंभ करने के पूर्व जिस बात के सिलसिले में पत्र लिखा जा रहा है, उस का पूर्ण अध्ययन कर लिया जाय। पत्र सार्य के दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए लिखने की अपेक्षा ग्राहकों के दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर लिखना चाहिये।

इससे यह व्यक्त हो कि सार्य ग्राहकों को अधिक महत्व देती है। पत्र से यह प्रकट हो कि जितनी रुचि सार्य को विक्रय बढ़ाने में है, उससे अधिक रुचि ग्राहकों की कठिनाइयों हल करने और उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में है। प्रत्येक मनुष्य प्रशंसा-प्रिय है, ग्राहक भी इस के लिये अपवाद नहीं हो सकता। अपने मन की भावना से परिपूर्ण पत्र ग्राहकों को अवश्य प्रसन्न करेगा। कलकत्ता की एक सार्य ने दस हजार जानकारी पत्रों के उत्तर सार्य का दृष्टिकोण ध्यान में रखकर दिये और उतने ही पत्रों के उत्तर ग्राहकों के दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुये दिये। विस्मरण करने पर यह निष्कर्ष निकाला गया कि जिन पत्रों के उत्तर ग्राहकों के दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर दिये गये थे उन से १५ प्रतिशत अधिक आदेश प्राप्त हुये। प्रपत्र-पत्र में लिखी बातें ऐसी हों, जिन्हें पढ़कर पाठक के मन में सन्देह उत्पन्न न हो और पत्र के समाचारों को वह चुनौती न दे सके। एक समय केवल एक ही बात लिखी जाय। पत्र का अंतिम परिच्छेद इस प्रकार लिखा जाय जिसे पढ़कर ग्राहक आदेश भेजने के लिये प्रवृत्त हो जाय। इन पत्रों की लिखावट में सब से महत्व पूर्ण बात यह है कि प्रतिस्पर्धियों की वस्तुओं की बुराइयों की आलोचना न करते हुये अपनी वस्तुओं की विशेषताओं पर प्रकाश डाला जाय।

उक्त पत्र लिखने के पूर्व हर विक्रय-शाला को अपने ग्राहकों की आवश्यकताएँ और आदतें क्या हैं और ग्राहकों से विक्रय-शाला क्या अपेक्षा करती है इत्यादि बातों का सूक्ष्म अध्ययन का लेना चाहिए। ग्राहकों का ध्यान आकर्षित करने और विक्रय-शाला तथा विक्रय-शाला की वस्तुओं में ग्राहकों की रुचि बढ़ाने में इस प्रकार के पत्र काफी सहायता करते हैं। यदि प्रपत्र पत्र द्वारा सूचना दिये बगैर नमूना-वस्तु या विवरण-पत्रिकाएँ ग्राहकों की ओर भेज दी जायँ, तो उन में से केवल ५ से १० प्रतिशत पत्रिकाएँ ही पढ़ी जायँगी। इस के विपरित प्रथम पत्र द्वारा यह सूचित कर कि 'अधिक जानकारी के लिये विवरण पत्रिकाएँ मुफ्त भेजी जा सकती हैं,' यदि पत्रिकायें भेज दी जायँ तो उनमें से करीब ९० प्रतिशत विवरण पत्रिकाएँ ग्राहकों-द्वारा अवश्य पढ़ी जायँगी।

विक्रय-पत्र (Sales Letters)

समाचार-पत्रों वा मासिक-पत्रों में विज्ञापन देखने के पश्चात् या प्रथम पत्र के उत्तर में जब ग्राहक किसी प्रकार की जानकारी हासिल करना चाहता है, तब उस पत्र का उत्तर योग्य रीति से देना चाहिये। इस प्रकार के पत्रों को 'विक्रय-पत्र'

कहते हैं। ग्राहकों द्वारा पूछे गये सारे प्रश्नों के उत्तर इस पत्र में योग्य रीति से लिखे जायें। ऐसे वाक्य या शब्द न लिखे जायें जो ग्राहकों के दिल को चुभें। ग्राहकों के पत्रों को ध्यान से पढ़कर वह बात जानी जाय जिसका कि ग्राहकों के दिल पर अधिक प्रभाव हुआ है और उसी बात पर विक्रय-पत्र में विशेष प्रकाश डाला जाय। यदि पत्र किसी विज्ञापन का फल है, तो उस विज्ञापन की प्रतिलिपि उसके उत्तर के साथ भेज दी जाय।

सामान्य विज्ञापन पत्र (General Advertisement Letters)

सामान्य विज्ञापन-पत्रों द्वारा किसी भी वस्तु के खास गुणों पर अधिक प्रकाश डाला जाता है। ये पत्र साधारणतः अल्पशो-विक्रेताओं को भेजे जाते हैं। इन पत्रों का प्रभाव ऐसा पड़ना चाहिये कि ग्राहक 'नाहीं' न कह सके; आदेश भेजने के लिये करीब-ब्राध्य हो जाय।

अनुसरण-पत्र (Follow-up-Letters)

मुख्यतः इन पत्रों का उपयोग प्रेषादेश व्यापार (Mail-order-Business) में किया जाता है। जिस समय ग्राहक विक्रय-शाला में आकर खरीदी करता है, तब विक्रेता वस्तु के गुणों को क्रमशः बतलाकर उसे प्रभावित करता है, ताकि ग्राहक वस्तु खरीद ले। परन्तु जो ग्राहक देहातों में रहते हैं या ऐसे शहरों में रहते हैं, जहाँ विक्रय-शाला की शाखा न हो, उन्हें अपनी वस्तु से परिचित कराने के लिये इन पत्रों का उपयोग करना उचित होगा। प्रपत्र-पत्र द्वारा ग्राहकों के दिल पर जो प्रभाव हुआ, उसे बनाये रखते हुये, ग्राहकों को पूर्ण रूपेण संतोष प्रदान करना ही इन पत्रों का प्रमुख उद्देश्य है।

इन पत्रों में सारी बातें इस प्रकार लिखी जानी चाहिये, जिससे पढ़ने के पश्चात् ग्राहक वस्तु खरीदने के लिये प्रवृत्त हो जाय। अनुसरण-पत्रों की साधारणतः पाँच से सात तक संख्या होती है। विक्रय दृष्टिकोण से अन्तिम तीन या चार पत्र अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं। इस प्रकार करने के पूर्व वस्तुओं की विशेषताओं, क्रय-सुविधाओं तथा ग्राहकों की भी शंका-आशंकाओं आदि का पूर्ण अध्ययन करना ज़रूरी है। इसके उपरान्त एक सूची बना ली जाय जिसमें इस प्रकार का क्रम हो कि उक्त सारी बातों का उत्तर किस प्रकार और किस क्रम के अनुसार देना है। एक पत्र में एक या दो बातों पर पूर्ण प्रकाश डाला जाय। दो पत्रों के बीच अधिक अवधि न हो। यदि पिछले पत्र का प्रभाव न हुआ हो, तो उनका कारण ज्ञात किया जाय और उस अभाव की पूर्ति अगले पत्र में की जाय

ग्राहकों के मन में वस्तु के प्रति दिलचस्पी निर्माण की जाय; दूसरे पत्र में उसके गुण, मज़बूती, उपयोग आदि पर चर्चा की जाय; तीसरे पत्र में सुविधाओं की चर्चा की जाय; चौथे पत्र में नमूना-वस्तु भेजने की चर्चा की जाय और पाँचवें पत्र में उपर्युक्त सभी बातों का सारांश हो ।

वस्तुओं के गुणों का पूर्ण ज्ञान न होने के कारण ग्राहक क्रय के संबंध में स्वयं निर्णय नहीं कर सकते; उन्हें अपने विक्रेताओं के ज्ञान एवं मार्गदर्शन पर ही निर्भर रहना पड़ता है । विक्रेताओं का मार्गदर्शन भी दो प्रकार का होता है । अल्पशो-विक्रेता को लाभ में दिलचस्पी होती है, अतः वह उन्हीं वस्तुओं की सिफारिश करेगा जिनके विक्रय से उसे अधिक लाभ हो । वैतनिक विक्रेता उन वस्तुओं की सिफारिश करेगा जिन्हें वह अपनी दृष्टि से सर्वोत्तम समझता है, या जिन्हें लाना-ले जाना सुविधाजनक है अथवा उसे जिन वस्तुओं का विक्रय करने का विशेष रूप से आदेश मिला हो । इन दृष्टिकोणों को ध्यान में रखते हुये विक्रय-साहित्य और अन्य प्रकार के प्रपत्र-पत्र लिखे जाने चाहिये । पत्र-पत्रिकाओं द्वारा दी हुई सूचनाएँ ऐसी हों जो सर्वसाधारण वस्तुओं के विक्रय के लिये उपयोग में लाई जा सकें और अंतिम परिच्छेद में उदाहरण देकर अपनी सार्थ की वस्तुओं का उल्लेख किया जाय । इस प्रकार लिखी गई सूचनाएँ विक्रेता की विक्रय-योग्यता बढ़ाने में सहायक सिद्ध होती है और वे उन्हें दिलचस्पी से पढ़ते हैं ।

(आ) सार्थ के विक्रेताओं संबंधी कार्य

विक्रेता कम से कम व्यय में और अत्यल्प अवधि में अधिक से अधिक आदेश प्राप्त कर सकें इसके लिये उन्हें तालीम देकर लगातार पूर्ण जानकारी उपलब्ध कराते रहना बहुत ज़रूरी है । प्रवर्तकों की यह सेवा व्यापार भिन्नता के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार की रहेगी । तांत्रिक-वस्तुओं के उत्पादकों को विक्रेताओं की संख्या की ओर अधिक ध्यान न देकर उनके वैज्ञानिक ज्ञान की ओर अधिक ध्यान देना चाहिये । जिन यंत्रों का विक्रय करना है उनकी गहन जानकारी उन्हें होनी चाहिये । वस्तुओं का उपयोग, उनकी गति, धोखे से बचने के लिये सावधानी, उनमें किये हुये सुधार, उनकी रचना आदि की पूर्ण तालीम उन्हें देनी चाहिये । यंत्र के हर हिस्से का नाम और ज्ञान उसे होना चाहिये और उसकी बनावट भी मालूम हो । यदि यंत्र बिगड़ जाय तो तात्कालिक सुधार कैसे करें इसका ज्ञान प्रशिक्षण में ही प्राप्त करना परमावश्यक है । अन्यथा छोटे-मोटे सुधार के लिए बार बार प्रमंडल के तज्ञ को बुलाते बैठना पड़ेगा ।

कुछ घरेलू उपयोगी (Consumers goods) वस्तुओं के विक्रेताओं को तांत्रिक ज्ञान (Technical Knowledge) की ज़रूरत नहीं रहती। उनमें केवल ग्राहकों को समझा देने की कला की आवश्यकता है। तांत्रिक वस्तुओं का वर्णन केवल नपे-तुले शब्दों में किया जाता है; किन्तु घरेलू वस्तुओं के बारे में लगातार समझाने की आवश्यकता होती है। अभिनय भी करना पड़ता है और कई बार वस्तु प्रत्यक्ष उपयोग में लाकर दिखानी पड़ती है। प्रशिक्षण संबंधी सविस्तर वर्णन 'विक्रय-संगठन' विभाग में स्वतंत्र रूप से दिया गया है। यहाँ पर इतना ही बतलाना ज़रूरी समझते हैं कि संभवतः प्रवर्तक हर शाखा में प्रवीण नहीं हो सकता; अतः अपने विक्रेताओं की तालीम के लिये बाहर के विशेषज्ञों की जब आवश्यकता हो, उनकी सेवा का वे लाभ अवश्य उठावें।

विक्रय-प्रवर्तक को व्यापार-क्षेत्र का गहन ज्ञान होना चाहिये जिससे किस प्रकार की तालीम विक्रेताओं को दी जानी चाहिए इसका वह निर्णय कर सके और सफल योजनाएँ बना सके। विक्रेताओं को प्रत्यक्ष कार्यक्षेत्र में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये, केवल व्याख्यान और किताबी ज्ञान ही पर्याप्त नहीं होता। विक्रेताओं को चाहिए कि वे एकाम्र चित्त से अध्ययन करें। शब्दों की अपेक्षा भाव की ओर अधिक ध्यान दें और समय तथा परिस्थिति के अनुसार सूत्रों में आवश्यक परिवर्तन करते रहें।

यदि कोई विक्रेता अपने क्षेत्र में बारबार असफल रहता है तो स्वयं प्रवर्तक को चाहिए कि वह उस विक्रेता के साथ जाय और उसकी सहायता करे और उसे धीरज दे। उसे आश्वासन दिलाया जाय कि प्रयत्न कभी व्यर्थ नहीं जाते हैं। प्रारंभ में निपुण कार्यकर्ताओं को भी कुछ हद तक असफलता सहनी पड़ती है। इन सब प्रयत्नों के बावजूद भी वह निरुत्साही रहता है और उस क्षेत्र के प्रति उसके दिल में आत्म-विश्वास निर्माण ही नहीं होता तो उस का क्षेत्र बदल देना चाहिये। किसी एक क्षेत्र में असफल विक्रेता दूसरे क्षेत्र में इतनी सफलता प्राप्त कर लेता है कि लोग दौटों तले उंगली दबाने लगते हैं। यदि कोई नया और कठिनाइयों से परिपूर्ण क्षेत्र हो तो वहाँपर निपुण विक्रेता ही भेजा जाय।

पत्र-व्यवहार और अन्य संचार साधनों द्वारा सार्थ के विक्रेताओं की सहायता

प्रवासी-विक्रेता जिस समय प्रवास पर निकलते हैं, उस समय उनके प्रवास कार्यक्रम की एक प्रतिलिपि प्रवर्तक को अपने कार्यालय में रख लेनी चाहिए। इस

प्रवास की अवधि के बीच कुछ नयी सामग्री, विज्ञापन-पत्र तथा अन्य जानकारी प्रवर्तक के पास यदि आयी हो तो प्रवास कार्यक्रम में लिखे गये पते पर उसे भेज देनी चाहिये ताकि विक्रेता का ज्ञान अद्यावत रह सके। उसी प्रकार विक्रेता कम से कम साप्ताहिक विक्रय-वृत्त (Sales Report) प्रवर्तन-विभाग को भेजे। विक्रय-विवरण पढ़ने के पश्चात् यदि प्रवर्तक कुछ सूचनाएँ विक्रेता को भेजना चाहे, तो वे अवश्य भेजी जायँ। कभी-कभी किसी व्यापारी को विशेष सुविधाएँ प्रदान करना व्यवसाय की दृष्टि से लाभकारी हो सकता है। ऐसे समय यदि विक्रेता को अधिकार हो तो वह पत्र-द्वारा उसे प्राप्त कर सकता है। यदि प्रवास-अवधि के बीच मूल्य में परिवर्तन हो जाय तो उस की जानकारी उसे हासिल हो सकती है, जिस की सहायता से अपने प्रतिस्पर्धी की अपेक्षा अधिक सुविधाएँ दे सकता है या सार्थ को (मूल्य वृद्धि के समय पर) हानि से बचा सकता है।

विक्रेताओं की प्रतियोगिता

साहस मानव की स्वाभाविक प्रकृति है और प्रतियोगिता साहस का पोषण एवं प्रवर्तन करने वाली है। विद्यालय की सामान्य प्रतियोगिताएँ भी कितनी उत्साह वर्धक होती हैं! यदि इन प्रतियोगिताओं के साथ आर्थिक लाभ जुड़ा रहा तो स्पर्धा और भी दिलचस्प हो जाती है। हर विक्रेता के लिये विक्रय-अभ्यंश (Sales Quota) निश्चित कर दिया जाय। यदि विक्रेता विक्रय-अभ्यंश सतत कायम रखता है तो उसके पारिश्रामिक में वृद्धि की जाय। यदि अभ्यंश राशि की अपेक्षा विक्रय राशि अधिक बढ़ती है तो इस अधिक्य पर उसे आर्थिक प्रमाण में पारिश्रामिक दिया जाय। इसके अलावा किसी निश्चित समय के अन्त में उन चार-छः विक्रेताओं को, जिनका कार्य पूर्ण संतोष जनक रहा हो, विशेष पारितोषिक दिया जाय।

प्रतियोगिता को यदि चमू-प्रवृत्ति (Team Spirit) का स्वरूप दिया जा सके तो सर्वोत्तम होगा; क्योंकि उससे आपस में स्नेह निर्माण होकर हरेक के भिन्न-भिन्न गुणोंका समुदाय एकत्रित होता है। संभवतः स्पर्धा के विकृत स्वरूप से विक्रेताओं को अलिप्त रखा जाय और वैयक्तिक वैमनस्य, द्वेष, ईर्ष्या आदि दुर्गुण प्रादुर्भूत होते ही उन्हें रोकने के प्रयत्न किये जायँ। समय पर यदि उचित नियंत्रण न रखा गया तो दावाभिक्की भाँति उसे रोकना असंभव हो जायगा।

यदि प्रतियोगिता के कारण होने वाली विक्रय-वृद्धि अस्थायी स्वरूप की हो तो उसके आधार पर विक्रेताओं को स्थायी वेतन-वृद्धि न दी जाय; केवल

वृद्धि के लिये विशेष पारिश्रमिक या पारितोषिक दे दिया जाय। एक बार वेतन-वृद्धि होने के पश्चात् विक्रेता विक्रय-राशि कम होने के बावजूद भी वेतन घटाने के लिये राजी नहीं होंगे। इसी दृष्टि-कोण को ध्यान में रखते हुये युद्धकालीन महुँगाई के समय पर स्थायी वेतन-वृद्धि न कर केवल अधिलाभाश (Bonus) दिया गया। प्रतियोगिता, वेतन-वृद्धि तथा पारितोषिक विचार पूर्वक दिया जाय। प्रतियोगिता व्यय की तुलना में कई गुना अधिक उससे आर्थिक लाभ होना ज़रूरी है। केवल प्रतियोगिता के लिये प्रतियोगिता या मौज के लिये प्रतियोगिता न हों। कई बार केवल मिथ्या आत्म-सम्मान की रक्षा के लिये आर्थिक हानि उठा कर भी प्रवर्तक प्रतियोगिता रखा करते हैं; विक्रय-राशि अधिक दर्शाने के लिये ग्राहकों की आर्थिक हालत अत्यंत कमजोर होते हुए भी उधार-विक्रय किया जाता है। इस प्रकार प्रतियोगिता को अनुचित परिकल्पना (Speculation) के स्वरूप से बचाया जाय।

प्रतियोगिता के कारण जो अधिक विक्रय होता है, उस आधिक्य पर पारिश्रमिक और पारितोषिक देने के साथ ही वह कार्य समाप्त नहीं होता। प्रतियोगिता की अवधि में जो नये आदेश प्राप्त होते हैं, वे सारे स्थायी स्वरूप के नहीं बनाये जा सकते, फिर भी उन आदेशों का पर्याप्त हिस्सा प्रयत्नों द्वारा स्थायी बनाया जा सकता है। इन अस्थायी ग्राहकों से पत्र-व्यवहार तथा विज्ञान-पत्रों द्वारा सम्पर्क प्रस्थापित कर उनसे स्थायी संबंध जोड़ने का सतत प्रयत्न करना चाहिये। यदि आवश्यक समझा जाय तो प्रारंभिक काल में उन्हें कुछ अधिक सहूलियतें भी दी जा सकती हैं।

प्रतियोगिता के लिये जो अभ्यंश निर्धारित किया जाय वह पर्याप्त हो। संभव है, उस निर्धारित अभ्यंश राशि तक कोई भी विक्रेता विक्रय न कर सके। ऐसी हालत में भी उन्हें पारितोषिक से वंचित न रखा जाय, सर्व प्रथम आनेवाले विक्रेताको पारितोषिक दिया जाय। नवाशिक्षित विक्रेता को, जिसने विशेष कार्य कर दिखलाया हो और जिसे परितोषण न मिल सका हो, उसे उत्साहित करने के लिये परितोषण देना उचित होगा।

प्रतियोगिता क्यों रखी जाय ?

प्रतियोगिता के पक्ष में निम्न दलीलें दी जा सकती हैं :—

१. प्रतियोगिता के कारण विक्रेताओं में स्पर्धा प्रारंभ होती है और उसमें सफलता पाने के लिये वे सहकार संपादित कर आपसी संबंध बढ़ाते हैं।

प्रतियोगिताओं में आर्थिक लाभ के साथ-साथ काफी अनुभव भी मिलता है जिससे विक्रेताओं की योग्यता और कार्यक्षमता बढ़ती है।

२. अवसाद-समय में प्रतियोगिताएँ अपना विशेष स्थान रखती हैं। अवसाद के कारण होनेवाली हानि का प्रमाण प्रतियोगिता द्वारा विक्रय बढ़ाकर कम किया जा सकता है।

३. यदि कुछ नई वस्तुएँ निर्माण की गई हों तो इन प्रतियोगिताओं का आश्रय लेकर पुरानी वस्तुओं के साथ-साथ उसका प्रचार कर विक्रय बढ़ाया जा सकता है।

४. जिन विपणियों में ग्राहक सार्थ की वस्तुओं से अपरिचित हों, वहाँ प्रतियोगिताओं द्वारा प्रवेश प्राप्त कर विपणि-क्षेत्र बढ़ाया जा सकता है।

५. सफल विक्रेताओं का आत्मविश्वास बढ़ता है और जो असफल होते हैं, उन्हें अपने दोष और कमज़ोरियाँ ज्ञात हो जाती हैं जिन्हें वे भविष्य में आसानी से हटा सकते हैं।

६. विक्रेताओं की प्रतियोगिता सार्थ कार्यालय के अन्य कर्मचारियों में भी उत्साह का नवसंचार करती है और कर्मचारियों और विक्रेताओं में घनिष्ठ संबंध स्थापित होते हैं।

७. इस अवधि में हर विक्रेता को अपनी योग्यता को कसौटी पर कसने का पूरा अवसर मिलता है और योग्य व्यक्तियों को प्रशंसा प्राप्त होती है।

प्रतियोगिता के कुछ मूलभूत सिद्धान्त

प्रतियोगिता रखते समय निम्न बातों की ओर ध्यान देना आवश्यक है:—

१. जहाँ तक संभव हो पारितोषिक ऐसे रखे जायँ जो नित्योपयोग में आ सकें और समाज में जिनका स्वाभाविक रूप से प्रदर्शन हो सके।

२. प्रतियोगिताएँ अति जटिल न हों। जहाँ तक संभव हो वे इस प्रकार की रखी जायँ कि सामान्य विक्रेता भी उनमें शरीक हो सके।

३. प्रतियोगिताओं की पूर्ण योजना पर प्रकाश डालते हुए स्वयं प्रवर्तक विक्रेताओं की सभा में योजना ठीक रूप से समझा दे और प्रतियोगिता में हिस्सा बँटाने के लिये उन से वैयक्तिक अपील करे।

४. किसी भी विक्रेता के लिए किसी भी प्रकार की खास सुविधा न रखी जाय; सब के लिये समान नियम हों।

५. प्रतियोगिताओं के समाप्त होने पर यथासंभव विलंब न कर विक्रेताओं के एक खास समारंभ में प्रशंसा-पत्र के साथ पारितोषिक-वितरण किया जाय। यदि पारितोषिक-वितरण में अधिक विलम्ब किया गया तो विक्रेताओं में असंतोष और अविश्वास फैलने की संभावना रहती है।

६. प्रतियोगिताएँ विक्रय-वृद्धि के दृष्टिकोण से रखी जायँ; विक्रेताओं की परीक्षा लेने की दृष्टि से नहीं। यदि विक्रेताओं की परीक्षा लेने की दृष्टि से रखी गई तो स्वाभिमानी विक्रेताओं के आत्मसम्मान को वे ठेस पहुँचायेंगी और वे उसमें शरीक नहीं होना चाहेंगे।

७. इस ओर अधिक ध्यान दिया जाय कि प्रतियोगिता में हिस्सा लेने-वाले विक्रेता अन्त तक उसमें कार्य करते रहें। यदि बीच ही में कोई निरुत्साहित होता है तो उसे धीरे-धीरे ब्रंदाकार फिर से कार्य-प्रवृत्त करना चाहिए।

(अ) विपणि अन्वेषण कार्य

ग्राहकों की माँग, रुचि, आदतें, क्रय-शक्ति, भूषाचार आदि बातें सदा परिवर्तित हुआ करती हैं; अतः प्रवर्तक के लिये यह ज़रूरी है कि इस परिवर्तन का अध्ययन कर और अपनी वस्तुओं में भी उसी प्रकार का परिवर्तन कर उन्हें अद्यावत बनाये रखे। वैसे ही नूतन विपणि में प्रवेश पाने के लिये वहाँ की गहन जानकारी प्राप्त कराना परमावश्यक होता है। ये दोनों बातें 'विपणि-अन्वेषण क्षेत्र' में समाविष्ट हैं। विपणि-अन्वेषण कार्य अत्यंत महत्वपूर्ण होने कारण उसकी चर्चा अगले स्वतंत्र अध्याय में की गयी है।

२. विक्रय-शाला के ग्राहकों से संबंधित कार्य

यह बात निर्विवाद है कि अपनी वस्तुओं का वितरण करनेवाले व्यापारियों के साथ सार्थक का अत्यंत घनिष्ठ एवं स्नेहपूर्ण संबंध होना चाहिये। यह सम्पर्क निम्न साधनों से स्थापित कर बढ़ाया जा सकता है :

(अ) विक्रेताओं की सहायता द्वारा।

(आ) परिपत्रों, औद्योगिक मासिक-पत्रिकाओं आदि द्वारा।

(अि) प्रदर्शनों द्वारा।

(औ) परिषदों द्वारा।

(अु) प्रत्यक्ष नीति द्वारा।

उपयुक्त साधनों में से प्रत्येक साधन उत्पादक और बहुशो-विक्रेताओं के लिये अत्यंत उपयुक्त है। उत्पादकों और वितरकों की आपस में प्रतिस्पर्धा रहती

है। अतः जो वितरक अधिक से अधिक सहूलियतें प्रदान कर अधिक लाभ कमाने का मौका अल्पशो-विक्रेताओं को दे सकता है, उसी से अल्पशो-विक्रेता क्रय करेंगे। अतः केवल अपने लाभ की ओर ध्यान न देकर अपने व्यापारी-ग्राहकों को काफी तादाद में लाभ हो सके इस ओर ध्यान देना ज़रूरी है। यदि किसी क्षेत्र का एकल अभिकर्तृत्व (Sole Agency) किसी व्यापारी को दे दिया गया हो और उस क्षेत्र से सीधे सार्थ के पास आदेश पहुँचा हो तो उस आदेश को उस एकल अभिकर्ता के ज़रिये ही कार्यान्वित करना चाहिये। सीधे कार्यान्वित कर थोड़े से स्वार्थ के मोह में यदि उत्पादक फँस जाता है तो भविष्य में काफी हानि उसे उठानी पड़ेगी।

हर वस्तु के विक्रय से अधिक लाभ पाने का मोह रखने की अपेक्षा विक्रय राशि अधिक कैसे बढ़ायी जा सकती है इस ओर प्रयत्न-शील रहना चाहिये। यदि प्रति वस्तु पर अधिक लाभ पाने का दृष्टिकोण रखा गया तो वस्तुओं की विक्रय-राशि कम होगी फलतः लाभ भी कम होगा। इसके विपरीत प्रति वस्तु अत्यल्प लाभ की दृष्टि रखी गयी तो विक्रय-राशि का प्रमाण काफी अधिक होगा और परिणामतः पहले की अपेक्षा लाभ भी अधिक होगा। यह नीति उत्पादक एवं उसके व्यापारी ग्राहक इन दोनों को फलदायक होगी। इस नीति का अवलंब उन वस्तुओं के संबंध में नहीं किया जा सकता जिनका अभियाचन अप्रत्यास्त (inelastic) होता है; क्योंकि इन वस्तुओं के ग्राहक अत्यंत मर्यादित होते हैं और उनका विक्रय भी निश्चित प्रमाण से अधिक नहीं हो सकता। उत्पादकों का उत्तरदायित्व केवल अल्पशो-विक्रेताओं को वस्तुएँ भेज देने के साथ ही समाप्त नहीं हो जाता, उस का यह भी उत्तरदायित्व है कि वह उन वस्तुओं के अन्तिम विक्रय के लिये भी प्रयत्न करे, ताकि अल्पशो-विक्रेताओं की यह गलत-फहमी न हो कि उत्पादक हमारी आलमारियों में केवल वस्तुएँ ठूस रहा है। किन्तु वह यह भी महसूस करे कि वह उन वस्तुओं के अन्तिम विक्रय में भी दिलचस्पी रखता है। उक्त कार्य के लिये वस्तुओं का अधिक से अधिक विज्ञापन करना और आवश्यक प्रमाण में वस्तुओं की पूर्ति करना आवश्यक है।

अल्पशो-विक्रेता यह चाहेगा कि उसकी विक्रय-शाला में अद्यावत भूषाचार की वस्तुएँ ही रहें। अतः उसी प्रकार की वस्तुएँ उत्पन्न कर उनका पूर्ण विज्ञापन भी किया जाय। नूतन भूषाचार की वस्तुओं के संबंध में पूर्ण जानकारी ग्राहकों को किस प्रकार दी जाय, उन को उपयोग करना किस प्रकार समझाया जाय

आदि बातों का ज्ञान सरल, स्पष्ट एवं मनोरंजक ढंग से अल्पशो-विक्रेताओं, बहुशो-विक्रेताओं और वितरकों को देना चाहिये। यह कार्य अत्यंत नाजुक एवं कलापूर्ण है। प्रवर्तक अपने आपको उपदेशक की भूमिका में रखकर यह कार्य न करे अन्यथा व्यापारी-ग्राहकों के आत्मसम्मान को ठेस पहुँचेगी। केवल यही दर्शाया जाय कि उक्त कार्य केवल कर्तव्य-भावना से किया जा रहा है।

संभव है उपर्युक्त सेवा की आवश्यकता बहुविभागी भाडागारों (Departmental Stores) और बहुविक्रय-शालाओं (Multiple Shops) को उतनी न हो, क्योंकि ये विक्रय-शालाएँ इस कार्य के लिये अपने निजी जानकार रख सकती हैं। किन्तु अल्पशो-विक्रेता उक्त सेवा की बहुत आवश्यकता अनुभव करते हैं। इस का मतलब यह कदापि नहीं कि बहुविभागी भाडागार और बहुविक्रय-शाला से हम विमुख रहें, उनकी सेवा दूसरे भिन्न मार्गों द्वारा करनी होगी। विशाल विज्ञापन कर इन साधों की ग्राहक संख्या बढ़ाने का सतत प्रयत्न करना चाहिये। ग्राहक संख्या बढ़ रही है यह देखकर उन वस्तुओं के उत्पादक की ओर ये बहुविभागी भाडागार और बहुविक्रय-शालाएँ अधिक आकृष्ट होकर पूरा सहयोग प्रदान करने को प्रस्तुत रहेंगी।

अल्पशो-विक्रेताओं की सहायता करते समय निम्न बातें ध्यान में रखनी चाहियें :

उत्पादकों की विक्रय-शक्ति अल्पशो-विक्रेताओं की विक्रय-शक्ति पर निर्भर रहती है। अतः प्रवर्तन विभाग का यह सर्व प्रथम कर्तव्य है कि वे सारे प्रयत्न पूरे उत्साह के साथ किए जायँ जिन से अल्पशो-विक्रेताओं की विक्रय शक्ति बढ़े। अल्पशो-विक्रेताओं की विक्रय शक्ति उन की विक्रय-कला पर निर्भर होती है। अतः प्रवर्तन-विभाग का यह कर्तव्य हो जाता है कि अल्पशो-विक्रेताओं का विक्रय कला परिवर्तित की जाय। इसके साथ साथ विज्ञापन और प्रदर्शन-कला की सहायता से उपभोक्ताओं को इन अल्पशो-विक्रेताओं से और उनकी वस्तुओं से परिचित कराया जाय। उसी प्रकार प्रत्य-नीति ऐसी निश्चित हो कि वह उत्पादक और अल्पशो-विक्रेता दोनों के लिए हितकारक हो, ताकि अल्पशो-विक्रेताओं को काफी सुविधाएँ प्राप्त हो सकें और उत्पादक को आर्थिक शानि होने की संभावना न हो।

(अ) विक्रेताओं की सहायता द्वारा

उत्पादक और अल्पशो-विक्रेता दोनों के बीच घनिष्ठ संबंध प्रस्थापित करने वाली सबसे अधिक महत्वपूर्ण श्रृंखला यात्री-विक्रेता है। यात्री-विक्रेताओं को

अल्पशो-विक्रेताओं की आर्थिक परिस्थिति, आवश्यकताएँ, योग्यताएँ आदि का गहन ज्ञान होता है; क्योंकि वे उनकी बार-बार मुलाकातें लेते हैं और उनके कार्यों का सूक्ष्म निरीक्षण भी किया करते हैं। अतः यह जरूरी हो जाता है कि उन्हीं के जरिये अल्पशो-विक्रेताओं में घनिष्ठ संबंध प्रस्थापित करें और बनाये रखें। यात्री-विक्रेताओं का कार्य द्विविध होता है—एक ओर वे उत्पादकों को अल्पशो-विक्रेताओं से संबंधित आवश्यक बहुमूल्य जानकारी देते हैं और दूसरी ओर वस्तुओं के गुणों की प्रशंसा कर विक्रय बढ़ाने की कोशिश करते हैं। अल्पशो-विक्रेता भी उन्हीं के जरिये खरीदी करना चाहते हैं; क्योंकि उनकी सलाह उन्हें व्यापार में काफ़ी सहायता करती है और वे उन्हें कई सहूलियतें उत्पादकों से दिलवाते हैं। विक्रय कैसे बढ़ावें, विक्रय-शाला की सजावट किस प्रकार करें, वस्तुओं को कैसे संभालें, अपनी वस्तुओं की उपयोगिता ग्राहकों को किस प्रकार समझावें—इन का पूर्ण ज्ञान यात्री-विक्रेता, अपने उत्पादक के प्रतिनिधि के नाते, रखते हैं। हरेक यात्री-विक्रेता का यह कर्तव्य है कि वह अल्पशो-विक्रेताओं के पास वस्तुओं का अनावश्यक स्तंभ न बढ़ने दे।

(आ) परिपत्र (Circular Letters), औद्योगिक

मासिक-पत्रिकाओं आदि द्वारा

प्रवर्तक की एकमेव अभिलाषा यह होती है कि अपने अल्पशो-विक्रेताओं के पास की वस्तुओं का विक्रय शीघ्रता से हो और परिणामतः अपनी वस्तुओं की माँग बढ़े। इसके लिए वह अपनी उत्पादन एवं वितरण योजना को यथासंभव सबल बनाने का प्रयत्न करे। इस कार्य में परिपत्र और मासिक-पत्रिकायें काफ़ी सहायक होती हैं। ये पत्र-पत्रिकायें प्रथम विक्रय की प्रारंभिक भूमिका तैयार कर देती हैं। अतः ये पत्र-पत्रिकाएँ व्यापारियों को नियमित रूप से भेजी जानी चाहिये। साधारणतः अपना विक्रेता उनके पास पहुँचने के कुछ दिनों पूर्व यह सामग्री उनके पास पहुँच जानी चाहिये ताकि व्यापारी उसे पढ़कर यदि कुछ शंकायें हों तो निकाल रखेंगे। वहाँ पहुँचने पर प्रारंभिक भूमिका स्पष्ट करने में विक्रेता को समय बर्बाद नहीं करना पड़ेगा जिससे समय की बचत होगी जिसका उपयोग वह अन्य मुलाकातों द्वारा विक्रय-राशि बढ़ाने के लिये कर सकेगा। प्रतिवस्तु व्यय कम होकर उत्पादक को आर्थिक लाभ होगा। जिन व्यापारियों का अपने व्यापारियों के साथ संबंध आया, वे भी आते-जाते

सहज रूप से इन पत्र-पत्रिकाओं को देखेंगे और फलतः उनके मन में अपनी सार्थ वस्तुओं के संबंध में जिज्ञासा निर्माण होगी जिससे उनका नाम 'ग्राहकों की' सूची में दर्ज करने में कोई हर्ज न होगा। इस प्रकार भेजी गयी पत्र-पत्रिकायें व्यापारियों को विशेष आनंद प्रदान करती हैं, उन्हें महसूस होता है कि प्रवर्तक उन्हें भूलें नहीं हैं, उनका योग्य आदर करते हैं। इस प्रकार दर्शायी गयी सद्भावनाओं के बदले में सहानुभूति और सक्रिय सहायता ज़रूर प्राप्त की जा सकती है।

यह सामग्री अत्यंत आकर्षक एवं मनोरंजक हो ताकि उसे पढ़ने में व्यापारियों को और उनके ग्राहकों को भी दिलचस्पी पैदा हो। इन मासिक पत्रिकाओं में वस्तुओं का उपयोग चित्रों द्वारा दर्शाया जाय। मूल्य और अन्य सुविधाओं का पूर्ण वर्णन उसमें हो और विक्रय-कला विषयों पर सरल किन्तु ज्ञानपूर्ण कुछ लेख हों तथा विक्रय-व्यवस्था आदि के बारे में पर्याप्त विवेचन हो। प्रवर्तकों की मासिक-पत्रिकायें व्यापारियों को नित्यनूतन समाचार विदित कराती हैं और उनमें वस्तुओं के गुणों का परिवर्तन, प्रगति एवं बहुविध उपयोग आदि की भी जानकारी होती है। इतना ही नहीं, बल्कि किसी असामान्य समय में कोई अपरिहार्य खामी रह गई हो तो इन पत्रिकाओं-द्वारा व्यापारी तथा ग्राहकों से क्षमा माँगी जा सकती है। उदाहरणार्थ: इम्पीरियल कॉमिकल वर्क्स ने द्वितीय महायुद्ध के समय टिन के अभाव के कारण अपने डिब्बे पृष्ठों के बनाये थे जिसके लिये मासिक पत्रिकाओं-द्वारा उन्होंने क्षमा माँग कर यह आश्वासन दिलाया था कि सामान्य परिस्थिति निर्माण होते ही वे इस खामी को दूर देंगे। उसी प्रकार संयान प्रमंडलों (रेल्वे कम्पनियों) ने "Keep Wagons Moving" आदि कई सूचनायें व्यापारियों तथा प्रवासियों को पत्र-पत्रिकाओं द्वारा, दी थीं। इस प्रकार के कई उदाहरण दिये जा सकते हैं। इन पत्रिकाओं द्वारा प्रवर्तक और व्यापारियों के बीच स्थायी शृंखला बनी रहती है। इस शृंखला को मजबूत बनाने के लिये मासिक पत्रिकायें अत्यंत उपयुक्त बनाई जानी चाहिये। ग्राहकों की शिकायतों के लिये इन पत्रिकाओं में कुछ पृष्ठ हों। ग्राहकों से प्रार्थना की जाय कि वे निःसंकोच भाव से अपनी शिकायतें पेश करें जिनको पत्रिकाओं में उत्तर सहित प्रकाशित किया जाय। यदि शिकायतें योग्य हों तो उस प्रकार सार्थ की सेवा तथा वस्तुओं में परिवर्तन किया जाना चाहिये, ताकि ग्राहकों को यह महसूस हो कि उनकी शिकायतें कार्यान्वित की जाती हैं। इस प्रकार की नीति अपनाने

प्रणाली सफल हो सकती है; किन्तु जिसकी वस्तुएँ सारे देशभर में वितरित होती हैं या बाहर देश में भी भेजी जाती हैं वे प्रत्यक्ष या प्रतिनिधियों द्वारा भी इस प्रकार का सम्पर्क प्रस्थापित नहीं कर सकते। ऐसे समय उन व्यापारियों की परिषद् निमंत्रित करना अधिक योग्य होगा। इस प्रणाली का मुख्य उद्देश्य व्यापारियों की भावनाओं को स्पर्श कर उन पर अनुकूल प्रभाव डालना है। जिस समय व्यापारी स्वयं प्रमंडल का निर्माण-कार्य देखेंगे, तब उनपर अनुकूल प्रभाव ही होगा और अपनी माँग पूरी करने के लिये प्रवर्तक किस प्रकार अथक प्रयत्न करता रहता है, इसकी उन्हें कल्पना आ सकेगी। उनके द्वारा की गयी शिकायतें दूर करने में कभी-कभी जो विलम्ब हो जाता है उसका क्या कारण होता है उसका प्रत्यक्ष ज्ञान भी उन्हें इस समय हो जाता है। परिषद् के नाते अनेक व्यापारी एकत्रित होते हैं; उन में आपस में चर्चा, विचार-विनिमय और ज्ञान-आदान-प्रदान आदि बातें होती हैं। परिणामतः पूर्व दूषित संबंध या विचार भी दृष्टि जा सकते हैं। ऐसी सभाओं में प्रमंडल के प्रवर्तक द्वारा दी गयी सूचनाएँ पत्रिकाओं द्वारा दी गयी लेखी सूचनाओं की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली सिद्ध होंगी; क्योंकि प्रत्यक्ष भाषण में शब्दों के साथ-साथ भाव-भँगियाँ, व्यक्तित्व और जिन्दापन आदि सहायक बातें भी होती हैं।

मौसमी व्यापारियों की परिषद् अधिक सफल हो सकती है। परिषद् मौसम प्रारंभ होने के कुछ दिन पूर्व निमंत्रित की जानी चाहिये ताकि व्यापारियों का बहुमूल्य व्यापार-समय बर्बाद न होगा। मौसम के कुछ दिनों पूर्व मौसमी वस्तुओं के निर्माण-कार्य की पूर्ण तैयारी हो जाती है जिससे प्रवर्तक व्यापारियों के सन्मुख योग्य दृश्य खड़ा कर सकता है। मौसमी व्यापारियों के अलावा अन्य व्यापारियों की परिषद् व्यापार-समय को ध्यान में रखते हुये निमंत्रित की जाय। यदि वे-मौके परिषद् बुलाई गयी तो काफी कम व्यापारी उपस्थित हो सकेंगे और उपस्थित व्यापारियों में से अधिकांश का मन अपने व्यापार की ओर ही होगा, परिषद् में नहीं। यदि परिषद् संभव न हो तो व्यापारियों को उनकी फुर्सत के समय निर्माणी देखने को आने का निमन्त्रण देना चाहिये। वे अकेले या दो-चार की टोली बनाकर आ सकते हैं। परिषद् में व्यापारियों को सूचनाएँ तथा शिकायतें करने का और उत्पादन संबंधी अपने मत और विचार व्यक्त करने का पूरा अवसर दिया जाय। उनकी सूचनाएँ और शिकायतें सावधानीपूर्वक कार्यान्वित की जायें।

(उ) प्रत्यय नीति द्वारा (Credit Policy)

व्यापारियों को प्रत्यय की हमेशा आवश्यकता होती है। करोड़ों रुपयों का व्यापार प्रत्यय की सहायता से किया जाता है। यदि निपुण व्यापारियों को प्रत्यय प्राप्त न हुआ तो उसके वैयक्तिक व्यापारी कला से समाज बंचित रहेगा, उसे स्वयं द्रव्यलाभ न होगा और उत्पादकों का विक्रय भी उनके प्रमाण में न होकर उसे भी अधिक हानि वरदास्त करनी पड़ेगी। यह बात सत्य होते हुये भी प्रत्यय प्रदान करते समय काफी सावधानी रखनी चाहिए। प्रत्यय अग्नि के समान है; यदि उसका सदुपयोग हुआ तो उत्पादक को आलोक प्रदान कर प्रगति की चीटी पर पहुँचायेगी; यदि दुरुपयोग हुआ तो उसे नष्टनिधि बना देगी। अतः प्रत्यय प्रदान करने के पूर्व व्यापारी की आर्थिक परिस्थिति की पूर्ण जानकारी हासिल कर लेनी चाहिए। जिस यात्रा-विक्रेता के जरिये उससे संबंध प्रस्थापित किया होगा, उसीके द्वारा यह जानकारी उपलब्ध की जाय। इसके अलावा अपने पास प्रत्यय-याचना करने वाला व्यापारी जिन अन्य व्यापारियों के नाम निर्देश-पुरुष (Referee) के नाते देता है, उनसे या सार्थ के अन्य व्यापारी जिन का याचना करने वाले व्यापारी से संबंध हो अथवा प्रत्यय-जानकारी देने वाली विशेष संस्थाएँ (उदा० अधिकोष आदि) होती हैं उनसे यह जानकारी प्राप्त की जा सकती है। आदेश एकत्रित कर भेजने के साथ ही यात्री-विक्रेताओं का कार्य समाप्त नहीं होता, उन आदेशों की राशि रोकपाल (Cashier) के पास पहुँचने तक उनकी जिम्मेदारी समझी जानी चाहिये। विक्रेता का व्यापारियों के साथ वैयक्तिक संबंध होने के कारण दिल न दुखाते हुये उनसे राशि वसूल करने की कला वे भली-भाँति जानते हैं। बिना विक्रेता की सलाह के प्रत्यय प्रदान न किया जाय। केवल विक्रय-प्रतियोगिता के मोह में फँस कर या ईर्ष्या का शिकार बन व्यापारी की आर्थिक स्थिति न देखते हुये उद्धार वस्तुएँ न बेची जायँ। यदि बेची गयीं तो विक्रय-राशि अवश्य बढ़ेगी, पर रोक-राशि हाथ न आयेगी। व्यापारियों को यह बतला दिया जाय कि प्रमंजल की वस्तुएँ बनावट में अच्छी हैं और विशासित हैं इसलिये विक्रय-राशि (Turn Over) अधिक होगी, परिणाम स्वरूप उन्हें लाभ अधिक होगा।

यदि प्रत्यय राशि आने में हमेशा की अपेक्षा कुछ अधिक विलम्ब होने लगा तो तुरन्त तहकीकात की जाय। प्रारंभ में नम्रतापूर्वक माँग करनी चाहिये।

यदि उसका असर न हुआ तो नम्रतापूर्वक ही किन्तु लगातार माँग की जाय । प्रत्यय प्रदान करते समय सभी के लिये समान नीति अपनाई जाय । यदि पक्ष-पान-पूर्ण नीति अपनाकर कुछ व्यापारियों को अधिक सहूलियतें दी गईं तो अन्य व्यापारियों में असंतोष फैलेगा । हम असंतोष को दूर करने के लिये दी हुई अधिक सहूलियतें हटा देनी होंगी या अन्यो को वे सहूलियतें प्रदान करनी होंगी । दोनों ही मार्ग अच्छे नहीं हैं । सहूलियतें हटाने पर संबंधित व्यापारी नाराज हो जावेंगे और यदि अन्यो को उतनी ही सहूलियतें दी गईं तो सार्थ को आर्थिक हानि होने की संभावना होगी । अतः प्रत्यय के संबंध में दूरदृष्टिकोण में निर्णय करना चाहिये; तात्कालिक लाभ की ओर ध्यान देना अनुचित होगा ।

प्रश्न

१. विक्रय-प्रवर्तन की परिभाषा तैयार कीजिए और बतलाइए कि क्या 'विक्रय-प्रवर्तन' स्वतंत्र विभाग रखना जरूरी है ?

२. विक्रय-प्रवर्तन में संवेष्टन (Packages) का क्या महत्त्व है ? वे कब और किस प्रकार बदले जायें ?

३. अपने विक्रेता विक्रय-प्रवर्तन सुगमता के साथ कर सकें इस लिये कौन-कौनसी सुविधाएँ उन्हें सार्थ-द्वारा दी जानी चाहिये ?

४. 'विक्रय-प्रतिस्पर्धा का आयोजन बड़ी सावधानी से किया जाना चाहिये' हम कथन की चर्चा कीजिए । प्रतिस्पर्धा का महत्त्व बतला कर उसके मूल भूत सिद्धांतों को लिखिए ।

५. व्यापारी ग्राहकों की सेवा में प्रवाही-विक्रेता, परिचय-पत्र (Circular letters) और मासिक पत्र, वस्तु-प्रदर्शन तथा प्रत्यय किम प्रकार सहायक होते हैं ?

६. व्यापारी ग्राहकों की परिषद् (Conference) का क्या महत्त्व है ? वह कब बुलाई जानी चाहिये ?

७. टिप्पणियाँ लिखिए :—

(१) अनुसरण-पत्र (Follow-up-letters) (२) प्रपत्र-पत्र (Form Letters) (३) उपभोक्ताओं में प्रतिस्पर्धा (४) व्यापारी ग्राहकों में प्रतिस्पर्धा ।

८. आप 'हिन्द सायकिल निर्माण-प्रमंडल' के प्रवर्तक हैं यह समझ कर अपनी सार्थ की एक साल की प्रवर्तन-योजना तैयार कीजिए ।

विपणि-अन्वेषण (Market Research)

अन्वेषण या संशोधन शब्द का उच्चारण करते ही शास्त्रज्ञों ने यंत्रों, रसायनों और शीघ्रगामी आवागमन के साधनों के संबंध में जो आविष्कार किये हैं, वे हमारे सन्मुख उपस्थित होते हैं। विपणि-अन्वेषण शब्द बिल्कुल अटपटा लगता है। नवीन यंत्रों की सहायता से अपनी वस्तुएँ सस्ती, सुन्दर, उपयुक्त एवं मजबूत बनें यह इच्छा जितना महत्व रखती है, उतना ही महत्व अपनी वस्तुओं के लिये संसार में सर्वत्र विपणि हो यह बात भी रखती है। ग्राहक खोजना यह 'विपणि-अन्वेषण' का कार्य है। पश्चिमी उत्पादकों ने इस बात का महत्व ठीक से समझ लिया और उसे कार्यान्वित कर आज वे संसार-विपणि में सर्व-प्रमुख बन बैठे हैं। इसी कला के आधार पर केवल विपणि स्वामित्व ही नहीं बल्कि साम्राज्य भी उन्होंने प्राप्त किया। लेकिन हम भारतीय, जो अपनी प्राचीन कला एवं संस्कृति का दम भरते हैं, इस विपणि-अन्वेषण कला में सदा पिछड़े रहे। पश्चिमी-अन्वेषकों ने दुनिया के, और भारत के भी, हर देश में पहुँचकर वहाँ की सभी छोटी-मोटी विपणियों का सूक्ष्म अध्ययन किया। लोगों की आदतों, भावनाओं और विचारों का गहरा अध्ययन कर उन्होंने अपनी वस्तुओं को योग्य स्वरूप दिया। उदाहरण के लिए 'ताजमहल पेन्सिल' लीजिये। बवैरिया के पेन्सिल-उत्पादक यह जानते थे कि भारतीयों को ताजमहल अत्यंत प्रिय है, अतः उनके दिलों में यदि प्रवेश पाना हो तो पेन्सिल का 'ताजमहल' नाम रखना ही उचित होगा। जापान की साड़ियाँ भारत के देशांत में द्वितीय संसार-युद्ध तक भी अत्यंत प्रिय थीं। जापान के अन्वेषक देश-देश में पहुँच गये थे और गहन अन्वेषण कर वे डिजाइन के संबंध में अपने उत्पादकों का मार्ग दर्शन किया करते थे। बंग-भंग आंदोलन के पश्चात् (१९०६) भारतीय जनता की प्रवृत्ति स्वदेशी आंदोलन की ओर मुड़ी। परदेशी व्यापार-अन्वेषक इस भावना का भी अपने व्यापार के लिये उपयोग करने से बाज़ न आये। वे यह जानते थे कि अब भारतीय 'Made In India' की छाप लगी वस्तु ही पसंद करेंगे। यह तो संभव नहीं

या कि वे अपना वस्तुओं पर 'भारत में बना हुआ' (Made In India) की छाप लगा दें, तब उन्होंने नयी तरकीब ढूँढ निकाली और 'भारत जैसा बना हुआ' (Made as India) लिखना प्रारंभ किया। बेचारे अशिक्षित और अर्धशिक्षित भारतीय In और As के सूक्ष्म भेद को क्या जानें ? उन्होंने उन वस्तुओं को भी भारतीय समझ लिया। यहाँ तक कि जापानियों ने "भारतीय कपास से बना हुआ" (Made From Indian Cotton) लिख कर उन की स्वदेशी-प्रेम का भावनाओं का लाभ उठाया।

किसी जमाने में भारतीय वस्तुओं का उपयोग करना संसार के हर राष्ट्र में एक बड़प्पन की बात मानी जाती थी। भारतीय उत्पादक अत्यंत सतर्कता से भिन्न-भिन्न राष्ट्र की विपणि-रुचि का अध्ययन करते थे और उस प्रकार उत्पादन में परिवर्तन किया करते थे। किन्तु बाद में अपना यह सारा प्रभुत्व देख भारतीय अन्वेषण कार्य में तत्पर न रहे; परिवर्तित संसार-सार्य के अनुसार अपनी वस्तुओं का स्वरूप-परिवर्तन वे न कर सके। भारतीय उद्योगों एवं कलाओं का जिन अनेक कारणों से पतन हुआ, उन में 'विपणि-अन्वेषण' का अभाव प्रमुख कारण है।

विपणि-अन्वेषण की परिभाषा श्री सिमेट ने इस प्रकार की है : 'ग्राहकों को क्या चाहिये; किसी एक प्रकार की और कोई एक बोधचिन्हांकित वस्तु कितने ग्राहकों को और किस प्रमाण में चाहिये यह ज्ञात कर लेने का मार्ग और वह वस्तु अभियाचकों को योग्य रीति से कैसे पहुँचाई जा सकेगी इस का विचार ही विपणि-अन्वेषण है।' किन्तु यह परिभाषा पर्याप्त नहीं महसूस होती। इसमें विपणि-प्रतियोगिता-सीमा तथा उपभोक्ताओं की क्रय-शक्ति के अध्ययन का जग भी उल्लेख नहीं है। अतः हमारी राय में विपणि-अन्वेषण की निम्न परिभाषा सही होगी— 'अपनी वस्तु के लिये विपणि की व्यापकता, रुचि, प्रवृत्ति, विवरण-पद्धति और प्रतियोगिता-सीमा ज्ञात कर ग्राहकों की रुचि, क्रय-शक्ति, और भावनाओं आदि का खोजपूर्ण अध्ययन करना विपणि-अन्वेषण है।' सांगंश में यह कहा जा सकता है कि विपणि संबंधी पूर्ण जानकारी एकत्रित कर, उस का अध्ययन कर, निष्कर्ष निकालना विपणि-अन्वेषण है।

विपणि अन्वेषण का हेतु

ग्राहकों को परमोच्च संतोष जिन वस्तुओं से प्राप्त हो, ऐसी वस्तुएँ उन्हें प्रदान करना यह व्यापार का प्रमुख उद्देश्य है। ग्राहकों को क्या चाहिये यह

जानना, या उनको क्या चाहना चाहिये इसकी लालसा उनके मन में पैदा करना विपणि-अन्वेषण का मूल हेतु है। कई विज्ञापन इसलिये असफल होते हैं कि विज्ञापक विपणि-परिस्थिति के बारे में अनभिज्ञ होता है। उदाहरणार्थ यदि बस्तर या उड़ीसा के दरिद्री और पहाड़ी मुल्क में मोटर का विज्ञापन किया जाय तो उससे किसी प्रकार का लाभ न होगा। इस तरह विपणि संबंधी योग्य जानकारी न होने के कारण कई उत्पादकों का समय, श्रम और व्यय बर्बाद होता है। ग्राहकों के अभियाचन की पूर्ण कल्पना न रही तो योग्य वस्तुओं का योग्य स्थान में विक्रय नहीं होता। फलतः ग्राहकों में असंतोष फैलता है। युद्धकालीन कपड़ा-नियंत्रण-नीति की असफलता के कारण मे से विपणि संबंधी अनभिज्ञता भी एक कारण था। सारा कारोबार सरकारी अधिकारियों द्वारा चलता था, जिन्हें विपणि का स्वल्प मात्र भी ज्ञान नहीं था। देहातों में, जहाँ कि अक्सर लोग मोटा कपड़ा पहनते हैं, महीन कपड़ा पहुँच जाता था और महीनों दुकानों में पड़ा रहता था या शहरों के काले बाज़ार में पहुँच जाता था। उसी प्रकार शहरों में जहाँ महीन कपड़े की अधिक माँग थी, मोटा कपड़ा भेजा जाता था जिसका दुरुपयोग होता था। इस प्रकार की अनभिज्ञता के कारण विक्रय-वृद्धि हासिल नहीं की जा सकती और इस प्रतियोगिता के ज़माने में उत्पादक नष्टनिधि बन जाते हैं। इस व्यापारिक असफलता को उत्पादक विपणि-हानिभय (Market Risk) कहते हैं। परन्तु वास्तव में यह विपणि-हानिभय नहीं है, वह विपणि-भूल (Market Mistake) है जो विपणि-अन्वेषण की सहायता से टाली जा सकती है। यदि आवश्यक सावधानी के साथ विपणि-अन्वेषण किया जाय तो उसमें लगनेवाले समय, परिश्रम और व्यय की तुलना में वह विपणि-अन्वेषण अधिक लाभप्रद सिद्ध होगा। अनुभवों-द्वारा यह निष्कर्ष निकाला गया है कि विपणि-अन्वेषण द्वारा विपणि के बारे में प्राप्त होनेवाली विश्लेषणात्मक बातें विक्रय-वृद्धि के लिये अत्यंत महत्त्वपूर्ण होती हैं। अन्वेषण-द्वारा व्यापार की परिवर्तनशील प्रवृत्तियों को जाना जा सकता है और उनके प्रकाश में उत्पादक अपनी वस्तुएँ अद्यावत बना सकता है और वितरक वितरण-नीति तथा साधनों में आवश्यक परिवर्तन कर सकता है जिससे व्यर्थ का व्यय बचने के कारण लाभ राशि बढ़ती है और ग्राहकों को अधिक संतोष प्राप्त होता है। यदि पूरी अन्वेषण-साधन-सामग्री प्राप्त हो सकी तो सार्थ उचित निष्कर्ष ज़रूर निकाल सकती है, जिस से व्यापार हानि-भय कम किया जा सकता है। नूतन भूपाचार, ऋय-शक्ति, अवसाद, अभिवृद्धि,

सामाजिक प्रतिष्ठा आदि नित्य-परिवर्तन कारणों से ग्राहकों की रुचि और विचार हर क्षण परिवर्तित हुआ करते हैं। अतः किसी एक समय ग्राहकों के अभियाचन का क्या स्वरूप है यह जान लेना परमावश्यक होता है। उस स्वरूप का ज्ञान अन्वेषण-द्वारा प्राप्त कर उसकी पूर्ति करनेवाली वस्तुएँ यदि उत्पादक निर्माण कर सकता हो तो वह सफल उत्पादक होगा। यदि अन्वेषण का महत्त्व न जानकर मनमाना उत्पादन करने लगे तो व्यापार-हानिभय बढ़ जायगा। कम से कम मूल्य में उत्तम वस्तु प्राप्त हो इसके लिए ग्राहक प्रयत्न करते हैं; इसलिये वे वस्तु खरीदते समय अनेक उत्पादकों की वस्तुओं का तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करते हैं। इसके विपरीत अपनी वस्तुओं के विक्रय से शुद्ध लाभ अधिक हो इस दिशा में उत्पादक प्रयत्नशील होते हैं। इन दोनों दृष्टिकोणों का समन्वय कराने के लिये विपणि-अन्वेषक प्रयत्नशील रहता है। इसके लिये उत्तम उत्पादन और उत्तम-वितरण अवस्था की ज़रूरत होती है जिससे ग्राहकों को सर्वोच्च आनंद प्राप्त हो सके। इस प्रकार की आदर्श-अवस्था प्राप्त करना सर्वथा संभव नहीं होता; फिर भी उसके करीब पास की स्थिति हासिल करने का प्रयत्न करना चाहिये।

इस प्रकार सामान्य स्थिति एक बार हासिल करने के पश्चात् यदि उत्पादक अन्वेषण कार्य रोक देता है तो यह उसकी बड़ी भूल होगी। प्रतिक्षण नूतन आविष्कार, विचार, भूषाचार, रहन-सहन और मनोविकास का दर्शन होता रहता है। कल की 'कल्पना' आज की 'वास्तविक स्थिति' बन जाती है और कल का 'स्वप्न' परसों का 'यथार्थ' बन जाता है। अतः अन्वेषण कार्य रोक कर चुप बैठना गलती होगी। श्री. सी. एल. बोलिंग के मतानुसार "विपणि अन्वेषण एक विशेष अनुसंधान (Investigation) न होकर सतत चलने वाला अध्ययन (Study) होना चाहिये।" इस संबंध में मैचेंस्टर के सूती कपड़े का उदाहरण दिया जा सकता है। प्रारंभ में भारतीय जनता की माँगें और अभिरुचि का अन्वेषण कर वहाँ के उत्पादकों ने भारतीय ग्राहकों को सर्वोच्च संतोष प्रदान करने वाला वस्त्र भारत में भेजना प्रारंभ किया जिससे भारतीय विपणि पर उनका एकाधिकार (Monopoly) हो गया। इस स्थिति पर पहुँचने के पश्चात् उन्होंने अन्वेषण कार्य की ओर ठीक ध्यान नहीं दिया जिससे वे अपना एकाधिकार खो बैठे। वे भारत के ग्राहकों को उनकी मनपसंद धोतियाँ भेजते थे जिनका अर्ज ४४" से ४६" इंच होता था। किन्तु तत्पश्चात् भूषाचार परिवर्तित हुआ और भारतीय ग्राहक ५०" से ५४" इंच अर्ज की धोतियों की

मँग करने लगे। विपणि-अन्वेषण के अभाव में इस रुचि-परिवर्तन की खबर समय पर मैचेस्टर न पहुँच पायी और अन्य प्रतिस्पर्धियों ने विपणि पर अपना अधिकार जमा लिया। अतः उत्पादकों को विपणि-अन्वेषण कार्य लगातार करते रहना चाहिये जिससे वस्तुओं का स्वरूप नित्य नूतन, दीर्घकालीन और आकर्षक बना रहे। किसी एक समय सफलता प्राप्त होने पर ग्राहकों की प्रशंसा सुनकर बरसाती मेंढक की तरह फूलकर उत्पादकों में अजगर के समान आलसी न बन जायँ।

विपणि-अन्वेषण-क्षेत्र

जैसे कि पिछले अध्याय में बताया गया है, विपणि-अन्वेषण विभाग प्रायः 'प्रवर्तन विभाग' का एक हिस्सा समझा जाता है और प्रवर्तक की देखभाल में उसका कार्य चलता है। किन्तु कुछ उत्पादक 'विपणि अन्वेषण' का स्वतंत्र विभाग स्थापित करते हैं। इस प्रकार का स्वतंत्र विभाग स्थापित करना आवश्यक भी है; क्योंकि प्रवर्तन विभाग के कर्मचारियों के मन में कुछ स्थायी विचारधाराएँ होती हैं। किसी एक क्षेत्र, विपणि या ग्राहकों के बारे में वे पूर्वग्रह दूषित होते हैं और उनका अनुसंधान भी अनगिनत (Unbiased) नहीं हो सकता। यदि अन्वेषण-कार्य प्रवर्तन विभाग के कर्मचारियों द्वारा किया गया तो निष्कर्ष गलत होगा जिसके आधार पर उत्पादन-नीति को निर्धारित करना धोखे की बात होगी। अतः अन्य किसी विभाग से प्रभावित न होने वाले तज्ञ के मार्गदर्शन में इस विभाग का संचालन होना चाहिये।

विज्ञापन-विभाग का विपणि-अन्वेषण के साथ गहरा संबंध है। विज्ञापन कार्य की दिशा निर्धारित करना 'अन्वेषण' विभाग के अनेक कार्यों में से एक प्रमुख कार्य है। जिस वस्तु के संबंध में अन्वेषण करना हो, उसकी उपयोगिता, वितरण और प्रसिद्धि संबंधी उपलब्ध सब प्रकार के साधनों और प्रणालियों का विश्लेषणात्मक पद्धति से अध्ययन करना चाहिये।

विपणि अन्वेषण करने की आवश्यकता निम्न परिस्थितियों में निर्माण होती है :—

(क) नया वस्तु के लिये विपणि-अन्वेषण।

(ख) पुरानी वस्तु का विक्रय एकाएक कम हो जाने पर या वांछित प्रमाण में न बढ़ने पर।

(ग) पुगानी वस्तु में कुछ परिवर्तन कर उस परिवर्तित वस्तु का विक्रय बढ़ाने के लिये ।

नयी वस्तु उत्पादित करने के निम्न उद्देश्य हो सकते हैं :—

(अ) किसी खास माँग की पूर्ति करने के लिये—जैसे भारत में रेल-एन्जिनों की माँग है जिसकी पूर्ति के लिये टाटा आयरन अँड स्टील कम्पनी ने एंजिन बनाना प्रारंभ कर दिया ।

(आ) किसी माँग की भिन्न प्रकार से पूर्ति करने के लिये—उदा० लेखनी की माँग थी और कलम बनते भी थे किन्तु फॉन्टनपेन खोज कर उस माँग की पूर्ति भिन्न प्रकार से की गयी ।

(इ) नयी माँग निर्माण करने लिये नयी वस्तु—उदा० रेडियो प्रथम खोज निकाला और उसकी उपयुक्तता पर लुब्ध कर माँग बढ़ायी गयी ।

नूतन वस्तु के लिये विपणि-अन्वेषण अत्यंत महत्व रखता है । नयी वस्तु के निर्माण के लिये नये कीमती यंत्र मँगाने पड़ते हैं, बड़ी-बड़ी इमारतें बनानी पड़ती हैं । करोड़ों रुपयों की श्रम-शक्ति और गामक-शक्ति (Motive Power) का प्रबंध करना पड़ता है । प्रारंभिक विज्ञापन, प्रारंभिक व्यय और प्रवर्तन-कार्य पर भी बहुत बड़ी मात्रा में व्यय करना पड़ता है । इतना साग करने के पश्चात् वस्तु विपणि में सफल होनी चाहिये । नये उपक्रम (Enterprise) में एक ओर उपक्रमी संचालकों, प्रबंध संचालकों और प्रबंधकों की ख्याति दौव पर लगायी जाती है और दूसरी ओर पूँजीपतियों की पूँजी भी लगा दी जाती है । अतः इस दिशा में हर कदम फूँक-फूँक कर रखा जाय । यदि जग भी शिथिलता आयी या वस्तु में कोई वैज्ञानिक कमजोरी रह गयी तो उपक्रम पूर्णतया असफल होगा या बांछनीय प्रगति न कर सकेगा । द्वितीय महायुद्ध के समय कागज, सीमेंट रंग, साबुन और अन्य कई वस्तुओं के उपक्रम प्रारंभ किये गये थे । उनमें करोड़ों रुपयों का प्रारंभिक व्यय भी किया गया; किन्तु उसके पश्चात् वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि उनकी सफलता संभव नहीं थी और अन्त में वे उपक्रम बंद कर दिये गये । यदि प्रारंभ करने के पूर्व ही विपणि-अन्वेषण कर ठीक सोच-समझ लिया होता तो करोड़ों रुपयों की राष्ट्रीय क्षति नहीं होती । इस क्षति का बड़ा गंभीर परिणाम यह हुआ कि प्रारंभ से लज्जिली पूँजी और भी संकोच-पूर्ण बन गयी । भारतीय उपक्रमियों की ख्याति को बहुत बड़ी ठेस पहुँची ।

उपर्युक्त नूतन उपक्रम प्रारंभ करने के पूर्व विपणि-अन्वेषण द्वारा यदि निम्न बातों पर पूर्णतया सोच-विचार कर लिया होता तो उपक्रम बंद करने की नौबत नहीं आती ।

नूतन वस्तु के विपणि-अन्वेषण में सर्वप्रथम इस बात की ओर ध्यान दिया जाना चाहिये कि अपनी वस्तु के लिये विपणि में पर्याप्त माँग है या नहीं और यदि न हो तो पैदा की जा सकेगी या नहीं । यह भी सोच लेना होगा कि हमारे कौन-कौन प्रतिस्पर्धी हैं, उनसे किस प्रकार की टक्कर लेनी पड़ेगी और उस प्रतियोगिता में हम कहाँ तक सफल हो सकेंगे । अपनी वस्तु की दृष्टि से फिलहाल विपणि-परिस्थिति कैसी है और अवसाद तथा अभिवृद्धि आदि की कहाँ तक संभावना है इस का ज्ञान भी सामान्यतः जरूरी है । जनता की क्रय-शक्ति किस स्तर की है, भविष्य में उसमें क्या परिवर्तन होने की संभावना है और वर्तमान तथा परिवर्तित क्रय-शक्ति के अनुसार नूतन वस्तु का मूल्य योग्य होगा या नहीं इसका अंदाज भी प्रारंभ में ही कर लेना होगा । उपर्युक्त विवेचन वस्तु को प्रभावित करनेवाली परिस्थितियों के संबंध में है । अब वस्तु की बनावट आदि में भी कोई सामान्य खामी रह गई तो वह असफलता का कारण बन सकती है । वस्तु का रंग, आकार, नाम और संवेष्टन ये बातें लोकराशि और उपयोग की दृष्टि से योग्य होनी चाहिये । इसके अलावा वितरण का माध्यम तथा विज्ञापन पद्धति और समय इन बातों का गहन अध्ययन जरूरी है जिसके अभाव में सारा प्रयत्न, पूँजी और समय बर्बाद होगा ।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि विपणि अन्वेषण द्वारा नूतन वस्तु को किस प्रकार का रूप दिया जाय, संभाव्य प्रमाद से किस प्रकार बचाया जाय, उसका वितरण माध्यम कौनसा हो, विक्रय किस समय किया जाय, और प्रतिस्पर्धियों को मात करने के लिये किस मार्ग का अवलंबन करना होगा आदि बातें जानी जा सकती हैं । इसके अतिरिक्त उसके द्वारा यह भी ज्ञात किया जा सकता है कि संभाव्य विपणि-क्षेत्र कौनसा होगा, वस्तु को लोकप्रिय कितने समय में बनाया जा सकेगा, वस्तु की उपयोगिता कब तक बनी रहेगी, और उसमें नूतनता लाने के लिये परिवर्तन कब आवश्यक होगा ।

किसी भी नूतन वस्तु का विपणि-अन्वेषण सार्थ की आर्थिक परिस्थिति, सार्थ को उपलब्ध कर्मचारी तथा वस्तु का स्वरूप आदि बातों पर निर्भर होगा । विपणि-अन्वेषण के लिये नपे-तुले नियम बतलाये नहीं जा सकते, फिर भी

मार्ग-दर्शन के नाते निम्न प्रणाली, समयानुसार परिवर्तित कर, कार्यान्वित की जा सकता है।

विपणि-अन्वेषण कार्य को निम्न विभागों में विभाजित किया जायः—

१. वस्तु का अध्ययन।
२. विपणि का अध्ययन।
३. ग्राहकों का अध्ययन।
४. वितरण-मार्ग का अध्ययन।
५. स्पर्धा का अध्ययन।
६. विज्ञापन का अध्ययन।

१. वस्तु का अध्ययन

विपणि-अन्वेषण में वस्तु का अध्ययन अत्यंत महत्व रखता है, क्योंकि वस्तु वह केन्द्रीय-बिन्दु है जिसके चारों ओर अन्वेषण कार्य परिक्रमा करता है। वस्तु का अध्ययन प्रश्नावली की सहायता से किया जा सकता है। नूतन वस्तु की प्रश्नावली के लिये हम फाँटनपेन की स्याही का उदाहरण लेकर एक प्रश्नावली तैयार करेंगे। मान लीजिये उस स्याही का नाम 'अभिव्यंजना' स्याही रखा गया। यह वस्तु ग्राहकों को कहाँ तक पसंद आई यह जानने के लिये निम्न प्रकार की प्रश्नावली बनाई जा सकती है।

प्रश्नावली

बाह्य अनुसंधान

१. क्या स्याही का नाम आप को पसंद आया ? क्या आप उसमें उच्चारण-माधुर्य पाते हैं ?
२. क्या बोतल का आकार सुझाव देता है ?
३. क्या बोध-चिन्ह सुसंगति व्यक्त करता है ?
४. ऊपर के पृष्ठ के डिब्बे, उसके ऊपर लिखी सूचनाओं और पद्धति के बारे में आपकी क्या राय है ?
५. क्या बोतल का ढक्कन मजबूत, योग्य और पक्का बैठनेवाला है ?
६. क्या बोतल की चूड़ियाँ और बैठक ठीक है ?

अन्तर्गुणसंधान

७. स्याही का रंग लेखन-कार्य के लिये कहाँ तक उपयुक्त है ?
८. क्या स्याही का प्रवाह ठीक आता है ?

९. स्याही कागज़ पर फैलती तो नहीं है ?
१०. लिखने पर क्या वह तुरन्त सूख जाती है ?
११. निब की नौक के पास स्याही जम तो नहीं जाती ?
१२. स्याही की दुर्गन्ध तो नहीं आती ?
१३. यदि स्याही का धब्बा कपड़े पर गिर जाय तो वह ठीक साफ होता है न ?
१४. स्याही से लिखे हुए मज़मून प्रकाश, धूप आदि से निष्प्रभ तो नहीं होते ?
१५. स्याही ज्यादा दिन बोतल में पड़ी रहने से खराब तो नहीं होती ?

तुलनात्मक प्रश्न

१६. पार्कर किंक स्याही को यदि सौ अंक दिये जायें तो इस स्याही को आप कितने अंक देंगे ?
१७. अन्य स्याहियों की तुलना में आप इसका मूल्य कहाँ तक उचित समझते हैं ?
१८. क्या उपर्युक्त प्रश्नों के अलावा कोई और प्रश्न स्याही के संबंध में आप के मन में उठते हैं ?

प्रश्नों का स्वरूप

प्रश्नों का स्वरूप किस प्रकार का हो यह वस्तु के और परिस्थिति के स्वरूप पर अवलंबित रहेगा । फिर भी निम्न सामान्य नियम मार्गदर्शन के नाते उपयोगी हो सकते हैं :—

१. प्रश्नों की संख्या अनावश्यक तथा अत्यधिक नहीं होनी चाहिये, अन्यथा उत्तर देनेवाला उकताकर कार्य को अधूरा ही छोड़ देगा ।

२. प्रश्नों की संख्या अतिक्रुपण (कम) नहीं होनी चाहिये, अन्यथा जिस उद्देश्य से प्रभावली तैयार की गयी है, उस संबंध में परिपूर्ण जानकारी प्राप्त न हो सकेगी ।

३. प्रश्न इसी प्रकार के हों, जिनका उत्तर अति संक्षिप्त, एक वाक्य में और संभवतः 'हाँ' या 'नहीं' शब्दों-द्वारा ही दिया जा सके ।

४. प्रश्नों की भाषा सरल एवं स्पष्ट होनी चाहिये ।

प्रश्नावली किन्हें और किस मार्ग से भेजी जाय

प्रश्नावली भेजने के प्रमुख तीन मार्ग हैं ।

१. प्रथम प्रकार में, विज्ञापन-द्वारा समाचार-पत्रों में प्रकाशित कर दी जाती है और ग्राहकों से अनुरोध किया जाता है कि प्रश्नावली के उत्तर सार्थ के पास भेज दिए जायें । इनमें से जिन आठ-दस सज्जनों के उत्तर अत्युत्तम निर्धारित किये जावेंगे उन्हें पारितोषिक दिया जाता है । किन्तु यह योजना दोषपूर्ण है क्योंकि कई लोग केवल पारितोषिक के मोहसे, उस वस्तुके ग्राहक न होते हुए भी, प्रश्नों के उत्तर भेज देंगे और फलतः उनमें से अधिकांश उत्तर केवल कल्पना के आधार पर होंगे, सत्य नहीं ।

२. प्रेष-द्वारा प्रश्नावली अपने ग्राहकों के पास भेज कर उनकी राय माँगने का दूसरा मार्ग है । उपर्युक्त प्रश्नावली की स्थायी का उदाहरण ही यदि लेना हो तो विद्यालय-महाविद्यालयों के विद्यार्थी, वकील, डाक्टर, लिपिक (क्लर्क), सरकारी कर्मचारी आदि सज्जनों के पास प्रश्नावली प्रेषालय द्वारा भेजनी होगी । इस प्रणाली में भी दोष हैं । प्रेषालय-द्वारा भेजी गयीं प्रश्नावलियों के उत्तर प्रायः आते ही नहीं और यदि आ भी जायें तो वे उन सज्जनों-द्वारा लिखे जाते हैं जो, निरुद्योगी हों । अतः सच्चे उपभोक्ताओं के मत उसमें व्यक्त नहीं हो पाते ।

३. अपने प्रतिनिधियों को प्रश्नावली के साथ ग्राहकों के पास भेजकर उनके मार्फत उत्तर माँगवाना तीसरा मार्ग है । मार्ग अत्यन्त उपयुक्त होते हुये भी बड़ा खर्चीला है और इसमें समय भी अत्यधिक लगता है । ग्राहकों की मुलाकात होना और होने पर भी उनकी मनःस्थिति प्रश्नोत्तरों के लिये प्रसन्नावस्था में होना बड़ा जटिल सुयोग है । विशेषतः यदि घरेलू वस्तुओं के संबन्ध में जानकारी प्राप्त करानी हो तो वह ग्रहिणी के पास से ही मिल सकती है और उन के फुर्सत का समय खोजना तथा उनकी लज्जाशील और संकोचपूर्ण वाणी से जानकारी प्राप्त करना तो जटिलतम कार्य है । अतः कुछ दूसरे और कुछ तीसरे मार्ग से प्रश्नोत्तर एकत्रित कर उनका अनुमेलन करना चाहिये और दोनों में विशेष अन्तर न देखे तो प्रेष-द्वारा आये हुए अनेक प्रश्नोत्तरों के आधार पर अपनी समस्या का विश्लेषण करना चाहिये । दैव-निदर्शन-पद्धति (Atrandom System) से अनेक उपभोक्ताओं के पास प्रश्नावली भेजने की अपेक्षा चुने हुये प्रतिनिधिक ग्राहकों के पास, जिनके उत्तरों पर पूर्ण भरोसा किया जा सकता है, भेजना अधिक बुद्धिमानी होगी ।

कुछ वस्तुएँ ऐसी होती हैं जिनके बारे में उपभोक्ताओं की अपेक्षा वितरकों और व्यापारियों की राय अधिक महत्व रखती है। ग्राहक को कोई एक वस्तु बहुत ही पसंद आती है, फिर भी पसंदगी के कारण को या तो वह सोचता नहीं है या उसे वह व्यक्त नहीं कर सकता। ऐसी हालत में कुशल वितरक ही प्रभों के उत्तर दे सकते हैं। अतः प्रभावली वितरकों एवं व्यापारियों के पास भेजना ही अच्छा होगा। कभी-कभी भावना के निर्णय और बुद्धि के निर्णय में काफी अंतर पड़ता है। इस संबंध में श्री सी. एल. बोलींग ने बहुत ही मार्के का उदाहरण दिया है। आप का कहना है कि मानों कोई मोटर का उत्पादक ग्राहकों से यह प्रश्न पूछता है कि क्या वे ऐसा प्रारंभिक परिवर्तन चाहेंगे जिससे मोटर की गति तो बढ़ जाय पर उसके दृश्य की शोभा थोड़ी घट जाय। इस प्रश्न के उत्तर में निश्चित रूप से “हाँ” उत्तर ही ग्राहकों से प्राप्त होगा। किन्तु यदि यह उत्तर विक्रेता के पास अनुमति के लिये भेजा गया तो वह तुरन्त कह देगा कि प्रारंभिक परिवर्तन, जैसे कि ग्राहक कहते हैं, लोक-रुचि की दृष्टि से अनुपयुक्त सिद्ध होगा; कारण मोटर खरीद करने वाले गति की अपेक्षा आकार और शोभा से अधिक प्रभावित होते हैं।

यदि किसी तांत्रिक प्रश्न या परिवर्तन संबंधी जानकारी पूछनी हो तो उस कार्य में उपभोक्ता और वितरक भी सहायता नहीं कर पायेंगे। ऐसे समय पर प्रभावली उस विभाग के तज्ञों के पास ही भेजनी होगी। यदि लाय-वस्तु के या दवाई के बारे में जानकारी हासिल करनी हो तो उपभोक्ताओं तथा मरीजों के पास प्रभावली भेजना व्यर्थ है; क्योंकि वे तो उन वस्तुओं का उपभोग केवल डॉक्टर की सलाह के अनुसार करते हैं, अपनी बुद्धि के अनुसार नहीं। अतः डॉक्टर ही योग्य व्यक्ति होंगे जिनके पास इस वस्तु की प्रभावली भेजी जानी चाहिये।

२. विपणि का अध्ययन

नूतन वस्तु के विपणि-अन्वेषण में विपणि की परिस्थिति का ज्ञान बहुत महत्व रखता है। अवसाद-काल में किसी नयी महींगी वस्तु को लोकप्रिय बनाने का प्रयास कठिन होगा। ऐसे समय उस वस्तु का सस्ता स्वरूप विपणि में रखा जाय और योग्य परिस्थिति (अभिवृद्धि-काल) प्राप्त होते ही उस स्वरूप को महींगे किन्तु स्थायु (Durable) स्वरूप में परिवर्तित कर दिया जाय। अवसाद-काल में द्रव्य का महत्व अधिक होता है और अभिवृद्धि-काल में वस्तु के गुणों का।

वस्तु की विपणि स्वदेश और विदेश में भी हो तो अन्वेषण का क्षेत्र विदेश तक भी होगा और प्रवेश्य (Import) तथा निष्क्राम्य (Export) स्थिति का अवलोकन उस समय ज़रूरी हो जायगा। विदेशी-विपणि का अध्ययन करते समय स्वदेशीय सरकार की उस संबंध में क्या नीति है, इस बात को ध्यान में रखना होगा। परदेशीय व्यापारियों के साथ अपने देश के संबंध किस प्रकार के हैं, किसी प्रकार का औद्योगिक-समझौता (Trade Pact) हुआ है और सामान्य-प्रशुल्क-नीति (Tariff Policy) किस प्रकार की है इत्यादि बातों का गहन अध्ययन ज़रूरी होगा। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व जापान के वस्त्र उद्योगपतियों ने विपणि-अन्वेषण करते समय उपर्युक्त सब बातों का अध्ययन किया था; इसीलिए वे उद्योग-समझौते (Trade Pact) से पूर्ण लाभ उठा सके।

३. ग्राहकों का अध्ययन

ग्राहक आजकल काफी सतर्क हो गये हैं। वे कई विक्रय-शालाओं में मूल्य और वस्तु के गुणों की तुलना किये बिना खरीदी का निर्णय नहीं करते। उनका प्रयत्न रहता है कि किये गये व्यय में पूर्ण प्रतिफल प्राप्त हो, जो उचित भी है। ऐसे समय पर व्यापार-शास्त्र की सच्ची कसौटी होती है। किसी निश्चित समय पर, निश्चित स्थान पर निश्चित प्रमाण में, निश्चित मूल्य में और अद्यावत गुणों से परिपूर्ण रूप में ग्राहकों को वस्तु देना यह आसान कार्य नहीं है; कला-पूर्ण 'लक्ष्य-भेद' है। अतः उत्पादक को बड़ी कुशलता पूर्वक जन-संख्या, रहन-सहन, समाज-रचना, कथ-शक्ति, और विचारवृत्ति आदि बातों का सूक्ष्म अध्ययन करना चाहिये जिससे यह स्पष्ट रूप से शांत हो जाय कि अपनी वस्तु के लिये सकल अभियाचन (Total Demand) कितना हो सकता है। इसका अंदाज़ आर्थिक दृष्टिसे महत्त्व रखता है, क्योंकि वह माँग की तुलना में कम या अधिक उत्पादन के बोखे से बचाता है। इसका अध्ययन निम्न प्रकार करना चाहिये :

(अ) आयु

वास्तव में सर्व-साधारण के लिए उपयोगी वस्तुओं के संबंध में आयु की मर्यादा का कोई विशेष महत्त्व नहीं होता; क्योंकि वे चीजें बच्चों से लेकर बूढ़ों तक सभी के उपयोग की होती हैं। फिर भी कुछ चीजें ऐसी होती हैं जिन का उपयोग किसी खास आयु-मर्यादा में ही होता है। उदाहरण के लिये खिलौने यदि लिये जायें तो जन-संख्या की तुलना में बच्चों का प्रमाण ढूँढ निकालना

अनिवार्य होगा। हज़ामत के साधन के लिये अन्वेषण करना हो तो १३ वर्ष के ऊपर कितने पुरुष हैं यह ज्ञात करना होगा। घूमते समय उपयोग में आनेवाली लकड़ी के लिये वृद्धों की संख्या का अध्ययन अनिवार्य होगा। उसी प्रकार ऐनक, इयर-गिज़, स्नो-पाऊडर, कया-साहित्य, आध्यात्मिक ग्रंथ आदि वस्तुओं के भिन्न-भिन्न आयु मर्यादावालों की जनसंख्या जान लेना ज़रूरी होगा।

(आ) विवाहित-अविवाहित

जन-संख्या में विवाहितों और अविवाहितों का बयां प्रमाण है यह जानने पर ही अपनी वस्तु के लिये कितना व्यापक क्षेत्र है, इसका अंदाज़ लगाया जा सकता है। कुछ ऐसी वस्तुएँ होती हैं—संतति-प्रतिबंधक साधन, प्रसूति साधन और दवाइयाँ, बच्चों के लिये झूले—जो विवाहितों के लिये ही उपयुक्त होते हैं और अपनी वस्तु यदि उनमें से है तो उनका प्रमाण ज्ञात करना ही विपणि-अन्वेषण का प्रमुख कार्य हो सकता है। अविवाहित स्त्री-पुरुषों के योग्य यदि उत्पन्न दक की वस्तुएँ हैं तो अविवाहितों का प्रमाण जानना लाभकारी होगा। विपणि क्षेत्र के किस समाज में किस उम्र को विवाह योग्य आयु मानते हैं और साधारणतः प्रतिवर्ष कितने विवाह होते हैं, इसका अध्ययन भविष्य में अभियाचन के उच्चावचन (Fluctuation) की ओर संकेत करेगा।

(३) सामाजिक प्रतिष्ठा और क्रय-शक्ति

अपनी वस्तुओं की विपणि किस स्तर के लोगों के लिये है यह जान लेना चाहिये। यदि ग्राहक धनिक होंगे, तो वस्तु महँगी हो तो भी हर्ज़ नहीं, पर वह अत्याकर्षक, अत्यंत कोमल और वैभव-दिग्दर्शक होनी चाहिये। यदि गरीब ग्राहकों के लिये आवश्यक हो तो थोड़ी ऊबड़-खाबड़ हो तो भी चलेगी, किन्तु वह सस्ती और इस प्रकार मज़बूत हो कि उसके वर्षा-धूप-वायु से असुरक्षित घर में भी वह अविकृत स्वरूप में रह सके। वह उठाने रखने में फूटनेवाली न हो।

(ई) भौगोलिक परिस्थिति

भौगोलिक परिस्थिति का वस्तु की माँग पर काफी प्रभाव पड़ता है, अतः नूतन वस्तु के लिये कौन से प्रदेश की विपणि अधिक उपयुक्त होगी यह जान लेना चाहिये और इसके अनुसार ही विज्ञापन करना चाहिये। ठंडे मुल्क में शराब के लिये योग्य विपणि होगी, इसके विपरीत उष्ण प्रदेश में वह वस्तु हानिप्रद मानी जायगी, वहाँ पर शीत पेय के लिये अधिक माँग होगी। मरु-भूमि में

लोग भटकते रहते हैं अतः उनके मकानों के लिये तम्बू आवश्यक होंगे, उपजाऊ भूमि में पक्के मकान लगेंगे और भूचल प्रदेशों में पृष्ठों एवं बाँस के मकान बनेंगे। इसी प्रकार पोशाक, भोजन, मनोरंजन के साधन, आवागमन के साधन आदि सभी वस्तुओं पर भौगोलिक परिस्थिति का अत्यधिक प्रभाव पड़ेगा।

(उ) व्यवसाय

व्यवसाय का विपणि पर दो प्रकार से परिणाम होता है—व्यवसाय के अनुसार वहाँ के लोगों के व्यवसाय-साधन बदलते हैं और साथ ही साथ व्यवसाय के अनुसार लोगों की क्रय-शक्ति भी परिवर्तित होती है। लघुनुमाप (Small Scale) उद्योग करने वाले उपभोक्ताओं को छोटे-छोटे साधनों की जरूरत होगी, इसके विपरीत महानुमाप (Large Scale) उद्योग करने वाले उपभोक्ताओं की माँग बड़े-बड़े यंत्रों के लिये होगी। भारतीय किसान के लिये किलोस्कर लोह-इल पर्याप्त है, तो अमेरिका के किसान का कार्य सिवा ट्रैक्टर के नहीं चल सकता। डेन्मार्क में गव्य-शालाओं के साधन ज़रूरी हैं तो सिलोन में रबड़ का दूध एकत्रित करने के।

उसी प्रकार भिन्न व्यवसायियों की भिन्न क्रय-शक्ति होगी। निर्माणी-प्रधान देशों में धनिक उपभोक्ता होंगे, उनकी आवश्यकताएँ भी अधिक कीमती वस्तुओं की होगी। इसके विपरीत कृषि-प्रधान और पिछड़े हुये देशों में उपभोक्ता-क्रय-शक्ति कम होगी। अतः इन सब बातों का सविस्तर अध्ययन विपणि-अन्वेषण में करना चाहिये।

(ऊ) स्त्री-पुरुष

कुछ वस्तुएँ केवल स्त्रियों के उपयोग की होती हैं—उदा० साड़ियाँ, लिपस्टिक, आभूषण—कुछ केवल पुरुषों के ही काम आती हैं—उदा० धोती, धूम्रपान वस्तु, हजामत का साधन—। अतः स्त्री-पुरुषों का अनुपात जान कर ही अपनी वस्तु की माँग का अंदाज़ करना चाहिये।

(ए) आदतें, रूढ़ियाँ और रिवाज आदि

कई वस्तुओं का क्रय सामाजिक और वैयक्तिक आदतों, रूढ़ियों और रिवाजों पर निर्भर होता है। हिन्दू धर्म में काला रंग अशुभ माना जाता है, तो चीनियों में सफेद। कुछ विभाग के लोग धनिक होते हुये भी बड़े कंजूस होते हैं। इस के विपरीत कुछ फिजूल खर्ची होते हैं, जहाँ पर ग्राहकों की क्रय-शक्ति कम होते हुये भी विक्रय अधिक होगा। किसी समाज में आभूषण पर अधिक खर्च होता

है, अन्य समाज में आभूषणों की अपेक्षा मंथों और शिक्षा-साधनों पर अधिक खर्च होता है। उपर्युक्त प्रवृत्तियों का अध्ययन 'अन्वेषण' में विशेष स्थान रखता है।

४. वितरण मार्ग का अध्ययन

वस्तु-वितरण के लिये कौनसा माध्यम उपयुक्त होगा यह विपणि-अन्वेषण द्वारा निश्चित कर लेना अत्यंत जरूरी है और समय-समय पर वितरण नीति का पुनरावलोकन कर आवश्यक परिवर्तन कर लिया जाय। वितरण के कई माध्यम हैं जिनमें एकल-अभिकर्ता प्रणाली, बहुशो-विक्रेता प्रणाली, सीधे-अल्पशो-विक्रेता प्रणाली, उत्पादकों की-बहुविक्रय-शाला-प्रणाली और प्रेषादेश-व्यापार प्रणाली प्रमुख हैं। उपर्युक्त प्रणालियों में से कौन-सी प्रणाली अत्युपयुक्त होगी यह अन्वेषण-द्वारा निश्चित कर लेना चाहिये। यदि उत्पादक भिन्न-भिन्न प्रकार की वस्तु निर्माण करता हो तो हर वस्तु के वितरण के लिये उपर्युक्त में से वह भिन्न-भिन्न प्रणालियों का उपयोग कर सकता है। यदि उत्पादक की आर्थिक स्थिति मजबूत न हो, तो उसे बहुशो-विक्रेता के जरिए ही विपणि में प्रवेश पाना चाहिये ताकि समय-समय पर उसे बहुशो-विक्रेता द्वारा पर्याप्त पूँजी प्राप्त हो सके। यदि वस्तु बिल्कुल नयी हो और उसके लिये नयी माँग पैदा करनी पड़ती हो तो बहुशो-विक्रेता संभवतः हानिभय की जिम्मेवारी उठाना स्वीकार नहीं करेंगे। उस समय उत्पादक को अपनी शाखायें या बहुविक्रय-शालाएँ प्रस्थापित कर वितरण कार्य, कम से कम वस्तु लोकप्रिय होने तक, स्वयं करना पड़ेगा। यदि वस्तु के लिये विपणि किसी एक क्षेत्र में ही संगठित हो तो भी उत्पादक-बहुविक्रय-शाला प्रणाली उपयुक्त हो सकती है। किन्तु विपणि असंगठित हो तो सीधे अल्पशो-विक्रेताओं के द्वारा विपणि में प्रवेश पाना अधिक लाभकारी होगा। यदि ग्राहक कई देहातों में हों, जहाँ वस्तु की माँग की प्रति ग्राहक तादाद कम हो तो प्रेषादेश-व्यापार प्रणाली से ही कार्य करना होगा। उदाहरण के बतौर यह कहा जा सकता है कि वस्तु-वितरण के लिये बहुशो-विक्रेता-प्रणाली, भूषाचारी वस्तुओं के लिये अल्पशो-विक्रेता प्रणाली, विलास वस्तु (जैसे रेडियो, फिल्म) के लिये एकल अभिकर्तृत्व प्रणाली और घड़ियों, केमरा, दवाइयाँ आदि वस्तु देहात में वितरित करने के लिये प्रेषादेश-व्यापार-प्रणाली योग्य होंगी।

वितरण-माध्यम निश्चित करते समय संचार-साधनों (Means of Communications) का विचार करना आवश्यक होगा। मानिये कि किसी उत्पादक ने

किसी एक विभाग में अपनी वस्तुएँ वितरित करने लिये 'प्रेषादेश व्यापार-प्रणाली' निर्धारित की; किन्तु बाद में यह पता चला कि उस विभाग में प्रेषालय का कारोबार अत्यंत शिथिल एवं बेढंगा है। ऐसे समय पर वह नीति असफल होगी। उपलब्ध संचार-साधनों का अध्ययन कर उसमें से सबसे कम खर्चीला, शीघ्र और सुरक्षित साधन चुनना चाहिये। यदि इस चुनाव में गलती हुई तो समय पर वस्तुएँ न पहुँच पावेंगी जिससे वितरकों में असंतोष फैलेगा और अपने प्रतिस्पर्धियों की वस्तुएँ अधिक शीघ्रता से वहाँ पहुँच रही हों तो वे वितरक अपने प्रतिस्पर्धियों से ही संबंध रखना उचित समझेंगे। विलम्ब के कारण ग्राहकों की माँग की उचित समय पर पूर्ति न होगी और उन्हें संतोष, जो व्यापार का अन्तिम ध्येय है, प्राप्त न होने के कारण उस वस्तु का व्यवहार वे त्याग देंगे। परिणामतः सार्थ को बहुत बड़ी आर्थिक हानि होगी। यदि उत्पादक समय पर वस्तुएँ भेजता है तो वितरकों को उसका अधिक स्तंभ रखने की ज़रूरत न होगी, जिससे वह कम पूँजी में व्यापार कर सकेगा और संग्रह-व्यय तथा हानिभय (Storage expenses and risk) से वह मुक्त रहेगा। परिणामतः वस्तु का मूल्य कम किया जा सकेगा जिस से एक ओर ग्राहकों के संतोष में वृद्धि होगी और दूसरी ओर विक्रय राशि बढ़ने के कारण उत्पादक को भी आर्थिक लाभ होगा। भूषाचार काफी शीघ्रता से परिवर्तित हुआ करते हैं। उत्पादक की वस्तुएँ विपणि में विलम्ब से पहुँची तो संभवतः वे अद्यावत न रह पायेंगी और वितरकों के लिये वह मृतस्तंभ (Dead Stock) बन जायगा। वितरण के संचार-साधन कम खर्चीले होने चाहिये, किन्तु कम खर्चीलेपन के साथ-साथ वे सुरक्षित भी हो और शीघ्र भी। सुरक्षितता भी अपना निजी महत्व रखती है, जिसके अभाव में टूट-फूट, चोरी, अपघात आदि हानियों का डर होगा।

५. स्पर्धा का अध्ययन

व्यापार क्षेत्र में जीवित रह प्रगति करने के लिये भयंकर संघर्ष करना पड़ता है; इस संघर्ष में जो योग्य होगा वही पनपेगा। अतः अपनी वस्तुओं को विपणि में जीवित रख प्रगतिशील, दीर्घायु बनाना हो तो प्रतिस्पर्धियों के साथ टक्कर लेनी होगी। ग्राहकों की दया पर उत्पादक नहीं जी सकता, उसे अपनी योग्यता पर निर्भर रहना होगा। इसलिये अपने प्रतिस्पर्धियों के कार्यों का सूक्ष्मतम अध्ययन विपणि-अन्वेषण द्वारा करना ज़रूरी है। प्रतिस्पर्धी वितरकों को अपहार, अभिदेय, प्रत्यय और बहुशो मूल्य आदि संबंधी किस प्रकार की सुविधायें प्रदान

कर रहा है यह जान लेना ज़रूरी है। यह जानकारी स्वयं उत्पादक या विक्रय-प्रवर्तक वितरकों की मुलाकातें लेकर हासिल करे। विक्रेताओं-द्वारा इस प्रकार की महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त करना उचित न होगा; क्योंकि वितरक विक्रेताओं को योग्य महत्व नहीं देंगे। सुविधाओं के संबंध में यदि कुछ प्रस्थापित व्यापार रूढ़ियाँ हों और उन्हें कोई उत्पादक अनावश्यक या अनुचित समझकर उनमें परिवर्तन करना चाहता हो तो उसके सारे परिणामों को सोचकर ही उसमें हस्तक्षेप करना चाहिये। अन्यथा व्यापारियों के संबंध आंदोलित हो जाने से उत्पादक का विक्रय बंद हो जायगा। अतः ऐसे उपयुक्त परिवर्तन भी अपने प्रतिस्पर्धियों का सहयोग लेकर और वितरकों को ठीक रूप से समझाकर ही करने चाहिये।

अल्पशो-विक्रेताओं की मुलाकातें लेकर यह ज्ञात करना चाहिये कि वे किन-किन उत्पादकों की और कौन-कौनसी बोध-चिन्हांकित वस्तुएँ बेचते हैं। उन्हीं वस्तुओं का क्रय क्यों कर रहे हैं, इसके कारण भी ज्ञात किए जायँ और उसके पश्चात् अपनी वस्तु की विशेषतायें बतलाते हुए तुलनात्मक दृष्टि से वह अधिक लाभकारी कैसे हो सकती है यह प्रतिपादित कर उसका विक्रय करने का उन्हें अनुरोध किया जाय।

इसके अलावा उपभोक्ताओं की मुलाकातें लेकर वे किस उत्पादक की और बोध-चिन्हों की वस्तुएँ खरीदते हैं यह ज्ञात कर उन्हीं बोध-चिन्हों की ओर वे क्यों आकृष्ट होते हैं इसका कारण खोज निकालना चाहिये। उनके दूकानदार उन्हें किस वस्तु की सिफारिश करते हैं यह पूछकर, उसी समय तुलना में अपनी वस्तु उससे अधिक उपयुक्त है यह समझाना चाहिये। इस प्रकार के अध्ययन-द्वारा उत्पादक अपने प्रतिस्पर्धियों की विशेषताएँ और कमजोरियाँ ज्ञात कर सकता है। इस अध्ययन के प्रकाश में उत्पादन और वितरण नीति निर्धारित की जानी चाहिये।

६. बिज्ञापन का अध्ययन

उपर्युक्त सारे अध्ययनों के पश्चात् अपनी वस्तु के प्रचार के लिये कौनसे बिज्ञापन माध्यम उपयुक्त हो सकते हैं इसका निष्कर्ष उत्पादक निकाल सकेगा। उसी वस्तु के अन्य उत्पादक जिन माध्यमों का उपयोग कर रहे होंगे, उनका अध्ययन भी मार्गदर्शन के लिये किया जा सकता है।

पुरानी वस्तु की माँग घट जाने पर या आवश्यक प्रमाण में न बढ़ने पर उसके लिये विपणि-अन्वेषण आवश्यक हो जाता है। कई दिनों तक वस्तु प्रचार

में होते हुए भी उसके संबंध में ग्राहक और वितरकों की क्या राय है और विपणि परिस्थिति किस प्रकार है इसकी जानकारी प्राप्त न होने के कारण भी अन्वेषण आवश्यक रहता है। वस्तु की माँग मुख्यतः प्रचार-साधनों की कमजोरी या विपणि की अवसाद-अवस्था के कारण घट सकती है। अतः वे कारण किस प्रमाण में पाये जाते हैं और उन्हें हटाने के लिये कौन-कौन से प्रयत्न ज़रूरी हैं यह विपणि-अन्वेषण द्वारा ज्ञात किया जाना चाहिये। अन्वेषण की कार्य-प्रणाली नूतन वस्तु के अन्वेषण कार्य-प्रणाली के अनुसार ही रहेगी। केवल परिस्थिति और हेतु को ध्यान में रखते हुये उसमें आवश्यक परिवर्तन कर देना ज़रूरी होगा।

कभी कभी पुरानी वस्तुओं का स्वरूप विपणि की दृष्टि से परिवर्तन के योग्य हो जाता है। इस प्रकार का परिवर्तन कहाँ तक उचित-अनुचित सिद्ध होगा इसका अंदाज़ लगाने के लिये विपणि-अन्वेषण बहुत ही सहायक होता है। भूषाचार परिवर्तन, आकर्षण वृद्धि, बहुप्रयोजनता और मूल्य में कमी आदि कारणों से पुरानी वस्तु में परिवर्तन ज़रूरी हो जाता है। अतः तत्कालीन भूषाचार, लोक-रुचि, उपयोग-इच्छा आदि बातें जान लेना चाहिये। उसी प्रकार किसी एक वस्तु में थोड़ा-सा परिवर्तन कर उसे बहुप्रयोजन के उपयुक्त बनाना भी अपने प्रतिस्पर्धी का सामना करने में सहायक होता है (जैसे चाकू में ही कार्क निकालने का स्क्रू और काँटा निकालने की सुई जोड़ देना)। अतः उस दृष्टि से अन्वेषण कर वस्तु अद्यावत बनानी चाहिये। यह अन्वेषण भी, परिस्थिति के अनुसार कुछ परिवर्तन कर, नूतन वस्तु विपणि-अन्वेषण की प्रणाली द्वारा ही किया जा सकता है।

विपणि-अन्वेषण और विक्रय-आन्दोलन

विपणि-अन्वेषण द्वारा वस्तु के स्वरूप में सुधार होकर पद्धति, आकार, रंग-रूप आदि बातों में अथवा संवेष्टन, बाह्य दृश्य आदि स्वरूप में परिवर्तन होता है। परिवर्तन वस्तु को आकर्षक बनाता है जिसे देख लोगों की आँखों को और मन को अत्यन्त होता है। उस मनमोहक दृश्य के प्रति ग्राहकों के दिल में इतना आकर्षण बढ़ता है कि वे उसे देखने एकत्रित होने लगते हैं और जहाँ भीड़ होती है वहाँ अन्य लोग भी आकर खड़े हो जाते हैं। इस प्रकार एकत्रित हुये समुदाय के कारण काफी अधिक प्रमाण में विक्रय होता है। प्रथम प्रभाव (first Impression) का महत्त्व काफी बड़ा होता है और वस्तु का बाह्य स्वरूप ही प्रथम प्रभाव अंकित करता है।

यहाँ प्लास्टिक की चूड़ियों का उदाहरण सुसंगत होगा। प्रारंभ में पतली, जल्दी गर्म होनेवाली और कच्चे रंग की प्लास्टिक की चूड़ियाँ विपणि में आयीं थीं। उसमें केवल एक ही गुण था कि वे टूटती नहीं थीं। किन्तु गत पाँच वर्षों में प्लास्टिक ने इतनी कान्ति कर डाली कि आज अनेक प्रकार की और भूषाचारों की चूड़ियाँ विपणि में सजायी दीखती हैं जिनकी ओर धनिक स्त्रियाँ भी आकृष्ट होकर सोने की चूड़ियों की अपेक्षा उन्हें अधिक पसंद करती हैं। इन चूड़ियों का विक्रय करोड़ों रुपयों तक बढ़ गया है।

वस्तु के संवेष्टन का भी विक्रय-आन्दोलन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। संवेष्टन का स्वरूप आकर्षक, लोकरुचि के अनुरूप और बहुप्रयोजन-युक्त कैसा बनाया जाय, इस संबंध में विपणि-अन्वेषण सहायक होता है। परिणामतः अप्रत्यक्ष रूप से विपणि-अन्वेषण वस्तु को आकर्षक बनाकर उसका विक्रय बढ़ाता है।

जीवन का दृष्टि-कोण, रहन-सहन, आदतें, रूढ़ियाँ आदि बातें सदा परिवर्तन-शील होती हैं। उनके परिवर्तन की संभावना की ओर विपणि-अन्वेषक की विहंग-दृष्टि होनी चाहिये और अभ्ययन कर संभाव्य परिवर्तन की जानकारी अपने उत्पादकों को देनी चाहिये ताकि उत्पादक नूतन-भूषाचारी वस्तु अपने प्रतिस्पर्धी के पूर्व ही विपणि को प्रदान कर सकें और विक्रय बढ़ा सकें। आजकल महाविद्यालयीन स्नातिकाओं में ब्लाऊज के बदले चोलियाँ पहनने की प्रथा ज़ोरों से प्रारंभ हो रही है। इस ओर विपणि अन्वेषक का यदि ध्यान हो, तो अन्वेषण यह खबर वस्त्र-उत्पादकों को तुरन्त दे देगा और उत्पादक छीट की अपेक्षा चोली का वस्त्र उत्पादन करना प्रारंभ करेंगे। इसी प्रकार कंधों में लटकाने की शैलियों का उदाहरण भी यहाँ पर दिया जा सकता है।

विपणि-अन्वेषण द्वारा वस्तु में सर्वोत्तम गुण लाये जा सकते हैं और उसे अत्यंत अद्यावत् (Up-to-date) बनाया जा सकता है। ये दो गुण विक्रय-वृद्धि में बहुत ही सहायक होते हैं। कॉफी का उदाहरण यहाँ दिया जा सकता है। आजकल ग्राहक द्वारा माँग करने पर उसी समय भूँजी और पिसी ताज़ी कॉफी दुकानों में मिलने लगी है। पुड़ों में बंद की हुई कई दिनों की बासी कॉफी की तुलना में यह ताज़ी कॉफी अधिक लोकप्रिय होकर उसका विक्रय शीघ्रता से बढ़ रहा है।

किसी वस्तु के उपयोग में यदि क्लिष्टता हो तो विपणि-अन्वेषण द्वारा खोज कर उसमें थोड़े उपायों से सरलता लायी जा सकती है, जिस से वस्तु अधिक

उपयुक्त होती और उसका विक्रय बढ़ता है। देहाती लोग तमाखू चूने के साथ मिलाकर खाते हैं। यदि चूने के साथ मिलाकर ही तमाखू तैयार कर देहातियों में बेची जाय तो इस छोटे से परिवर्तन के कारण विक्रय बहुत प्रमाण में बढ़ जायगा। इसी प्रकार नूतन रेडियो और मगन चूल्हे का उदाहरण भी यहाँ दिया जा सकता है।

अपने प्रतिस्पर्धी को मात करने के लिये विपणि-अन्वेषण सहायक होता है। प्रतिस्पर्धी की प्रणाली का अध्ययन कर उससे भी बढ़कर उत्पादन योजना का संकेत अन्वेषण विभाग करता है, जिसके द्वारा अपनी वस्तु अधिक उपयुक्त और आकर्षक बनाकर विक्रय-प्रतियोगिता में उत्पादन विभाग सफलता पा सकता है। साथ ही साथ जिस क्षेत्र में किसी का प्रवेश नहीं हुआ, उसमें अपनी वस्तुएँ लोकप्रिय कर विक्रय बढ़ाने में विपणि-अन्वेषण बहुत ही उपयुक्त सिद्ध होता है।

प्रश्न

१. 'विपणि-अन्वेषण' की कल्पना का प्रारंभ और विकास किस प्रकार हुआ ? योग्य विपणि-अन्वेषण कौनसा है ?

२. 'विपणि-अन्वेषण पर किया गया व्यय कभी भी बर्बाद नहीं जाता' क्या आप इस कथन से सहमत हैं ? साधार चर्चा कीजिए।

३. किसी पुरानी वस्तु को परिवर्तित स्वरूप में विपणि में रखना है। उस के विक्रय की कदांतक गुंजाइश है इसकी जानकारी हासिल करने के लिये एक विपणि-अन्वेषण-प्रश्नावली तैयार कीजिए।

४. 'विपणि अन्वेषण कोई एक विशेष अनुसंधान नहीं है, वह लगातार चलने वाला अध्ययन है'—इस मत के पक्ष और विपक्ष में क्या कहा जा सकता है ?

५. विपणि की जानकारी प्राप्त करने की कौन-कौनसी प्रणालियाँ हैं ? प्रत्येक-प्रणाली के गुण-दोषों की चर्चा कीजिए।

६. प्रश्न किन्हें और कैसे पूछे जायें ? प्रश्नों का स्वरूप कैसा हो ? प्रश्नों के उत्तर में कितने प्रकार की जानकारी प्राप्त होनी चाहिये ?

७. क्या विपणि-अन्वेषण वास्तव में विक्रय-आंदोलन (Sales Contest) में सहायक होता है ?

: ५ :

विक्रय-संगठन

(Sales Organisation)

संसार के विकास के साथ साथ व्यापार-युग में भी क्रान्ति निर्माण हुई। एक जमाना था जब कि ग्राहकों को विक्रेता की खुशामद करनी पड़ती थी; आज भी कुछ पिछड़े हुये और पहाड़ी मुल्क में या जंगलों में स्थित देहातों की यही हालत है। किन्तु प्रतियोगिता के इस युग में वह परिस्थिति पूर्णतः विपरीत हो गयी है। बीसवीं शत.ब्दी की यह विशेषता है कि इन पचास वर्षों में विपणि का स्वरूप ही बदल गया है। इस पचास वर्षों में हमने पूँजोत्पादन (Mass-Production) प्रारंभ कर दिया है; किन्तु अबतक पूँज-उपभोग (Mass Consumption) करना हम नहीं सीखे। इसीलिये पूँजोत्पादित वस्तुओं का वितरण अधिक जटिल हो गया। अर्थशास्त्रियों ने आज तक ऐसा कोई सिद्धान्त नहीं खोज निकाला जिसकी सहायता से समाज की क्रय-शक्ति नाप कर संतुलित उत्पादन (Balanced Production) किया जा सके। अतः संसार के सामने अधिक या ज़रूरत से ज्यादा उत्पादन की समस्या खड़ी हो गयी है। जो 'विक्रेताओं की विपणि' थी वह अब 'ग्राहकों की विपणि' बन गयी है। विपणि में प्रति-योगिता बढ़ रही है। क़यावक़्रय पद्धति (Hire Purchase System) से लेकर उधार और घर-पहुँच विक्रय का अवलंबन विक्रेताओं ने प्रारंभ कर दिया है। ग्राहकों की सेवा करने के अनेक आधुनिक मार्ग और अद्यावत साधन प्रचलित हुये हैं। वस्तु-वस्तुओं में, और दो बोधाचिन्हांकित समान गुणों की वस्तुओं में प्रतियोगिता बढ़ रही है। संचार-साधनों की विपुलता के कारण यह समस्या और भी जटिल होती जा रही है। प्रतिस्पर्धा बढ़ने के कारण अब सामान्य विक्रेता विपणि में उतना महत्त्व नहीं रखता। आज विक्रेता का निपुण होना अतिआवश्यक महसूस होने लगा है। विक्रेता की सहायता के लिये विज्ञापन, विपणि अन्वेषण, विक्रय-प्रवर्तन आदि सेवाओं का उपयोग होने लगा है। इन सेवाओं में काफ़ी व्यय होता है जिससे विक्रय-व्यय बढ़ता ही चला जा रहा है। किन्तु पूँजोत्पादन और आधुनिक ढंगों की सहायता से वस्तु का उत्पादन-परिष्कय

(Cost of Production) घटाया जा रहा है। अतः उत्पादन परिव्यय की तुलना में विक्रय-परिव्यय का अनुपात अधिक से अधिक प्रमाण में बढ़ रहा है। इन सब प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुये जिस तरह उत्पादन का योजनाबद्ध होना आवश्यक है, उसी तरह विक्रय-विभाग का योजनाबद्ध होना अनिवार्य है ताकि विक्रय-परिव्यय का प्रमाण नियंत्रित किया जा सके। विक्रय-कार्य को सम्पूर्णतः सफल बनाने के लिये प्रयत्न और द्रव्य को बरबाद न करते हुये अत्यंत कुशलता के साथ कार्य किया जाना चाहिये। यह योजनाओं का युग है। 'योजना या विनाश' ('Plan or Perish') यह सर विश्वेश्वरैया की उक्ति बहुत कुछ तथ्य रखती है। हर प्रबंधक में अत्यल्प व्यय में अधिक से अधिक विक्रय करने की कला होनी चाहिये। ग्राहकों की भावी माँगों की कल्पना कर उस प्रकार उत्पादक को सलाह देना और अपने विक्रेताओं को सुसज्जित करना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

उक्त विवेचन से यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आधुनिक युग में हर सार्थ के लिये विक्रय-विभाग का अत्यंत महत्व है। हर सार्थ की यही नीति रहनी चाहिये कि वह वे ही वस्तुएँ उत्पादित करें, जिन्हें वह सस्ती बेच सके, न कि वे जिन्हें वह केवल सस्ते में बना सके। विक्रय-विभाग का लेखा भी उसी तरह रखा जाना चाहिये जिस तरह उत्पादन विभाग का रखा जाता है जिससे फिजूल खर्च जानकर रोका जा सके। साथ ही साथ विक्रय-विभाग की कार्यक्षमता की ओर सतर्क दृष्टि रखकर उसमें जहाँ भी कमजोरी महसूस हो, उसे हटाने के लिये प्रयत्न किये जाने चाहिये। उपर्युक्त कार्य यदि सफलतापूर्वक करने हों, तो प्रबंधक अत्यंत निपुण एवं व्यावहारिक होना चाहिए। प्रबंधन के सभी तत्त्वों की गहन जानकारी उसे होनी चाहिये।

विक्रय-संगठन का क्षेत्र

विक्रय-संगठन या विक्रय-प्रबंधन के दो पक्ष हैं : १. व्यवस्थित विक्रय और वितरण और २. सार्थ का संतुलन, तत्पर और शालीय प्रबंधन। इन दोनों का स्वाभाविक समन्वय ही विकास का परमोच्च बिन्दु और सफलता की परम सीमा है। उस आयुष्य सीढ़ी तक हरेक सार्थ पूर्णतः पहुँच ही सकेगी ऐसा नहीं, फिर भी उसके करीब-पास की आदर्श स्थिति प्राप्त करना कोई असंभव बात नहीं है। अपना लक्ष्य क्या है यह जानकर उसे हस्तगत करने के मार्गों का अध्ययन कर उसमें से योग्य मार्ग खोजना और उसको मद्देनजर रखते हुये उपयुक्त तालीम

और ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। इस प्रकार सभी साधनों और तालीम से सुसज्जित होने पर योजनाबद्ध आंदोलन प्रारंभ करने पर सफलता हासिल करना कोई कठिन कार्य नहीं है।

‘विक्रय-प्रबंधन क्या है’ यह केवल शब्दों में व्यक्त करना संभव नहीं है; क्योंकि वह कार्य भाषण और व्याख्यानबाजी का नहीं है, कर दिखाने का है। उसे करते समय सामान्य नियमों का पालन करते हुये समयानुसार अपनी नीति परिवर्तित करना ज़रूरी है। अमेरिका के एक विपणन और विज्ञापन पार्षद ने विक्रय-संगठन की परिभाषा निम्न प्रकार की—‘विक्रय-प्रबंधन का उस कार्यक्षेत्र में स्थित वैयक्तिक विक्रय-कला के मार्गदर्शन और नियंत्रण के साथ संबंध है। उसमें नियुक्ति करना, चुनना, तालीम देना, साधनों से परिपूर्ण करना, कार्य-मार्ग निश्चित करना, निरीक्षण करना, वेतन देना, प्रोत्साहित करना इन बातों का समावेश है; क्योंकि उसका वैयक्तिक विक्रय-शक्ति से संबंध है’। अनेक व्यवहारिक विद्वानों ने उपर्युक्त परिभाषा की कटु आलोचना कर यह दर्शाया कि वह अधूरी है। उनका कथन यह है कि इस परिभाषा में विपणन और विज्ञापन से संबंधित मार्गदर्शन का उल्लेख नहीं है; उसी प्रकार उसमें अपनी उपशाखाओं के संचालन का, और प्रेषादेश व्यापार की नीति का समावेश नहीं है। उनकी राय है कि इस परिभाषा का स्वरूप और भी व्यापक होना चाहिये था। किन्तु उनका कथन पूर्णतः सत्य नहीं है। यदि परिभाषा का स्वरूप बहुत ही व्यापक किया गया तो उसकी रूपरेखा शब्दों में व्यक्त करना कठिन होगा। उपर्युक्त पार्षद द्वारा की हुई परिभाषा को थोड़ासा अलग स्वरूप देकर संक्षेप में निम्न सरल व्याख्या बनाई जा सकती है—विक्रय-विभाग से संबंधित सम्पूर्ण जानकारी हासिल कर उस विभाग का प्रबंधन करना, वैयक्तिक विक्रय-कला और विक्रय-संबंधित अन्य प्रवृत्तियों का मार्गदर्शन एवं नियंत्रण करना विक्रय प्रबंधन का कार्य है।

योजनाबद्ध कार्य के महत्व का उल्लेख प्रारंभ में ही किया गया है। पर उसका मतलब यह नहीं कि योजनाओं के चौखट में सारा कार्य जकड़कर उसमें यांत्रिकता निर्माण करें; उससे उसका स्वाभाविक प्रवाह रुक जायगा। अतः योजना का उपयोग केवल संगठन को ढिलाई के दोष से अलिप्त रख भिन्न प्रवृत्तियों में समन्वय निर्माण करने के लिये किया जाना चाहिये, उसे जकड़ने के लिये नहीं। संगठन के संबंध में दो मत प्रचलित हैं। एक पुरानी पद्धति का है जिसमें विक्रेता के व्यक्तित्व और अधिकार को काफी सद्बलित दी गई है।

इस प्रकार के विक्रेता स्वयं-प्रभावी होते हैं और स्वेच्छा से किसी विभाग में कार्य करते हैं। जब तक आदेश भेजने का उनका कार्य ठीक रूप से शुरू रहता है, तब तक वे किसी भी अधिकारी का उसमें हस्तक्षेप बरदाश्त नहीं करना चाहते। उनका कहना यही होता है कि 'आपको हम आदेश भेजते हैं, उन्हें स्वीकार कर विक्रय-वृद्धि कीजिये; हमें उपदेश करने की कोई आवश्यकता नहीं है'। वे सारा विक्रय अपनी प्रतिष्ठा के बल पर करते हैं और विक्रय करते समय प्रमंडल के नाम का उल्लेख तक नहीं करते। यद्यपि इस प्रबंधन-पद्धति का कुछ विद्वानों ने, जिनमें जॉन ए. मर्फी प्रमुख है (विक्रय-प्रबंधन मासिक पत्रिका में उनका ता. १ मार्च १९३६ का लेख),—समर्थन किया है, फिर भी उस पद्धति का अस्तित्व कम होता जा रहा है। लेकिन भारत में वह प्रणाली अब भी अपना प्रभुत्व रखती है। इस प्रणाली में विक्रेता का व्यापारियों पर गहरा प्रभाव होता है जिसके कारण सार्य भी प्रभावित होकर उसके हाथ की कटपुतली बन जाती है। इस प्रकार किसी एक प्रभावी विक्रेता के हाथ में सार्य का सारा भविष्य सौंपना बुद्धिमानी का कार्य नहीं हो सकता। यदि उसके व्यापार-नीति-निर्णय में ज़रा भी गलती हुई तो सार्य सारी बर्बाद हो जायगी। इसलिये विक्रेता के वैयक्तिक प्रभाव के साथ साथ प्रमंडल या सार्य का विशेष विज्ञापन करने के लिये विक्रेता को बाध्य कर प्रमंडल या सार्य के महत्व का चित्र ग्राहकों के हृदय पर अंकित किया जाना चाहिये। यदि इस प्रकार की नीति का अवलंबन न किया गया तो उस विक्रेता का सार्य के साथ संबंध-विच्छेद होने के साथ ही सार्य या प्रमंडल का कार्य ठप हो जायगा।

प्रबंधन-विभाग का अन्य विभागों से संबंध

हर किसी व्यवसाय-संस्था का अपना निजी ढाँचा होता है। प्रमंडल का संचालन-उत्तरदायित्व प्रबंध संचालक और संचालक-समिति के जिम्मे होता है। भागिता सार्य का संचालन पूर्णतः भागियोंपर सौंपा जाता है और एकल व्यापारी सार्य का प्रबंध व्यापारी स्वयं देखता है। सार्य का स्वरूप किसी भी प्रकार का हो, उसे अपने व्यापार को सफलता पूर्वक संचालित करने के लिये अपने कार्यों को निम्न विभागों में विभाजित करना पड़ता है :—

१. विक्रय-विभाग (Sales Department)

२. उत्पादन अथवा क्रय विभाग (Production or Purchase Department)

३. प्रत्यय विभाग (Credit Department)
४. विक्रय-प्रवर्तन विभाग (Sales Promotion Department)
५. सांख्यिकी विभाग (Statistical Department)
६. लेखा-कर्म विभाग, (Accounts Department)

उक्त दर्शाये गये कार्य प्रमुख कार्य हैं, उनमें अनेक गौण कार्यों का समवेश किया जा सकता है। उपर्युक्त विभागों की संख्या सार्थ के स्वरूप के अनुसार कम-ज्यादा की जा सकती है। यदि सार्थ का स्वरूप छोटा हो तो दो या अधिक विभागों का संयुक्त संचालन किया जा सकता है और वह अत्यंत छोटी हो तो सभी विभागों का संचालन एक ही व्यक्ति कर सकता है।

उपर्युक्त विभागों की अन्तिम जिम्मेवारी प्रबंध संचालक की होती है; अतः उसे चाहिये कि हर विभाग के कार्य-क्षेत्र की वह स्पष्ट परिभाषा बना दे, ताकि उस विभाग को अपने कार्य की पूर्ण और स्पष्ट कल्पना आ सके। हर विभाग के प्रबंधक का यह कर्तव्य है कि वह अपने विभाग का कार्य अपने सहायक कर्मचारियों में इस प्रकार वितरित कर दे जिससे विभाग की कार्य-क्षमता बढ़े और कार्य संचालन सुचारु-रूप से चले। उसे यह ध्यान में रखना चाहिये कि उस का विभाग कार्य-दृष्टि से स्वतंत्र होते हुये भी व्यवसाय का एक अंग है। अतः केवल विभागीय प्रगति की ओर ध्यान न देते हुए अपनी प्रगति अन्य विभागों को किस प्रकार सहायक होगी, इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये। विक्रय-विभाग भी इस नियम के लिये अपवाद नहीं हो सकता।

उत्पादन अथवा क्रय-विभाग से विक्रय-विभाग का संबंध

उत्पादन विभाग और विक्रय-विभाग को यह समझना चाहिये कि वे आपस में एक दूसरे के पूरक हैं; एक दूसरे के सिवा प्रगति नहीं कर सकता। उत्पादन-विभाग और विक्रय-विभाग का आपसी असहयोग सार्थ के पतन के अनेक कारणों में एक महत्वपूर्ण कारण है। विक्रय-विभाग के कर्मचारियों को यह जानना आवश्यक है कि उत्पादन-विभाग की शक्ति कितनी और किस ढंग की है। उत्पादन-विभाग किस प्रकार की वस्तुएँ बना सकता है, इस ओर पूर्णतया सतर्क रहकर ही विक्रय-विभाग को ग्राहकों से आदेश लेने चाहिये। उदाहरणार्थ ग्राहक प्रचलित वस्तुओं में कुछ परिवर्तन कराकर क्रय करना चाहते हैं। यह परिवर्तन निर्माणी आसानी से और बिना किसी आर्थिक-हानि से कर सकती है, किन्तु इस बात की जानकारी

यदि विक्रय-विभाग को नहीं है तो उस स्थिति में विक्रय-विभाग ग्राहकों के उन आदेशों को स्वीकार नहीं कर सकेगा और फलतः केवल अज्ञान के कारण सार्थ को आर्थिक हानि होगी। ठीक इसके विपरीत केवल यह कल्पना कर कि परिवर्तित वस्तुएँ निर्माणी अवश्य दे सकती है—जब कि आर्थिक दृष्टि से उसे वह संभव नहीं है—यदि विक्रय-विभाग आदेश स्वीकार करता है तो उन आदेशों को रद्द करना पड़ेगा जिससे सार्थ को ख्याति की हानि बरदास्त करनी पड़ेगी और यदि आदेशों की पूर्ति की जाती है तो आर्थिक हानि का शिकार बनना पड़ेगा। इसलिये इन दो विभागों में सहकार्य अनिवार्य है। आर्थिक लाभ की दृष्टि से भी यदि सोचा जाय तो ग्राहकों का संतोष महत्त्व पूर्ण बात है—क्योंकि उस पर विक्रय की तादाद निर्भर होती है—इसे भुलाया नहीं जा सकता। अतः अपनी वस्तु को अद्यावत बनाये रखने के लिये उत्पादन विभाग को बीच-बीच में वस्तु के स्वरूप, भूषाचार, पद्धति आदि के संबंध में विक्रय-विभाग से जानकारी हासिल करते रहना चाहिये। अन्यथा आधुनिकता के अभाव के कारण वस्तुएँ मृत-स्कंध (Dead Stock) का रूप धारण करेंगी। इसके विपरीत विक्रय-विभाग, इसलिये कि वस्तुओं का रोककरण (conversion into cash) करता है, अपने कार्य को अत्यंत महत्त्वपूर्ण समझता है। ग्राहक वस्तु के भूषाचार, गुण और मूल्य के संबंध में जो आलोचनाएँ करते हैं उनको ध्यान में रखते हुये हर बार विक्रय-विभाग वस्तु के उत्पादन में परिवर्तन चाहता है। इस प्रकार का बार बार किया जानेवाला परिवर्तन वस्तुओं को प्रमाणिकृत (standardised) करने में बाधा डालेगा और परिणामतः उत्पादन-परिव्यय बढ़ेगा जिससे संभव है वे वस्तुएँ मूल्य-प्रतियोगिता में सफलता न पा सकें। किसी वस्तु की बनावट में यदि छोटासा भी परिवर्तन करना हो तो उसमें कितनी दिक्कत आती हैं, इसकी कल्पना उत्पादन-विभाग द्वारा समझाये बिना समझ में नहीं आ सकती। अतः उत्पादन विभाग की बार बार आलोचना करने की उसे आदत हो जाती है जिससे इन दो विभागों में आपसी वैमनस्य फैल सकता है। इस दोष से बचने के लिये उनके बीच सहकार आवश्यक है। सहकारिता निर्माण करने के लिये दोनों विभागों के कार्यकर्ताओं की संयुक्त सभाएँ होनी चाहिये जिनमें आपसी मतभेदों का निवारण कर कठिनाइयों को समझ लेना चाहिये। जिस प्रकार चमू-खेलों (Team-games) में वैयक्तिक कुशलता की अपेक्षा सामूहिक कुशलता अधिक महत्त्व रखती है, उसी प्रकार इन दो विभागों के कार्य में सामूहिक सहकार महत्त्व रखता है।

प्रत्यय-विभाग से विक्रय-विभाग का संबंध

यात्री-विक्रेताओं द्वारा भेजे गये आदेशों को कार्यान्वित करना ही 'विक्रय' नहीं है। विक्रय तो उस समय पूरा होगा, जिस समय आदेश-राशि प्राप्त होगी। इस महत्वपूर्ण तत्त्व को न समझते हुए और ग्राहकों की आर्थिक स्थिति की ओर दुर्लक्ष कर विक्रेता आदेश भेजते रहेंगे तो सार्थ को हानि होगी, यद्यपि विक्रेता यह समझ बैठेंगे कि उन्होंने इतने अधिक आदेश भेजकर बहुत विक्रय किया है। आदेश स्वीकृत करने के पूर्व ग्राहक की क्रय-शक्ति का अनुमान लगाना अत्यावश्यक है। ग्राहकों की क्रय-शक्ति संबंधी सारी सामग्री एकत्रित कर प्रत्यय-विभाग यह कार्य करता है। किसी भी प्रकार का प्रत्यादेश (Order on Credit) स्वीकार करते समय विक्रेता प्रत्यय-विभाग से ग्राहकों की क्रय-शक्ति के बारे में पूछताछ कर ले तथा आवश्यक वृत्त-लेख (Records) भी देख ले। यदि प्रत्यय विभाग का संचालन विक्रय-प्रबंधक की देखभाल में रखा गया तो अधिक अच्छा होगा जिससे अनुचित आदेश स्वीकार नहीं होंगे और विक्रेताओं और प्रत्यय-विभाग के बीच अच्छे संबंध बने रहेंगे।

विक्रय-प्रवर्तन विभाग

उत्पादन और वितरण (विक्रय) विभाग के बीच स्थायी संबंध बनाये रखना विक्रय-प्रवर्तन विभाग का कार्य है। वह कार्य विक्रय-प्रवर्तन विभाग अपनी 'अन्वेषण' उपशाखा द्वारा करता है। विक्रय-विभाग द्वारा दर्शायी हुई सूचनाएँ सुगमता के साथ किस प्रकार कार्यान्वित की जा सकेंगी इसकी कल्पना और प्रत्यक्ष योजना भी विपणि-अन्वेषण विभाग उत्पादन विभाग के सुपुर्द करता है। उसी प्रकार उत्पादन विभाग द्वारा उत्पादित वस्तुओं के लिये कौनसी और किस समय की विपणि सर्वोत्तम हो सकती है इसकी जानकारी भी यह विभाग वितरण या विक्रय-विभाग को दे सकता है। ग्राहकों की भविष्यकालीन अभियाचनाओं (Demand) का स्वप्न उत्पादन विभाग को पहले ही आना चाहिये और उस प्रकार उत्पादन कर विक्रय-विभाग को सदा संतुष्ट रखने की उसे कोशिश करनी चाहिये। इस प्रकार के स्वप्नों की प्रेरणा अन्वेषण-विभाग के सतत परिश्रम द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार की स्वप्न-वस्तुओं की नकल होने की यदि संभावना हो तो प्रारंभ में ही एकस्व अधिकार (Patent Right) दिलवाकर उस गोखे से भी अन्वेषण-विभाग उत्पादन-विभाग को बचाता है।

अपने अल्पशो-विक्रेताओं द्वारा वस्तु की पद्धति, भूषाचार आदि संबंधी भेजी गई सूचनाओं पर विक्रय-विभाग व उत्पादन विभाग को पूर्ण रूप से निर्भर नहीं रहना चाहिये। उन्हें दृश्य-स्थिति का ज्ञान जरूर होता है, पर भविष्य-कालीन माँग का या परिवर्तन का ठीक अंदाज़ वे लगा सकेंगे ही, ऐसा नहीं। दूर-दृष्टि से सोचने का शास्त्र उन्हें ज्ञात नहीं होने के कारण वे भूषाचार संबंधी गलती कर सकते हैं जिसके परिणाम स्वरूप निर्माणा को करोड़ों रुपयों का नुकसान हो सकता है। अतः उत्पादन और वितरण के बीच स्थित विपणि-अन्वेषण विभाग का पूरा पूरा लाभ उठाया जाना चाहिये; क्योंकि उनको वैज्ञानिक ज्ञान होने के कारण धोखा होने की कम संभावना होती है। कई बार तो सूचना देने में अल्पशो-विक्रेता स्वयं गलती करते हैं और गलत-सूचनाओं के आधार पर उत्पादन किया गया तो उसके लिये वे अपने आप को दोषी न समझकर वितरण विभाग पर ही लांछन लगाते हैं। दोष देने न देने की बात यदि छोड़ दी जाय तो भी इस गलती की पूरी आर्थिक हानि उत्पादन विभाग को ही बरदाश्त करनी पड़ती है; विक्रेता तो हानि में ज़रा भी हिस्सा नहीं बँटाते हैं। अतः विक्रय-विभाग और अन्वेषण विभाग के बीच निकटतम सम्पर्क होना चाहिये जिससे विक्रय-विभाग अपने ग्राहकों के, वस्तुओं के, भूषाचारों के और पद्धतियों के संबंध में अटकल लगा सके और ग्राहकों की संख्या बढ़ाकर उन्हें योग्य समय पर योग्य तादाद में योग्य प्रकार की वस्तुएँ दे सके।

सांख्यिकी विभाग

सांख्यिकी विभाग के निर्जीव अंक विक्रय-प्रबंधक के साथ मीठी बातें करते रहते हैं और उन अंकों के साथ मौन वार्तालाप करते समय जब प्रबंधक तल्लीन हो जाता है तब अन्य लोग आश्चर्य से देखते ही रहते हैं। वास्तव में ये अंक विक्रय-प्रबंधक को उतने ही महत्त्व के महसूस होते हैं जितना कि होकार्यत्र खलासियों को और दूरबीन खगोल-शास्त्रज्ञों को। इन अंकों के भरोसे व्यापारी लाखों रुपयों का व्यवहार करते हैं और करोड़ों रुपयों का प्रसंविदा (Contract) करते हैं। जिस प्रकार शतरंज के खिलाड़ी एकक (Units) को योजनाबद्ध स्थान परिवर्तित कर अपने प्रतिस्पर्धी को शह देते हैं, उसी प्रकार व्यापारी इन अंकों के सहारे भविष्य-कालीन माँग, उत्पादन आदि का अंदाज़ कर अपने प्रतिस्पर्धी पर हँसते हँसते मात किया करते हैं। किस क्षेत्र में, किस प्रकार की, किस प्रमाण में, किस भूषाचार की वस्तुएँ आवश्यक होंगी और उन्हें कम से कम

मूल्य में तथा शीघ्र एवं सस्ते वितरण-साधनों द्वारा कैसे भेजी जा सकेंगी इन सब बातों का स्पष्ट चित्र विक्रय-विभाग भूतकालीन अंकों के अध्ययन के पश्चात् खड़ा कर सकता है। इसलिये सांख्यिकी विभाग विक्रय-वृद्धि में बड़ा सहायक होता है और उस विभाग के संहालने के लिये बड़े बड़े तर्जों की नियुक्ति की जाती है। यदि विक्रय-विभाग और सांख्यिकी विभाग का सर्वोत्तम समन्वय संभव हुआ तो दूध में शक्कर मिला हुआ उत्तमतर पेय तैयार होगा।

लेकिन यहाँ एक धोखा भी है। सांख्यिकी-शास्त्र बड़ा विचित्र शास्त्र है जिसका दुरुपयोग बड़ी आसानी से किया जा सकता है। अतः इन अंकों का उपयोग कर उसके सहारे निर्णयात्मक बातें निश्चित करने वाला तर्ज बड़ा कुशल होना चाहिये और विशेष कर पक्षपात (Bias) के दोष से उसे बचना चाहिये। उसे यह सदा ध्यान में रखना चाहिये कि उसके निर्णय पर विक्रय-विभाग अपनी विक्रय-नीति निश्चित करनेवाला है जिसमें जरा भी गलती होने पर करोड़ों का नुकसान होकर सार्थ धूलि में मिल सकती है। इन अंकों के आधार पर सम्पूर्ण अंदाज-पत्रक बनाया जाता है जिसकी नींव पर विक्रय-विभाग का भव्य महल खड़ा कर उस पर विजय का कलश चढ़ाने की विक्रय-प्रबंधक की अभिलाषा—महत्वाकांक्षा होती है। नींव में जरा भी त्रुटि रही तो सारा महल गिरकर धूलि में मिल सकता है। अतः सांख्यिकी-विभाग को बड़ी सावधानी के साथ कार्य कर विक्रय-विभाग को सदा सहयोग प्रदान करते रहना चाहिये।

लेखाकर्म विभाग

लेखा-कर्म विभाग का अद्यावत रहना विक्रय-विभाग की सफलता के लिये अत्यंत आवश्यक है। किन प्रादुर्भावों से राशि कालातीत है इस की जानकारी समय समय पर विक्रय-विभाग को देकर इस विभाग को विक्रय-विभाग की सदा सहायता करते रहना चाहिये। अन्यथा विक्रय-विभाग उन कालातीत-राशि-प्रादुर्भावों को अनावश्यक प्रमाण में प्रत्यय-विक्रय करता रहेगा जिससे सार्थ को आर्थिक हानि पहुँचेगी।

विभागों की सहकार-संपादन प्रणाली

सार्थ के कार्य का अनुमान-पत्र प्रारंभ में ही, सब विभागों के प्रबंधकों की सलाह-मशविरा लेकर एक संयुक्त-सभा में, तैयार किया जाना चाहिये। कौनसा कार्य कौन से विभाग द्वारा कब और किस प्रमाण में किया जाय इसकी स्पष्ट

कल्पना उपर्युक्त अनुमान-पत्रीय योजना में हो जिससे हर प्रबंधक अपना उत्तर-दायित्व ठीक समझ ले। इस प्रकार की नीति का अवलंब करने से सभी विभागों के आपसी संबंध बहुत ही सहकार-स्वरूप रहेंगे और सब कार्य सरल किन्तु कार्यक्रम-पात्रिका के अनुसार, बिना किसी कठिनाई के, चलता रहेगा।

समय समय पर मुख्य प्रबंधकों की संयुक्त सभायें हों, जिन में भूतकालीन और वर्तमान कार्य का अवलोकन हो और किस विभाग से किस प्रकार की सहायता जरूरी है इसका अनुमान लगाया जा सके। हर विभाग को बार बार यह समझाया जाना चाहिये कि वे सब एक सार्य के ही विभाग हैं और आपस में सहकार बढ़ाकर उन्हें सार्य को संयुक्त रूप से सफल बनाना है।

विक्रय-विभाग का संगठन

सामान्य रूप से विक्रय-विभाग के तीन उप-विभाग होते हैं :—

१. प्रसिद्धि अनुविभाग (Publicity Section) — इस विभाग का कार्य सार्य की वस्तुओं के लिये अभियाचन निर्माण करना है।

२. प्रवासी अनुविभाग (Travelling Section) — यह विभाग प्रसिद्धि विभाग द्वारा निर्माण किये गये तथा अन्य आदेशों को एकत्रित कर विक्रय-विभाग की ओर भेजता है।

३. वंटन अनुविभाग (Despatch Section) — सार्य के पास आये हुये आदेशों का संतोषजनक प्रबंध करना इस विभाग का कार्य है।

उपर्युक्त विभागों की कार्य-प्रणाली अपनी सार्य के कार्य और स्वरूप के अनुसार परिवर्तित होती रहेगी; अतः सर्वसाधारण रूपरेखा निश्चित करना कठिन है। प्रसिद्धि विभाग के संबंध में चर्चा करनी ही हो तो उसका प्रबंध विक्रय-विभाग करेगा या वह स्वतंत्र विभाग भी रह सकेगा। वह विभाग यदि विक्रय-विभाग के अन्तर्गत हो तो उसमें मुद्रण कार्य, बाह्य-प्रसिद्धि कार्य, प्रसिद्धि-पत्र वितरण कार्य, चित्रकला कार्य आदि बातों का समावेश होगा और हर कार्य के लिये स्वतंत्र तज्ञ की जरूरत रहेगी। इन सब तर्कों और कार्यकर्ताओं का मार्गदर्शन करना तथा उन्हें नियंत्रित करना विक्रय-प्रबंधक का कार्य होगा।

उसी प्रकार प्रवासी विभाग की रचना भी सार्य के भिन्न भिन्न हेतु और उद्देश्यों के अनुसार भिन्न भिन्न रहेगी। यदि कोई सार्य अपनी वस्तुओं का एकल

अधिकर्तृत्व (Sole Agency) किसी को प्रदान करती है तो प्रवासी विक्रेताओं की करीब करीब कोई आवश्यकता नहीं रहती। कुछ सार्थ केवल अपने प्रचार-साधनों पर निर्भर रहकर प्रेषादेश व्यापार को ही पसंद करती हैं। कहीं पर यदि विशेष आवश्यकता निर्माण हुई या कोई झगड़ा खड़ा हुआ तो ही अपने विक्रेता को भेजती हैं। इस के विपरीत कुछ सार्थ प्रवासी विक्रेताओं की बड़ी फौज रखती हैं जिनके भरोसे आदेश प्राप्त कर वह अपना कार्य सफल बनाती है।

वंटन विभाग की कार्य-प्रणाली में भी अनेक प्रकार पाये जाते हैं। कुछ सार्थ आये हुये आदेशों का प्रारंभ से अन्त तक का सारा कार्य करती हैं, किन्तु कुछ सार्थ तो केवल आदेशों का वृत्त (Record) रखती हैं, लेखा-कर्म करती हैं और उनके कार्यान्वय की मोटी नीति निर्धारित करती हैं। आदेशों की वस्तुएँ भेजने का कार्य सर्वथा उत्पादन विभाग पर ही सौंपा जाता है। आवेष्टन (Package), वस्तुएँ भेजना (Booking), आगोप (Insurance) आदि का सारा कार्य उत्पादन विभाग ही करता है। वस्तुओं के संबंध में यदि ग्राहकों से शिकायतें आयीं तो उनकी ओर ध्यान देना वंटन विभाग का कार्य होता है, उत्पादन विभाग का नहीं।

आपसी सहयोग

कार्य और प्रबंध की दृष्टि से विक्रय-विभाग के उपर्युक्त उप-विभाग होते हुये भी, उनका आपसी सहयोग नितांत आवश्यक है। भिन्न भिन्न पुष्प-गुच्छ गूँथ कर जिस प्रकार पुष्प-माला तैयार की जाती है या अनेक पत्तों को गूँथ कर जिस प्रकार तोरण तैयार किया जाता है, उसी प्रकार अपने महत्त्व और कुशलता के बल पर प्रबंधक इन सब विभागों की सुन्दर श्रृंखला बना सकता है। जिस विभाग को जब आवश्यक हो अपनी वैयक्तिक सेवाएँ समर्पित कर सभी विभागों का समान विकास करना उसका कर्तव्य है। व्यवसाय के लक्ष्य की ओर निगाह रख और भिन्न विभागों के कर्मचारियों को प्रोत्साहित कर अपने प्रतिस्पर्धी पर मात करने वाला धुरंधर विक्रय-प्रबंधक सदा विजयी-वीर की भाँति हँस-मुख होना चाहिये।

उपर्युक्त विभागों का आपसी सर्वोत्तम सहकार प्रस्थापित करने के लिये विक्रय-प्रबंधक को निम्न नीतियों का अवलंबन लेना होगा।

१. उत्पादन : क्रय नीति

सार्थ की यदि अपनी निजी निर्माणी हो तो विक्रय-विभाग को उत्पादन विभाग की नीति तय करने में सहायता करनी होगी। यदि निजी निर्माणी न हो,

तो विक्रय-विभाग के लिये बड़े प्रमाण में वस्तुएँ खरीद कर संग्रहीत करना सार्थ की जिम्मेदारी होगी। अतः उत्पादन या क्रय-नीति का विक्रय-विभाग पर काफी गहरा प्रभाव पड़ सकता है। उत्पादन या क्रय जितना सस्ता और सुन्दर होगा उतनी ही अधिक सहूलियतें विक्रय-विभाग अपने व्यापारी-ग्राहकों को प्रदान कर प्रतिस्पर्धा में अपना उच्च स्थान बनाये रख सकेगा। अतः विक्रय-विभाग के ज़रिए लोक-रुचि, नूतन भूषाचार, उपयोगी परिवर्तन आदि से संबंधित जानकारी प्राप्त कर सार्थ को अपनी उत्पादन या क्रय-नीति निश्चित करनी चाहिये। साथ ही साथ लोकप्रिय बोधचिन्ह, व्यवस्थित संवेष्टन, वितरण साधन और प्रत्यय सुविधायें आदि से संबंधी महत्त्वपूर्ण जानकारी विक्रय विभाग द्वारा प्राप्त की जा सकती हैं। यह सारी जानकारी पाने के पश्चात् ही सोच-समझकर उत्पादन या क्रय-कार्य किया जाय तो सार्थ सफल रहेगा; उसकी निर्माणी में अनद्यावत वस्तुओं का ढेर कभी इकट्ठा नहीं होगा और वस्तुओं के अभाव के कारण विपणि में कोलाहल भी कभी नहीं फैलेगा। उत्पादन सरल, संतुलित, अद्यावत, सस्ता और लोकप्रिय बनाने के लिये उत्पादन-नीति निश्चित करने के पहले विक्रय-विभाग से सलाह-मशविरा ज़रूर किया जाना चाहिये। श्री ए. एफ. पेन ने तो यहाँ तक सुझाया कि विक्रय-विभाग से यंत्र सामग्री, कच्चे माल का प्रदाय, मजदूर, प्रबंध प्रणाली आदि सभी बातों की सलाह लेना सदा लाभकारी होगा क्योंकि जिन ग्राहकों के अंतिम संतोष के लिये ये वस्तुएँ बनती हैं उनसे निकटतम सम्पर्क रखनेवाला विभाग विक्रय-विभाग ही है।

विक्रय-नीति

वास्तव में विक्रय-नीति संचालक समिति द्वारा निश्चित की जाती है; किन्तु उसकी प्रारंभिक योजना बनाकर विक्रय-विभाग को ही संचालकों के सुपुर्द करनी पड़ती है। संचालक विपणि की प्रवृत्ति क्या जाने! कुछ स्पष्ट अटपटापन दीख पड़े तो वे सुधार सुझा सकते हैं, इससे अधिक कुछ नहीं। विपणि की स्थिति, ग्राहकों की रुचि, व्यापार-चक्र—(Trade Cycles) और प्रतियोगिता का प्रभाव आदि बातों की गहरी जानकारी विक्रय-विभाग को होती है, उसे ध्यान में रखते हुए विक्रय-नीति की योजना बनाकर विक्रय-विभाग अनुमति के लिये संचालकों की सभा में रखता है। यह नीति मुख्यतः वितरण-प्रणाली निर्धारित करती है। बहुशो-विक्रेता, अल्पशो-विक्रेता इनमें से किसके ज़रिए वितरण करें,

सार्थ की उपशाखायें प्रस्थापित करें या प्रवासी-विक्रेताओं अथवा प्रेषादेश व्यापार प्रणाली द्वारा सीधे आदेश प्राप्त करें, सर्वस्व अभिकर्तृत्व (Exclusivity Agency) दें दें या प्रारंभिक अवस्था में अन्य प्रणाली से काम कर बाद में निश्चित नीति निर्धारित करें—यह सारा विक्रय-नीति में समाविष्ट है। इसके साथ साथ प्रवेश्य (Import) और निष्क्राम्य (Export) संबंधी सरकारी नीति जान कर अपनी नीति तय करना भी संचालक समिति का कर्तव्य है जो विक्रय-विभाग के सहयोग से निश्चित किया जा सकता है।

मूल्य निर्धारण नीति

मूल्य निर्धारित करने का कार्य अत्यंत महत्वपूर्ण एवं नाजुक है। प्रतियोगिता के इस जमाने में तो मूल्य-विग्रह (Price War) चलता है। जो सार्थ मूल्य की प्रतियोगिता में सरलता से अग्रसर हो सकती है, उसे विजय की अधिक उम्मीद करनी चाहिये। अतः मूल्य-नीति इस प्रकार निर्धारित हो, जिससे सार्थ को लाभ भी पर्याप्त प्रमाण में हो और वह ग्राहकों को अपने प्रतिस्पर्धियों की तुलना में चीजें अधिक सस्ती बेच सके। विक्रय-विभाग का ग्राहकों से और प्रतिस्पर्धियों से सतत संबंध आता है जिसके कारण यह नीति निर्धारित करने में उन्हें अधिक भ्रम नहीं करना पड़ता। जहाँ तक संभव हो मूल्य बार बार परिवर्तित नहीं करना चाहिये। श्री पॉवेल ने तो स्पष्ट रूप से कहा है कि मूल्यपरिवर्तन बड़ा हानिकारक होता है। उनका कथन है कि बार बार मूल्यपरिवर्तन ग्राहकों को उलझन में डाल देता है और उससे अल्पशो-विक्रेताओं की परिस्थिति बड़ी विचित्र होती है। किन्तु सवाल यह है कि आज के व्यापार-युग में कोई निश्चित मूल्य अधिक दिनों तक नहीं चल सकता। कुछ वस्तुएँ तो ऐसी हैं जिनका हर सप्ताह ही क्या, प्रतिदिन मूल्य परिवर्तन होता रहता है। ऐसे समय पर इतना ही किया जा सकता है कि विक्रय-विभाग मूल्यपरिवर्तन का, कारणों सहित, विज्ञापन विस्तृत प्रमाण में करते रहें।

आर्थिक नीति

वस्तुओं का क्रय और विक्रय किस प्रकार हो यह नीति प्रारंभ से ही निर्धारित की जानी चाहिये। इसकी कई प्रणालियाँ हैं जिनमें रोक-व्यवहार, अधिकोष द्वारा, प्रत्यय-विलेख स्वीकार कर ये प्रमुख हैं। यह ज़रूरी नहीं कि किसी एक प्रणाली को स्वीकार कर उसी के ज़रिए सारे व्यवहार हों। परिस्थिति

के अनुसार और जिनके साथ व्यवहार हो रहा हो उन साथों के रिवाजों के अनुसार भिन्न-भिन्न समय पर भिन्न-भिन्न प्रणालियों से काम लेना होगा। विशेषतः अपने ग्राहक-व्यापारियों की और जिनसे हम खरीदी करते हैं उन व्यापारियों की आर्थिक स्थिरता और व्यापार-प्रतिष्ठा देखकर ही अपनी आर्थिक-संबंध-नीति निश्चित करनी चाहिये। अपने प्रतिस्पर्धी किस प्रकार की आर्थिक सहूलियतें प्रदान कर रहे हैं इसका गहरा अध्ययन कर उससे बढ़कर, किन्तु धोखे से दूर रखने वाली, सुविधायें देनी होंगी। इस नीति में ध्यान इतना ही रहे कि उसे सट्टेबाजी का स्वरूप प्राप्त न हो।

भृति-शोधन-पद्धति (Wage-Payment-System) किस प्रकार की हो, घूसखोरी आदि से व्यवसाय को किस प्रकार बचाया जाय यह निश्चित कर अंकेक्षण, लेखाकर्म आदि विभागों का संचालन कड़े अनुशासन के साथ होना चाहिये। भिन्न-भिन्न विभागों पर कितना और कब व्यय करना है इसकी स्पष्ट कल्पना प्रारंभ से ही अनुमान-पत्र द्वारा कर लेनी चाहिये और उस कल्पना को उसी प्रकार कार्यान्वित करने की कोशिश करनी चाहिये। मुख्यतः इमारत किराया, प्रकाश, वेतन, मजदूरी, अभिकर्ताओं का पारिश्रमिक, प्रसिद्धि, पत्र-व्यवहार और अवमूल्यन (Depreciation) इन बातों पर किस प्रमाण में व्यय होने वाला है इसकी योजना प्रारंभ से ही तैयार होनी चाहिये।

कानूनी नीति

न्यायालय (Court) के झमेले में पड़कर समय बरबाद करना व्यापारी संस्थायें पसंद नहीं करतीं। फिर भी जब मौका आ पड़ता है तब मुकाबला करना ही पड़ता है। अतः उस कार्य को सफलता पूर्वक निबाहने के लिये विक्रय-विभाग की कानूनी-नीति निश्चित की जानी चाहिये। वकील, कानूनी सलाहकार, कानूनी प्रतिनिधि, अधिकार आदि बातें स्पष्ट और व्यवस्थित रूप से निश्चित हो जाना अच्छा रहता है। इसका असर भी अच्छा होता है और लोग सार्थ को ठगने की प्रवृत्ति से आप ही आप निवृत्त रहने लगते हैं। व्यापारी प्रसंविदा करते समय या दो राष्ट्रों के उद्योगपतियों के बीच व्यापार-संविदा (Trade-Pact) करते समय ये कानूनी सलाहकार बहुत ही उपयुक्त सिद्ध होते हैं। आयकर, विक्रय-कर आदि झंझटों की अनावश्यक आपत्तियों से ये सलाहकार सार्थ को बचाते हैं।

विक्रय-प्रबंधक

विक्रय-प्रबंधक सार्थ का प्रमुख व्यक्ति है जिसकी निपुणता पर सार्थ की सफलता-असफलता निर्भर होती है। एक ज़माने में विक्रय-कला का उत्तम ज्ञान रखनेवाला उत्तम विक्रेता कुछ दिनों पश्चात् विक्रय-प्रबंधक बन जाता था; पर अब वह स्थिति नहीं रही। ज्ञान और अनुभव के साथ साथ प्रबंधन सम्बन्धी कुशलता और उसका वैज्ञानिक प्रशिक्षण भी ज़रूरी होता है। प्रबंधन-कार्य-निपुणता केवल अनुभव से हासिल करने के पुराने लम्बे मार्ग का अब कोई अवलंब नहीं करता। स्वाभाविक गुणों के साथ अध्ययन द्वारा कुछ गुण प्राप्त कर और उसे कुछ दिनों की अनुभूति की पुष्टि देकर चन्द वर्षों में सुविकसित विक्रय-प्रबंधक बनना अब असंभव नहीं। अब यह ज़रूरी नहीं कि व्ययसाय में बरसों गुजारने पर मालिक की दया से वह स्थान प्राप्त करें। अनुभवों से व्यक्ति क्या सीखेगा? उत्तम काम करना सीखेगा। दूसरों पर अधिकार चलाकर काम कराना, अनुभवों की अपेक्षा योग्यता और प्रशिक्षण पाकर ही सीखा जाता है, यद्यपि अनुभव का थोड़ा हिस्सा भी उसमें होता है। स्वयं अच्छा काम करना अलग बात है और दूसरों से अच्छा काम करा लेना अलग बात है। अतः यह ज़रूरी नहीं कि उत्तम कार्यकर्ता उत्तम प्रबंधक बनेगा ही।

यह आवश्यक नहीं कि विक्रय-प्रबंधक को सभी काम करना आना ही चाहिये। किन्तु वह कार्य किस प्रकार का है, किस गति से हो रहा है, गति योग्य है या धीमी, उसे करने के कौनसे अन्य मार्ग हो सकते हैं आदि बातों का उसे ज्ञान होना चाहिये। कार्य में यदि कोई खलल डाल रहा हो तो उसे पहिचान कर उसे चेतावनी देना और कोई अपेक्षाकृत अधिक सुन्दर कार्य करता हो तो उसकी प्रशंसा करने की कला उसे ज्ञात होनी चाहिये। विक्रय-प्रबंधक इस प्रकार की नीति अपनाये जिससे कार्यकर्ताओं की शक्ति के सर्वोत्तम उपयोग-द्वारा विक्रय-वृद्धि हो सके और सार्थ के साथ साथ उस कार्यकर्ता को भी आर्थिक लाभ हो। प्रत्येक कार्यकर्ता के गुण-दोषों का चित्र उसके स्मृति-पटल पर सदा सज्ज रहना चाहिये। किस कार्यकर्ता को कौनसा काम सौंपने से सार्थ का और उसका भी अधिक भला होगा इसका हल उसकी ज़बान पर सदा तैयार रहना चाहिये। यदि योग्य व्यक्ति को योग्य कार्य न सौंपा गया तो उस व्यक्ति की कार्य-शक्ति का अपव्यय होगा और सार्थ की आर्थिक हानि के साथ साथ कार्य-कर्ताओं में असंतोष भी फैलेगा।

विक्रय-प्रबंधक को अनेक प्रकार के कार्य करने पड़ते हैं। कई बार विक्रय-प्रबंधक अपनी विशेषता बनाये रखने के लिये कुछ विशेष कठिन कार्य का भार स्वयं संभालते हैं और अपने सहायकों में से किसी को उसका ज्ञान या प्रशिक्षण प्रदान नहीं करते। पर यह गलत तरीका है। विक्रय-प्रबंधक प्रतिदिन कार्यालय में जकड़ा नहीं रह सकता; उसे तो बहुरूपी स्वांग स्वाभाविक रूप से कर दिखलाना पड़ता है। कभी उसे प्रवासी-विक्रेता बन, अपने प्रवासी-विक्रेताओं की कठिनाइयाँ हल करनी होंगी, विक्रेताओं को प्रशिक्षा प्रदान करते समय अध्यापन कार्य को भी स्वीकार करना होगा, कभी अन्वेषक की पोशाक धारण कर विपणि-अन्वेषण का कार्य करना होगा और कभी योजक बनकर सार्थ की क्रय-विक्रय योजना प्रमंडल के सम्मुख रखनी होगी। अतः उसे अपने सहायकों को भी उन कार्यों का प्रशिक्षण देना चाहिये। उसी प्रकार उसे विक्रेता के साथ बड़ी कुशलता के साथ व्यवहार करना चाहिये। उनके कार्यों पर सदा योग्य ध्यान रखकर उन्हें ज्ञात कराना चाहिये कि प्रबंधक जागृत है। इसका मतलब यह नहीं कि प्रबंधक अनावश्यक कड़ी नीति का अवलंब करे। यदि किसी कारणवश वह किसी माह में योग्य कार्य नहीं कर पाया तो उसकी ओर संदेह की निगाह से नहीं देखना चाहिये। छोटी-सी गलती होनेपर अन्य विक्रेताओं के सम्मुख किसी विक्रेता को डाँट सुनाना उचित नहीं है। बार बार चिढ़कर विक्रेताओं को अपमानित करना बड़ी भूल है। इस सिद्धांत की अवहेलना करने से विक्रेताओं में असंतोष फैलेगा। अन्य विक्रेता भी यह समझ बैठेंगे कि उनकी भी छोटी-सी गलती होने पर विक्रय-प्रबंधक उन्हें कटु-वचन सुना देगा। साप्ताहिक या मासिक परिषदों में सभी विक्रेताओं को एकत्रित करने की अपेक्षा बारी-बारी से उनके प्रत्यक्ष क्षेत्र में जाकर उनकी मुलाकात लेना अधिक अच्छा। ऐसा यदि किया गया तो विक्रेता निःसंकोच भाव से भूत-कालीन विक्रय के और भविष्यकालीन योजनाओं के संबंध में चर्चा करेंगे और महत्वपूर्ण वर्तमान जटिल समस्याओं को प्रकट कर उस बारे में उसकी सलाह भी माँगेंगे।

अपने प्रतिस्पर्धियों के साथ विक्री-प्रबंधक का मित्रता का संबंध होना चाहिये।

विक्रय-प्रबंधक का कार्य

विक्रय-प्रबंधक विक्रय-विभाग का अत्यंत प्रभावशाली कर्मचारी है जिसकी कर्तृत्व-शक्ति पर सफलता पूर्णरूप से निर्भर होती है। यदि सफलता को चाँदनी

की सुखद, शीतल रोशनी की उपमा दी जाय तो उसे प्रदान करने वाली तारकावली की उपमा सब कर्मचारियों को देनी होगी और प्रबंधक होगा उस तारकावली को विभूषित करने वाला चाँद । विक्रय-आन्दोलन को आज प्रत्यक्ष समर का स्वरूप प्राप्त हो गया है जिसमें कल्पक और योजना-पटु सेना-नायक का कार्य विक्रय प्रबंधक को करना पड़ता है । एक समय ऐसा था कि उत्पादक उत्पादन-कार्य के पश्चात् वस्तु-वितरण के लिये कर्मचारियों को ढूँढा करते थे; पर आज तो अच्छे वितरक और विक्रेता प्राप्त होने की संभावना हो तो ही निर्माणी प्रस्थापित करना बुद्धिमानी समझी जाने लगी है । निर्माणी को शरीर का स्वरूप आया है और विक्रय-प्रबंध को प्राण का जिसके अभाव में निर्माणी और प्रेत में कोई अंतर नहीं रहता ।

विक्रय-प्रबंधन कार्य त्रिविध होता है । ग्राहकों की आदतें, भूषाचार, विचार-प्रणाली और रहन-सहन का स्वयं या 'अन्वेषण' विभाग द्वारा सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना उसका प्रमुख कार्य है । क्षेत्र-परिचय के अभाव में उसकी स्थिति उस नाविक के भाँति होगी जो सिवा किसी उद्देश्य और कील के अपनी नाव अथाह अपविचित सागर में छोड़ देता है और कठिनाइयों की लहरों के थपड़े खाते हुए किसी अनजान चट्टान पर टकराकर अपने आप को खत्म कर देता है । विपणि-अन्वेषण द्वारा प्राप्त जानकारी के आधार पर योजना बनाकर वस्तु की बनावट, प्रमाण, उत्पादन समय, मूल्य आदि संबंधी जानकारी उत्पादक को देना उसका दूसरा कर्तव्य है जिसे अदा कर वह निर्माणी को अनद्यावतता के धोखे से अलस रखता है और उत्पादन नीति में सहायक होता है । इस योजना के भरोसे निर्माणी करोड़ों रुपयों के यंत्र, इमारत, कच्चा माल, शक्ति तथा मजदूरी की बाजा लगा देती है, जिससे अच्छा मार्गदर्शन प्राप्त होने पर, सोने की वर्षा होगी । अन्यथा सारा संगठन डूबकर मृतावस्था को प्राप्त होगा । प्रबंधक का तीसरा कर्तव्य है मानवों मन का संचालन (Handle) करना । उसके पास सैकड़ों कर्मचारियों की फौज होती है । भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के भिन्न-भिन्न स्वभाव, कार्यक्षमता और मनोरचना होती है । कार्यकर्ताओं के गुणों का विक्रय-प्रबंधन-कार्य में योग्य उपयोग कर उनके दोषों को ढालते हुये संगठन को ईर्ष्या, द्वेष, झगड़े आदि दोषों से बचाना आसान कार्य नहीं है । मानव-मन जल्दी कलुषित होता है । हरेक की भावनाओं की कद्र कर, सबके स्वाभिमान को संभाल और उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके इस प्रकार के पारिभ्रमिक का

प्रबंध करना बड़ा जटिल कार्य है जिसके लिये सर्व-गुण-संपन्न व्यक्ति की ज़रूरत होती है। विक्रय-प्रबंधक का हजारों व्यापारी ग्राहकों से संबंध होता है। उन्हें योग्य सहूलियतें प्रदान कर संतुष्ट रखने की जिम्मेवारी भी उसे कुशलता के साथ अदा करनी पड़ती है।

विक्रय-प्रबंधक के कार्यों का उपर्युक्त विभाजन उस के संबंधों की दृष्टि से किया गया है। कार्य-नीति की दृष्टि से वे दो विभागों में विभाजित किये जा सकते हैं। प्रथम विभाग में उसके करा लेने के प्रबंधन (executive) कार्य आते हैं जिनमें उस की जिम्मेवारी इतनी ही होती है कि वह सार्थ के नियमानुसार कार्य करे और करा ले। इस कार्य में उस के अपने मत और विचार प्रणाली के लिये विशेष गुंजाइश नहीं रहती। विक्रय-विभाग के कार्यालयीन कार्य निश्चित स्वरूप के (Routined) होते हैं और उन्हें करने की पद्धति करीब-करीब निश्चित ही होती है। रोजमर्रा के कार्यों के अलावा अन्य कार्यों को करते समय विक्रय-प्रबंधक कार्य-नियंत्रक (Administrator) बन जाता है जिसमें निश्चित नियमों के साथ साथ उस की वैयक्तिक बुद्धिमत्ता के लिये काफी गुंजाइश होती है। नियमों की अवहेलना न करते हुये, परिस्थिति को देख वह कुछ निर्णय कर सकता है। इस प्रकार की निर्णय-निपुणता जिस विक्रय-प्रबंधक में होगी, वह अपनी सार्थ को शीघ्र ही प्रगति कलश पर पहुँचायेगा। इस कार्य के कारण विक्रय-प्रबंधक का महत्व इतना अधिक बढ़ गया है कि सार्थ उसका जीवन-आगोप अपने नाम करा लिया करती है।

विक्रय-प्रबंधक के प्रबंधक (Executive) और शासन संबंधी (Administrative) कार्यों का स्पष्ट विभाजन करना संभव नहीं है। उनमें से अधिकतर कार्य परस्परवलंबी भी होते हैं। फिर भी सामान्य रूप से प्रबंधीय (Executive) कार्य में पत्र-व्यवहार, आदेशानुसार वस्तुएँ भेजना, समंक उल्लेख पत्र, संग्रह और भाड़ागार, परिवहन इत्यादि कार्यों का समावेश होता है। शासन संबंधी (Administrative) कार्य में ग्राहकों से संबंध, अन्वेषण, विक्रय-सेवा, विज्ञापन, प्रदर्शन, विभाग के व्यक्तियों का चुनाव, नियुक्ति, प्रसंविदा, शिक्षा, इत्यादि कार्य सम्मिलित हैं।

विक्रय-प्रबंधक के विशेष कर्तव्य

अपने कार्य-क्षेत्र का गहन अध्ययन कर और अपने कर्मचारियों की कार्य क्षमता एवं स्वभाव की जानकारी प्राप्त कर योग्य व्यक्ति को योग्य कार्य सौंप

श्रम-विभाजन तत्त्व का सर्वोत्तम उपयोग करना विक्रय-प्रबंधक का सर्व प्रथम और महत्वपूर्ण कर्तव्य है। योग्य व्यक्तियों को चुनने का कार्य आसान नहीं है, मानस-शास्त्रप्रवीण व्यक्ति ही यह कार्य कर सकता है। मुलाकात के समय पर आये हुए प्रार्थी को ठीक ढंग से पहिचानना बड़ी खूबी का कार्य है। कार्य और उसका फल इन दोनों बातों का विश्लेषण कर उसके लिये योग्य व्यक्ति निश्चित करने समय उस व्यक्ति द्वारा पेश किये हुए सिफारिश पत्रों और प्रमाण-पत्रों की छान-बीन करना भी एक महत्वपूर्ण कार्य है।

इस प्रकार योग्य व्यक्तियों का चुनाव करने के पश्चात् व्यवसाय और उनकी योग्यता के अनुसार उनका वर्गीकरण कर उन्हें योग्य शिक्षा प्रदान करना दूसरा महत्वपूर्ण कार्य है। 'प्रशिक्षण मनुष्य को प्रवीण बनाता है'। प्रशिक्षण का द्विविध लाभ होता है। प्रशिक्षित विक्रेता अधिक विक्रय कर सार्थ को आर्थिक सहायता प्रदान करते हैं। साथ ही साथ उनकी वैयक्तिक योग्यता बढ़ने के कारण योग्य स्थान प्राप्त करते हैं जिसमें अधिक आर्थिक लाभ के अलावा उनका आत्मविश्वास और आत्मसम्मान विकसित होने से समाज में उन्हें प्रतिष्ठा का स्थान प्राप्त होता है।

अपने कर्मचारियों में अनुशासन-प्रेम पैदा कर चमुरवृत्ति का विकास करना आवश्यक है। प्रबंधक को चाहिये कि वह उनमें घुलमिलकर अपनत्व की भावना पैदा करे जिससे इस प्रकार का वातावरण पैदा हो जाय मानों सारे कर्मचारी किसी एक परिवार के सदस्य हों।

कर्मचारियों को परिपूर्ण बनाने के बाद अपनी वस्तुओं का पूर्ण ज्ञान अपने कर्मचारियों को भी प्रदान करना प्रबंधक का कर्तव्य होता है। वस्तु में अनंत गुण होते हुए भी यदि विक्रेता और विक्रय-प्रबंधक में उन गुणों का ग्राहकों के सम्मुख उद्घाटन करने की कला न हो तो क्या लाभ? विक्रय-प्रबंधक को यह समझना चाहिये कि हर विक्रेता सार्थ का महत्वपूर्ण हिस्सा है। उसे ज्ञान तथा प्रशिक्षण-दीप से आलोकित करना मानों सार्थ के वैभव को जगमगाना है। अपनी वस्तुएँ, कार्यप्रणाली और अपने नियम सभी कर्मचारियों को स्पष्ट रूप से मालूम कराने चाहिये।

विक्रय साधनों, मार्गों एवं क्षेत्रों का चुनाव गहन अध्ययन एवं प्रदीर्घ विचार के पश्चात् ही विक्रय-प्रबंधक करे। प्रवासी-विक्रेता कितने हों, वे किस प्रकार कार्य

करें और उनका प्रवास-समय के बीच सार्थ के साथ किस प्रकार संबंध रखा जाय आदि बातों की विस्तारपूर्वक योजना विक्रय-प्रबंधक को बनानी चाहिये।

अपने व्यापारी-ग्राहकों की क्रय-शक्ति और विक्रेताओं की विक्रय-शक्ति बढ़ाना यह विक्रय-प्रबंधक का कार्य काफी महत्व रखता है। उस कार्य में सफलता पाने के लिये कार्य किस प्रकार किया जाय, कौनसी वस्तुएँ किस क्षेत्र में और किस समय भेजी जायँ, उधार-विक्रय-सहूलियतें किन्हें और किस प्रमाण में दी जायँ आदि बातों का गहन अध्ययन इस संबंध में उपयुक्त होगा। अपने व्यापारियों के साथ किस प्रकार के संबंध रहेंगे इसकी एक नियम-पुस्तिका तैयार कर उसका उपयोग और महत्व व्यक्त किया जाय ताकि विक्रेता आसानी से उनका पालन कर सके। विक्रय प्रतियोगिताओं का उल्लेख विक्रय-प्रवर्तन विभाग में किया जा चुका है।

पत्र-व्यवहार पद्धति का निर्णय पूर्णतया विक्रय-प्रबंधक करता है। परिस्थिति, व्यक्ति और प्रसंग का महत्व देखकर पत्र-व्यवहार का प्रकार निश्चित किया जाना चाहिये। प्रमुख और महत्वपूर्ण पत्रों के उत्तर स्वयं विक्रय-प्रबंधक को लिखने चाहिये। अन्य सामान्य पत्रों की जिम्मेवारी वह अपने सहायकों पर सौंप सकता है, पर उसमें यह ध्यान रखा जाय कि पत्र पानेवाला अपना अपमान न समझ बैठे।

अवसाद, अभिवृद्धि और व्यापार चक्र-समय को ध्यान में रखते हुये सार्थ का वार्षिक तथा मासिक विक्रय-अभ्यंश निश्चित करना, क्षेत्र विभाजन, क्षेत्र अभ्यंश (Quota) तथा विक्रेता अभ्यंश निश्चित करना विक्रय-प्रबंधक का कर्तव्य है। परिस्थिति के अनुसार उसमें परिवर्तन हो सके, ऐसा ही उसका स्वरूप होना चाहिये। सामान्य रूपसे विक्रय-प्रबंधक सार्थ के कार्यालयीन कार्य में कितना समय व्यतीत करे और प्रत्यक्ष क्षेत्र-कर्मचारियों (Field-Workers) को सहायता प्रदान करने के लिये कितना प्रवास करे इसकी मोटी रूप-रेखा बना लेनी चाहिये।

विक्रय-प्रबंधक के लिये आवश्यक गुण

विक्रय-प्रबंधक के गुणों को संख्या में व्यक्त करना उतना ही असंभव है जितना चाँदनी रात में बैठ कर तारों की गिनती कर दिखाना। विक्रय-प्रबंधक के गुणों को नापा-तौला नहीं जा सकता, उसकी कल्पना मात्र दी जा सकती है। यह बात सर्व प्रथम ध्यान में रखना चाहिये कि विक्रय-प्रबंधक एक असामान्य व्यक्ति हो। विक्रय-विभाग में एक ओर जटिल आर्थिक समस्याएँ होती हैं और

और अन्य विक्रेताओं को भी भड़काकर गहरी निर्माण कर सार्थ के प्रतिस्पर्धी से जाकर मिल सकते हैं।

विदेशी विक्रेता को सार्थ के कार्य के लिये नियुक्त करना या नहीं इस संबंध में काफी मतभेद है। श्री सी. एल. बोलिंग की स्पष्ट राय है कि 'देशी ग्राहक और विदेशी विक्रेताओं के बीच सर्व साधारण रुचि निर्माण नहीं हो सकती'। आप का यह कथन काफी हद तक सत्य है। भिन्न भाषा, भिन्न रिवाज और भिन्न मनोवृत्ति में पले हुए विक्रेता किस काम के? अपने विचारों को व्यक्त करने में वे असफल सिद्ध होंगे और साथ ही साथ ग्राहकों की स्वाभाविक स्वदेशी की भावना भी दुखायी जायगी। जहाँ पर विक्रय-कला का विकास नहीं हुआ है उन देशों में विदेशी तज्ञ विक्रेता उपयुक्त हो सकते हैं। ग्राहकों की अपेक्षा अपने विक्रेताओं को प्रशिक्षण देने के लिये उनका अधिक अच्छा उपयोग होगा। विदेशी विक्रेता कभी कभी एक आकर्षण की बात भी हो सकते हैं, जिनका उपयोग विक्रय-वृद्धि के लिये किया जा सकता है। फिर भी विदेशी इंजीनियर, प्रबंधक या तज्ञ जिस हद तक उपयुक्त हो सकते हैं, उस हद तक विदेशी विक्रेता नहीं।

विक्रेता के स्थान पर भर्ती किये जाने वाले व्यक्ति में विक्रय-कला के प्रति स्वाभाविक प्रेम होना चाहिये। केवल पेट पालने के लिये या अन्य कोई व्यवसाय प्राप्त न होने के कारण परिस्थितिबश विक्रेता बनना चाहनेवाले सच्चे विक्रेता नहीं हो सकते। दिल में यदि लगन न हो तो स्वाँग कब तक किया जा सकेगा? पढ़ाये पूत दरबार नहीं चढ़ते। अतः विक्रय-कला की स्वाभाविक प्रवृत्ति उस के मन में होनी चाहिये। इस प्रवृत्ति का योग्य पोषण करने के लिए प्रारंभिक विक्रय-कला-प्रवण मनोरचना भी आवश्यक है। तीखे स्वभाव के, कटु-वाणी के और सनकी दिमाग के व्यक्ति असामान्य होते हैं जिनको विक्रेता के नाते भर्ती करना मूर्खता है।

मन और स्वभाव अति योग्य होने पर भी स्वास्थ्य अच्छा न होगा तो उन गुणों का उपयोग न हो सकेगा, वे केवल 'लंका की ईंटें' बनकर ही रह जायेंगे। आदेश एकत्रित करने लिए विक्रेता को काफी प्रवास करना पड़ता है जिसमें शीत-वायु-वर्षा-भूप आदि निसर्ग-प्रकोपों से सदा सामना करना पड़ता है। समय पर जो भी चीजें प्राप्त हों, उनसे अपनी क्षुधा शांत करनी पड़ती है और ओढ़ने-बिछाने के अपर्याप्त साधन होने पर भी समय निकालना पड़ता है। इन सब दिक्कतों का सामना अच्छे स्वास्थ्य द्वारा ही किया जा सकता है। अस्वस्थ शरीर

में अस्वस्थ मन का ही अस्तित्व होता है जिसके कारण चिढ़-चिढ़ापन पैदा होकर विक्रेता ग्राहकों के रोष का कारण बन जाता है। उनमें शांति और जीवट-पन के साथ प्रयत्न कर वार्तालाप को विक्रय में परिवर्तित करने की ताकत नहीं होती। अतः अच्छे भेषजिकों-द्वारा निकोपावस्था का प्रमाण-पत्र पेश करने के बाद ही विक्रेता को भर्ती किया जाना चाहिये। तन्दुरुस्त विक्रेता अच्छा कार्य करेंगे, प्रतिष्ठा पा सकेंगे, सार्थ का भी आर्थिक लाभ करायेंगे और ग्राहक भी संसर्ग-जन्म रोगों से बचेंगे।

विक्रेता के स्थान पर भर्ती किये जानेवाले व्यक्तियों की आदतें अच्छी होनी चाहिये। स्वच्छता, अपशब्दों से अलिप्तता, निषिद्ध भोजन का त्याग और व्यसन रहितता रखनेवाले व्यक्तियों को ही विक्रेता बनाया जाना चाहिये। प्रवासी-विक्रेता को घरेलू जीवन का आनन्द कम मिलता है। वैसी हालत में भी अपनी वासनाओं पर संयम रख व्यवहार करने की उसमें क्षमता होनी चाहिये, अन्यथा अपना वैयक्तिक चारित्र्य खोकर सार्थ को भी वह ग्राहकों की आँखों में गिरा देगा।

विक्रेता की मनोरचना विक्रय कार्य में बड़ा महत्त्व रखती है। रोनी-सी सूरत लेकर निराशा के उद्गार सदा व्यक्त करनेवाले विक्रेता की अपेक्षा संकट-समय में भी हँसते हँसते कार्य कर अपनी मधुरवाणी से ग्राहकों के मन को लुभानेवाले ग्राहक नियुक्त करना ही सार्थ की दृष्टि से अच्छा होगा। ग्राहकों द्वारा किये गये सत्य-असत्य दोषारोपण से विचलित न होते हुये उनका विश्लेषण कर असत्य आरोपों का स्पष्टीकरण देकर सत्य आरोपों को स्वीकार कर त्रुटियों को हटाने के आश्वासन देना जिसकी मनोवृत्ति बरदाश्त कर सकती है ऐसे शांत प्रवृत्ति के व्यक्तियों को ही विक्रेता बनने का अधिकार है। 'निराशा' विक्रेता की सबसे बड़ी कमजोरी है अतः भर्ती के समय पर ही यह ठीक तरह देख लिया जाय कि प्रार्थी उस दोष से लिप्त तो नहीं है।

विक्रेता को भर्ती करते समय प्रबंधक को अपने आपको ग्राहक की स्थिति में रखकर प्रश्न पूछना चाहिये 'क्या यह व्यक्ति विक्रेता के नाते मुझे पूर्ण संतोष दे सकेगा' ?

नये भर्ती होनेवाले विक्रेता से यह अपेक्षा नहीं की जाती कि उसे वस्तु का पूर्ण ज्ञान हो, फिर भी उस वस्तु की सामान्य जानकारी उसे मालूम होनी चाहिये। वैसे ही यदि वस्तुएँ तांत्रिक स्वरूप की (Technical) हों तो उसके लिये महाविद्यालयीन या अन्य संस्था में तांत्रिक ज्ञान प्राप्त किये हुए व्यक्ति को

चुनना अधिक अच्छा, जिससे उसके आगे के प्रशिक्षण का समय काफी हद तक बच जाय ।

दूसरी सार्थों में कार्य करनेवाले अनुभवी विक्रेताओं को थोड़ासा ऊँचे स्थान का प्रलोभन दिखलाकर अपने सार्थ की ओर आकृष्ट करने की प्रवृत्ति कहीं कहीं पायी जाती है । इसके कारण प्रशिक्षण का समय और व्यय काफी प्रमाण में बच जाता है । पर अनुभवी होने के कारण उन्हें वेतन भी अधिक देना पड़ता है । अतः अधिक वेतन के बदले में अधिक विक्रय प्राप्त करने की उम्मीद हो तो ही इस पद्धति का अवलंब करना चाहिये, अन्यथा नहीं । दूसरी बात यह है कि यदि अपनी प्रतिस्पर्धी सार्थ से विक्रेता लिये जायँ तो उससे आपसी संबंधों में कटुता आ सकती है । अतः इस नीति का अवलंब सावधानी के साथ और उस सार्थ की अनुमति से ही किया जाना चाहिये । यदि वह अन्य सार्थ जिसके विक्रेता को हम अपनी सार्थ में भर्ती करना चाहते हैं, उसी व्यवसाय की न हो और प्रतिस्पर्धी न हो तो इस प्रकार की अनबन की संभावना कम रहती है ।

दूसरी सार्थ से लिये गये निपुण विक्रेता भी अपनी सार्थ में असफल हो सकते हैं । किसी खास वातावरण के कारण उसे यदि सफलता मिली हो और वैसा वातावरण नयी सार्थ में न हो तो उसकी असफलता निश्चित-सी रहती है । अपने प्रतिस्पर्धी से आया हुआ विक्रेता बहुधा असफल ही रहेगा । जिसने उस सार्थ की अबतक प्रशंसा और हमारी सार्थ की है अप्रशंसा की है उसके मुँह से अब अपनी सार्थ की प्रशंसा स्वाभाविक रूप से कैसे निकल सकती है ? वैसे ही जो किसी एक सार्थ को धोखा देकर निकल जाता है, वह अपनी सार्थ को भी कब धोखा देगा, नहीं कहा जा सकता ।

अपने अल्पशो-विक्रेता या उनके सहायकों में से कोई प्रवासी-विक्रेता का कार्य करना पसंद करे तो उन्हें सहूलियत दी जानी चाहिये । विक्रेता के नाते उन्हें अनुभव होता है और अपनी सार्थ तथा वस्तुओं के बारे में पर्याप्त जानकारी भी होती है । पर प्रवास की दिक्रत सहन कर उनमें कदांतक क्षमता है इसे ज़रूर देख लेना चाहिये ।

अपनी सार्थ के कर्मचारियों में से भी, जिनमें लिपिक, कार्यालयीन-विक्रेता, प्रदर्शक और निर्माणी-कर्मचारी भी सम्मिलित हैं, यात्री-विक्रेता नियुक्त किये जा सकते हैं । सार्थ की नीति से परिचित होते हुए भी, बाहरी दुनिया से उनका विशेष संपर्क न होने के कारण रोजमर्रे के कार्य (Routine work) के अलावा

अधिक वे नहीं जानते। अतः उन्हें प्रारंभ से ही प्रशिक्षण देना ज़रूरी होता है। बाहर के अनुभवी विक्रेता और अपने कार्यालय के अननुभवी कार्यकर्ता इन दोनों के बीच किसे प्रथम स्थान दिया जाय यह बड़ी कठिन समस्या है जिसका हल कोई भी ग्रंथकार नहीं दे सकता। समय और परिस्थिति देखकर चतुर विक्रय-प्रबंधक को ही इसका निर्णय लेना पड़ेगा। सार्थ के भीतर उत्तम वातायन-प्रदर्शन कर उनके आधार पर विक्रय करनेवाले विक्रेता चन्द न्यादर्श (Samples) के आधार पर बाहर जाकर विक्रय करने में सफल होंगे ही, ऐसा नहीं है। विविध विभाग की विविध और विचित्र समस्याएँ होती हैं।

अपने विक्रेताओं द्वारा सिफारिश किये गये व्यक्तियों में से विक्रेता चुनना अच्छा भी है और धोखे का भी। ऐसे विक्रेताओं के लिए सिफारिश करनेवाला अपना विक्रेता जिम्मेदार रहता है, फिर भी लोभवश अपने अयोग्य रिश्तेदारों की या रिश्त देनेवाले व्यक्तियों की वह सिफारिश कर सकता है। इन दोषों की गुंजाइश न हो तो अपने विक्रेताओं द्वारा सुझाये गये व्यक्ति का सहानुभूति पूर्वक विचार किया जाना चाहिये।

विद्यालयों और महाविद्यालयों से सीधे विक्रेता चुनने की प्रवृत्ति आजकल प्रबल हो रही है जिसके पक्ष में प्रबंधकों का कथन है कि उन्हें बेदाग (Clean-Slate) मनोवृत्ति के व्यक्ति प्राप्त हो सकते हैं। उनके मन पर प्रशिक्षण का प्रभाव सुन्दर और योग्य रीति से डाला जा सकता है। महाविद्यालयों ने भी प्रात्यक्षिक शिक्षा, उद्योग प्रेरणा, सेवा-योजनालय (Employment Bureau) आदि विभाग खोलकर सार्थों की यह माँग पूरी करने का प्रयत्न प्रारंभ किया है। इन उत्साही, जिज्ञासु युवकों का प्रबंधकों को सदा स्वागत करना चाहिये, बशर्ते कि उनके दोषों से वे पूर्ण-परिचित हों। ये युवक अनुभव शून्य हैं, और अनावश्यक उत्साह तथा आत्मश्रद्धा के शिकार बन सकते हैं यह बात प्रबंधक को हमेशा ध्यान में रखनी चाहिये।

अपनी वस्तुओं के ग्राहकों द्वारा कभी कभी किसी व्यक्ति की सिफारिश की जा सकती है। इसका मतलब यह है कि वह व्यक्ति लोकप्रिय है। पर व्यापार में केवल लोकप्रियता उपयोगी नहीं हो सकती। विक्रेता के गुणों का अंश उस में हो तो ही ऐसी सिफारिश को महत्व दिया जाना चाहिये।

अपने सहकारी व्यवसायी द्वारा सिफारिश किये गये व्यक्तियों का विचार सहानुभूति पूर्वक किया जाना चाहिये, क्योंकि उनका मत व्यवसाय-अनुभवपर

दूसरी ओर मानवी भावनाओं से परिपूर्ण विक्रेता और व्यापारी ग्राहक होते हैं। इस गंगा-जमुना के संगम पर सरस्वती के समान अपना अज्ञात अस्तित्व रखकर प्रयाग की महिमा निर्माण करना विक्रय-प्रबंधक का कार्य है।

विक्रेता के गुणों का विकसित स्वरूप विक्रय-प्रबंधक में होना आवश्यक है। स्वास्थ्य, गहराई (Integrity), बुद्धिमत्ता, उद्योगशीलता, अनुभव, जिज्ञासु प्रवृत्ति, न्याय-प्रवणता, अध्ययन रुचि, उत्साह, समझनेकी शक्ति, अपने ज्ञान का पूर्ण उपयोग कर योग्य निष्कर्ष निकालना, जीवटपन, योजकता आदि गुणोंका संग्रह विक्रय-प्रबंधक के पास होना चाहिये। इन गुणों के अलावा प्रबंधन कार्य-क्षमता (Managing capacity) यह गुण विक्रय-प्रबंधक का अविभाज्य अंग है। प्रबंधन-कार्य-क्षमता में आयोजन करने की योग्यता, कार्य प्रारंभ करने का साहस, दूरदर्शिता, किसी भी विकट समस्या को समझने की शक्ति, सहकारी कार्यकर्ताओं में कार्य का योग्य वंटन करने की कुशलता ये गुण समाविष्ट हैं।

विक्रय-प्रबंधक के उपर्युक्त गुणोंमें से कुछ प्रमुख गुणों पर प्रकाश डालना सुसंगत होगा।

प्रबंधक के कार्यों में सब से महत्वपूर्ण कार्य यह है कि अपने व्यक्तित्व के बलपर वह कम व्ययमें अधिक से अधिक विक्रय करे; अतः विक्रय-प्रबंधक का व्यावहारिक आदर्शवादी होने के साथ साथ उसमें विक्रय बढ़ाने के लिये मौलिक विचार करने की योग्यता होना अति आवश्यक है। उत्पादन विभाग कई गुणों से अलंकृत और अनोखी वस्तुका उत्पादन कर सकता है और यह भी निर्विवाद है कि वस्तु अपने गुणों की शक्ति पर विपणि में बिकेगी, परंतु यह भुलाया नहीं जा सकता कि यदि विज्ञापन-विभाग और विक्रय-विभाग का कार्य शिथिल रहा तो विपणि पर प्रतिस्पर्धा का कब्जा हो जायगा। विक्रय-प्रबंधक का यह कर्तव्य है कि संसार में और विशेषतः व्यापारी जगत में होनेवाले परिवर्तन का अध्ययन गहराई से करे और समय समय पर बदलने वाली स्थिति का उचित फायदा उठाकर व्यापार को बढ़ाने का प्रयत्न करे। यदि किसी सार्थ के विक्रय-प्रबंधक में स्वयं सोचने की शक्ति नहीं है और वह केवल दूसरों की नकल या अनुकरण ही कर सकता है, तो वह सार्थ प्रतिस्पर्धा में खड़ी नहीं रह सकती।

विक्रय-प्रबंधक अपने कार्य को पूर्ण आत्मविश्वास के साथ सफलता की पूर्ण आशा रखकर करे। आत्मविश्वास का मतलब आत्मश्लाघा नहीं है। स्वाँग का

भंडाफोड़ कभी न कभी अवश्य होगा। आत्मविश्वास की दीवार ज्ञान की मजबूत चट्टान पर खड़ी करना आवश्यक है। अतः प्रबंधक को वस्तुओं का, विपणन का, व्यापारी की परिस्थिति का और प्रबंधन-तत्त्वों का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

आत्मविश्वास का साहस के साथ घनिष्ठ संबंध है। कार्य-धुरंधरता के लिये साहस का होना अनिवार्य है। साहस का मतलब यह है कि कठिन से कठिन परिस्थिति में भी सिवा किसी घबराहट के अपनी कार्य-शक्ति को बनाये रखना। अविचारपूर्ण कार्यजोश को साहस नहीं कहा जा सकता। वह अविचार-मात्र है। कठिनाइयों का धीरज और शान्तचित्त से सामना करना आवश्यक होता है। विक्रय-प्रबंधक में अग्रसर होकर उत्थान करने का साहस भी होना चाहिये। विचार-पूर्वक बनायी गयी योजना पर यदि उसका पूर्ण विश्वास हो तो अपनी सारी शक्ति-बल देकर उत्साह के साथ उसे कार्यान्वित करने की कार्य-क्षमता उस में होनी चाहिये।

उत्साह संपादन करने के लिये विक्रय-प्रबंधक को अपने आप में, सार्थ में, कर्मचारियों में, और वस्तुओं में विश्वास होना चाहिये। श्री डब्यू. एच. कार्टिंग-हैम ने उत्साह की तुलना स्वदेशाभिमान के साथ की है। आप का कथन है कि जिस प्रकार सेना में स्वदेशाभिमान का होना आवश्यक है, उसी प्रकार व्यापार में उत्साह का अस्तित्व परम आवश्यक है। समान योग्यता के सौ निरुत्साही कर्मचारियों की अपेक्षा दस उत्साही कर्मचारी कई गुना अच्छे होते हैं।

विक्रय-प्रबंधक में सर्व-गुण-संपन्न होते हुए भी यदि गणित-शास्त्र-ज्ञान का अभाव हो तो उन गुणों का महत्त्व नहीं के समान ही होगा। योजनाएँ और अनुमान-पत्रक तैयार करने के लिये गणित-शास्त्र का ज्ञान अनिवार्य होता है। यदि कोई अनुभवी विक्रेता, जो गणित-शास्त्र-ज्ञान से अनभिज्ञ है, विक्रय-प्रबंधक के स्थान पर नियुक्त कर दिया जाय तो कुछ ही दिनों में वह स्वयं अपनी असफलता महसूस करने लगेगा।

शांति के साथ सोचकर कार्य करनेवाला विक्रय-प्रबंधक अपने जीवन में सफल होता है। उतावले और क्रोधी प्रबंधक को सफलता की उम्मीद कभी नहीं करनी चाहिये। शांत और तटस्थ वृत्ति से सोचकर सभी कर्मचारियों के प्रति समान न्याय-दृष्टि रखना विक्रय-प्रबंधक के लिये आवश्यक गुण माना जाता है। उसे यह ध्यान में रखना चाहिये कि प्रबंधन की जिम्मेवारी उसने स्वेच्छा से स्वीकार की है जिसे अपने कार्यकर्ताओं के सहकार से ही निभाया जा सकता है।

विक्रय-प्रबंधक में अध्यापक के गुण आवश्यक हैं। उसे विद्यालयों-महाविद्यालयों में पढ़ाने का कार्य नहीं करना है, किन्तु विद्यालयों में पढ़ी हुई किताबी विद्या का प्रत्यक्ष प्रयोग करना है जो प्रथम कार्य से कई गुना जटिल है। अपने ग्राहकों के मन पर प्रभाव डालनेवाले विक्रेता निर्माण करना कोई सरल कार्य नहीं है। इसीलिये विक्रय-प्रबंधक को जादूगर, विश्लेषक, जानकारी तज्ञ, तथ्यानिधि, उत्साही दार्शनिक (Vision) की उपमा दी जाती है।

विक्रेता की भर्ती और चुनाव

(Recruitment & Selection of Salesman)

अपनी कार्य-पद्धति को स्वयंप्रेरणा से और सफलतापूर्वक कार्यान्वित कर सकनेवाले विक्रेता चुनना एक कलापूर्ण और महत्वपूर्ण कार्य है। अपने व्यक्तित्व और गुणों को सार्थ की प्रयोगशाला में समर्पित कर सार्थ की प्रतिष्ठा साधना में संलग्न होनेवाले विक्रेता पथर के समान कठिन परिस्थिति में भी सफलता एवं विकास के झरने निर्माण कर सकते हैं। अतः विक्रेताओं की भर्ती करते समय उनकी शारीरिक क्षमता और मानसिक विकास इन दो बातों की ओर सूक्ष्म ध्यान दिया जाना चाहिये। विक्रेताओं में अत्यंत महत्व का गुण है 'सहिष्णुता'। विक्रेताओं को साथ में मिलकर चमु-प्रवृत्ति से कार्य करना पड़ता है, अतः अपने घमंड को भूल सार्थ के स्वरूप में समरस होने की जिसकी मनोवृत्ति नहीं होगी, वह व्यक्ति विक्रय-विभाग में कोई काम नहीं आ सकता। जहाँ चार बर्तन होंगे वहाँ खड़खड़ाहट भी होगी, इस बात का जिन्हें ज्ञान है और जिनकी चमुप्रवृत्ति से कार्य करने की तैयारी है, उन्हें ही विक्रेता के नाते भर्ती किया जाना चाहिये। मतभिन्नता के समय पर भी अपने मत को व्यक्त करने के पश्चात् मन पर संयम रख विक्रय-प्रबंधक द्वारा निर्धारित की गई नीति (जो उसे अनुचित महसूस होती हो) का अवलंब कर जो झगड़ों से निवृत्त रह सकते हैं ऐसे सज्जनों की ही विक्रेता के स्थान पर नियुक्ति योग्य होंगी।

विक्रेताओं के स्थान के लिये भर्ती करते समय प्रार्थी (Candidate) में कौन-कौन से गुण हों इसकी स्पष्ट और नपे-तुले शब्दों में रूपरेखा देना संभव नहीं है। वैसे ही मुलाकात (Interview) के लिये आये हुए प्रार्थी के गुणों को और कार्यक्षमता को प्रारंभ में ही तराजू में रखकर तोला भी नहीं जा सकता। अतः विक्रय-प्रबंधक को अपनी चुनाव-निपुणता पर ही निर्भर रहना पड़ता है। अनुभवों के आधार पर एक मोटे स्वरूप की चौखट-मात्र बनाई जा सकती है।

विक्रेता की भर्ती के समय प्रथम प्रश्न आता है उम्र का । कुछ सार्थों का यह नियम होता है कि किसी खास उम्र से कम उम्र के विक्रेता वे नियुक्त नहीं करते हैं । इस नीति का अवलंब इसलिये लिया जाता है कि अनुभव-पक्व और शांत दिमाग से सोचनेवाले विक्रेता प्राप्त हों । संभव है कि यह नीति कम उम्र के होशियार और कार्य-पटु विक्रेता के प्रति अन्यायप्रद हो; क्योंकि मनोवृत्ति और कार्य-शक्ति उम्र पर ही निर्भर होंगी ऐसा नहीं । अतः उम्र की मर्यादा का नियम होते हुये भी कम उम्र का अपवादार्थक उत्तम कार्यकर्ता यदि मिल सकता हो तो उसका सहानुभूतिपूर्वक विचार किया जाना चाहिये ।

कुछ सार्थ किसी खास उम्र से अधिक वृद्ध व्यक्तियों को विक्रेता के स्थान पर नियुक्त नहीं करना चाहती; क्योंकि वृद्धावस्था के कारण उनमें कार्यशैथिलता शीघ्र आने की संभावना होती है । पर यहाँपर भी यह ध्यान रखना चाहिये कि कुछ वृद्ध युवकों से भी अधिक फुर्तीले और कार्यक्षम होते हैं । ऐसे उत्साही वृद्धों के अनुभवों का लाभ जरूर उठाया जाना चाहिये । यह बात सर्वमान्य है कि अनुभवपूर्ण विक्रेता अन्त में बड़े घमंडी हो जाते हैं और अन्य विक्रेताओं को तुच्छ निगाह से देखने लगते हैं । इतना ही नहीं, विक्रय-प्रबंधक पर भी वे अपना प्रभाव जमाने की कोशिश करते हैं और अन्य कर्मचारियों पर धाक जमाये रखना चाहते हैं । उम्र के कारण और पुराने वातावरण में पलने के कारण वे आधुनिकता से दूर भागते हैं और सार्थ को अनचाहत बनाये रखना चाहते हैं । उनमें माना-पमान की तीव्रतम भावनाएँ होती हैं ।

अतः वृद्धों की कमजोरियों से और युवकों के उतावलेपन से सार्थ को बचाते हुए उनके अनुभवों और उत्साह का लाभ उठाते हुए सार्थको सफल बनाने की दृष्टि से विक्रेताओं को भर्ती किया जाय । यदि सार्थ पुरानी हो और उसकी ख्याति (Good Will) अच्छी तरह प्रस्थापित हो गयी हो तो जिन में 'व्यक्तित्व' की मात्रा जरा कम है ऐसे विक्रेता उपयोगी हो सकते हैं । किन्तु यदि सार्थ नयी हो तो अनुभवी और सार्थ की ख्याति प्रस्थापित करने योग्य विक्रेताओं को ही भर्ती करना होगा ।

विक्रेताओं को भर्ती करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि उनमें 'ईमानदारी' भरपूर हो । उन में कपट की भावना पैदा हुई तो वे करोड़ों की हानि कर सार्थ को तबाह कर सकते हैं, उसकी प्रतिष्ठा को मटियामेट कर सकते हैं

स्थित होता है और सहकार के नाते उसका संबंध ज़रूरी होता है। उद्योग-व्यवसाय की प्रशिक्षण संस्थाएँ भी अपने छात्रों की सिफारिश करती हैं। उन पर यथोचित विचार किया जाय।

प्रार्थियों को नियुक्त करते समय यह देख लिया जाय कि उनकी नियुक्ति भौतिक वस्तुएँ (Tangible Goods) बेचने के लिये की जा रही है या व्यावसायिक सेवाओं (Services) के लिए। जो विक्रेता वस्तुएँ बेचता है वह वस्तु प्रदर्शन द्वारा अपना छोटासा भाषण भी अधिक प्रभावी बना सकता है। इसके विपरीत सेवाओं का व्यवहार करने वाले (अधिकोषण, आगोप) विक्रेता को केवल अपने ज्ञान और भाषण-शक्ति के सहारे अपनी सेवा की महिमा प्रस्थापित करनी पड़ती है, अतः उसमें अभिव्यंजना शक्ति और शब्द भांडार के गुण अधिक मात्रा में होने चाहिये। विक्रेता चुनने के दो मार्ग हैं :—

१. विज्ञापन द्वारा प्रार्थना-पत्र निमंत्रित कर

२. सार्थ के कर्मचारियों में से

विज्ञापन द्वारा दो प्रकार से प्रार्थना-पत्र निमंत्रित किये जाते हैं। प्रथम प्रकार में केवल 'विक्रेताओं की आवश्यकता है' इतना ही उल्लेख होता है। दूसरे प्रकार में प्रार्थना-पत्र विपत्र ही छाप दिया जाता है या किस प्रकार के व्यक्ति (जिसमें उम्र, योग्यता, अनुभव, वेतन का उल्लेख होता है) चाहिये इसका पूरा व्यौरा दिया जाता है। दूसरी पद्धति अच्छी है, क्योंकि अनावश्यक प्रार्थना-पत्रों की झंझटों से विक्रय-प्रबंधक बच जाता है। योग्य प्रार्थना-पत्र आने के कारण श्रम और समय की बचत होती है।

मुलाकात में प्रत्यक्ष जाँच करना (Taking An Interview)

किसी व्यक्ति को विक्रेता के नाते चुनने के बाद उस पर प्रशिक्षण और प्रारंभिक व्यय करना पड़ता है। यह सार्थ का एक प्रकार का निवेश (investment) है। यदि विक्रेता प्रशिक्षण के पश्चात् असफल सिद्ध होगा, तो उसके लिए किया गया सारा व्यय व्यर्थ जायगा जिसकी पूरी जिम्मेवारी विक्रय-प्रबंधक पर होगी। यदि प्रारंभ में ही विक्रय-प्रबंधक सोच-विचार कर विक्रेता का चुनाव करता है तो इस प्रकार सार्थ को हानि नहीं उठानी पड़ती।

कार्य का विश्लेषण कर उसके लिये किन गुणों के विक्रेताओं की आवश्यकता है यह विक्रय-प्रबंधक जान ले और प्रत्यक्ष जाँच (Interview) के लिए आवे

हुए प्रार्थियों के गुणों का अध्ययन कर उनमें से कौनसा व्यक्ति कार्य के लिए योग्य है यह निश्चित करे। प्रत्यक्ष जाँच (Interview) में पूछे गये प्रश्नों के उत्तर कौनसा व्यक्ति किस प्रकार देता है इस ओर सूक्ष्म ध्यान दिया जाय और उन उत्तरों के आधार पर यह निश्चित किया जाय कि किसकी प्रवृत्ति उक्त कार्य में सफलता पाने की दीखती है और किस की विफलता पाने की।

सामान्यतः विज्ञापन-द्वारा प्रार्थना-पत्र मँगाये जाते हैं। उसके पश्चात् मनोवैज्ञानिक लिखित-जाँच की जाती है। तदनंतर प्रत्यक्ष जाँच (Interview) की जाती है और बाद में नियुक्ति की जाती है। इस प्रणाली में सार्थ अपनी आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर सकती है।

प्रार्थना-पत्र इस प्रकार का हो कि प्रार्थी की प्रायः सारी जानकारी उसके द्वारा उपलब्ध हो सके। उसमें मोटे तौर पर नाम, उम्र, शरीर-रचना और स्वास्थ्य, वातावरण की जानकारी, शैक्षणिक तथा पूर्वानुभव और वांछी कार्य में रुचि का उल्लेख होना चाहिये।

प्रार्थना-पत्र का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाना चाहिये। इस अध्ययन में यदि कोई प्रार्थी सार्थ के लिए निरुपयोगी सिद्ध हुआ तो उसे प्रत्यक्ष जाँच (Interview) के लिए भी निमंत्रित करने की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी।

प्रार्थना-पत्र का अध्ययन करते समय निम्न बातें ध्यान में रखी जायँ :

१. उम्र : यह देखा गया है कि २७ और ३७ वर्ष के बीच के उम्र के प्रार्थी अधिक सफल होते हैं।

२. विवाहित-विवाहितः विवाहित या जिन पर एक से अधिक व्यक्ति अवलंबित हैं ऐसे विवाहित व्यक्तियों की अपेक्षा जिस अविवाहित व्यक्ति पर एक ही व्यक्ति अवलंबित है, ऐसे व्यक्ति अधिक सफलता पाते हैं।

३. जिसकी आर्थिक स्थिति संतोषजनक है उस व्यक्ति के लिये सफलता की अधिक गुंजाइश होती है।

४. यदि प्रार्थी का पहले का व्यवसाय सार्थ के वर्तमान व्यवसाय से संबंधित ही हो तो उसे सफलता आसानी से हासिल हो सकेगी।

५. अत्यल्प या अत्यधिक अनुभववाले प्रार्थी असफल हुआ करते हैं; अतः ७ से १३ वर्ष का अनुभव योग्य माना जाता है।

६. उपाधि-परीक्षा या उसके करीब पास का ज्ञान और साथ ही साथ यदि अनुभव हो तो सफलता निश्चित प्राप्त होती है ।

७. जिसने संचालन (Administrative) कार्य किया है, उसे सफलता की अधिक उम्मीद होती है ।

कभी-कभी प्रार्थियों की मनोवैज्ञानिक परीक्षा ली जाती है । ऐसी परीक्षाओं में जो प्रश्न पूछे जाते हैं उनका क्या उत्तर मिलेगा इसकी कल्पना विक्रय-प्रबंधक को प्रारंभ से ही होनी चाहिये, ताकि प्रार्थी-द्वारा दिया गया उत्तर कहाँ तक योग्य है इसे वह समझ सके और प्रार्थी के गुणों की जाँच कर सके । सामान्यतः प्रार्थी से कुछ छोटे-छोटे प्रश्न पूछे जाते हैं जिनके उत्तरों से प्रार्थी की विचार-गति, वर्तमान घटनाओं से परिचय आदि बातोंकी जाँच की जाती है । प्रार्थी से ऐसे ही प्रश्न पूछे जायँ जिनके उत्तरों के आधार पर प्रार्थी के गुणों की जाँच की जा सके । मनोवैज्ञानिक परीक्षा के बारे में विद्वानोंका मतभेद है । कुछ विद्वान उसे समय एवं प्रयत्नों की बरबादी समझते हैं । उनका कथन है कि प्रार्थी-द्वारा दिये गये उत्तरों के आधार पर उसके किन गुणों की जानकारी प्राप्त हो सकती है इसका ज्ञान प्रायः विक्रय-प्रबंधक को नहीं होता । वे सोचते हैं कि गुणों की जाँच तो प्रत्यक्ष परिचय (Interview) में भी की जा सकती है; मनोवैज्ञानिक परीक्षा की आवश्यकता ही क्या है ? अन्य विद्वानों का मत है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षा में प्रार्थी के बुद्धिमत्ता-प्रदर्शन की जाँच होती है और यदि प्रार्थी-द्वारा दिये गये उत्तरों से विक्रय-प्रबंधक कुछ न समझ रहा हो तो वह उसका दोष है, मनोवैज्ञानिक परीक्षा का नहीं ।

मनोवैज्ञानिक परीक्षा के बाद या मनोवैज्ञानिक परीक्षा न लेनी हो तो, प्रार्थना-पत्रों की जाँच करने के पश्चात्, योग्य प्रार्थियों की प्रत्यक्ष जाँच (Interview) की जाती है । प्रत्यक्ष जाँच (Interview) के प्रश्नों को प्रमाणीकृत नहीं किया जा सकता । यदि मनोवैज्ञानिक परीक्षा ले ली गयी हो तो प्रत्यक्ष जाँच में कम प्रश्न पूछे जाते हैं । प्रत्यक्ष जाँच के प्रश्न इस प्रकार के हों, जिनके उत्तर की सहायता से निम्न गुणों की जाँच हो सके :—

१. ईमानदारी,

२. कार्य प्रेरणा,

३. व्यक्तित्व,

४. शारीरिक-व्यंग-हीनता,

५. विश्वास पात्रता,

६. सामाजिक प्रतिष्ठा,

- | | |
|----------------------|--------------------------|
| ७. सहकार भावना, | ११. प्रसन्न वदन-प्रकृति, |
| ८. चारित्र्य, | १२. महत्वाकांक्षा, |
| ९. मानव-मन का ज्ञान, | १३. आत्मविश्वास, |
| १०. विनम्रता, | १४. साहस । |

प्रत्यक्ष जॉच (Interview) में किसी एक परिच्छेद को पढ़कर उसको संक्षेप में व्यक्त करने के लिये कहा जाता है। इसमें प्रार्थी के शब्द भांडार, अभिव्यंजना शक्ति, प्रभाव पूर्ण बातें, भाषण शक्ति आदि की जॉच की जाती है। इसमें प्रार्थी को अपने आपको विस्तार पूर्वक व्यक्त करने का अवसर दिया जाता है। कभी कुछ प्रार्थियों को संयुक्त रूप से किसी एक समस्या पर विवाद करने के लिए कहा जाता है। और उस विवाद में कौन अग्रसर है, अपने विचारों को प्रभाव पूर्ण तरीके से कौन व्यक्त कर रहा है यह जॉचा जाता है। विक्रय-प्रबंधक प्रत्यक्ष जॉच (Interview) के समय पर अन्य विभागों के प्रमुखों को भी प्रत्यक्ष जॉच लेने के लिये निमंत्रित करे और सबकी क्या राय है इसका अंदाज कर ही प्रार्थी को चुने।

विक्रेताओं का प्रशिक्षण (Technical Training)

प्रशिक्षण के दो प्रमुख हिस्से हैं :—

(१) सामान्य व्यापार नीति एवं कलाका प्रशिक्षण और (२) सार्थ की विशेषताओं को व्यक्त करने का प्रशिक्षण। प्रथम विभाग का प्रशिक्षण तो हर किसी सार्थ को देना ही पड़ेगा और वह करीब करीब सभी सार्थ के विक्रेताओं के लिये समान प्रकार का होगा। दूसरे विभाग का प्रशिक्षण हर सार्थ के स्वरूप पर निर्भर होगा।

प्रशिक्षण का उद्देश्य विक्रेता को प्रवीण बनाना है। व्यापार की खूबियाँ जान, अपनी वस्तुका कलात्मक और प्रभावी वर्णन कर सार्थ की ख्याति (Good-Will) और वस्तुओं का विक्रय प्राप्त करना यह अच्छे प्रशिक्षित विक्रेता का लक्षण है। ग्राहक के हर प्रश्न का संतोषजनक उत्तर देने की योग्यता उसमें होनी चाहिये। वस्तु किस प्रकार बनती है इसकी जानकारी में बहुत ही कम ग्राहकों को रुचि होती है, उन्हें तो वस्तु के उपयोग से मतलब होता है। अतः वस्तु की बनावट एवं उत्पादन-पद्धति का मोटे तौर पर ज्ञान प्राप्त कर विशेषतः उसके उपयोग, सावधानी आदि का गहन ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। कोई कितना ही प्रवीण विक्रेता हो, जबतक सार्थ की वस्तुओं और प्रणाली का

प्रशिक्षण वह नहीं पाता, तबतक उस सार्थ के प्रचार-कार्य के लिए वह योग्य नहीं बनता। सार्थ के पुराने विक्रेताओं के साथ कार्य करने के लिए उसे कुछ प्रारंभिक प्रशिक्षण लेना ही होगा। प्रशिक्षण में उसे उसके गुण-दोषों का ज्ञान भी कराया जाता है, जिसे जान अन्य विक्रेताओं के साथ और ग्राहकों के साथ किस प्रकार अपने आपको अनुकूल (adjust) किया जाय यह बात वह सीखता है। अप्रशिक्षित विक्रेता प्रचलित और ख्याति-प्राप्त वस्तुओं को आसानी से बेच सकेगा; पर विक्रेता केवल ख्याति-प्राप्त वस्तुओं को ही बेचने के लिए नियुक्त नहीं किया जाता। कंठछेदी प्रतिस्पर्धा के और अवसाद समय में भी अपनी वस्तुओं का विक्रय कर सकना अच्छे विक्रेता के लक्षण हैं। उसी प्रकार कोई अप्रशिक्षित उत्साही विक्रेता प्रारंभिक जोश में खूब विक्रय करके दिखा सकता है, पर जोश समाप्त होने पर उसे मार्ग नहीं सूझेगा। विक्रेता का सच्चा कार्य अत्याधिक प्रमाण में विक्रय कर दिखाना नहीं है; पर बेची हुई वस्तुओं द्वारा ग्राहकों को संतोष प्रदान करना है। अतः ग्राहकों के अज्ञान का लाभ उठाकर या उन्हें प्रलोभन की सहूलियतें प्रदान कर उनके गले में अनावश्यक वस्तुएँ बाध देना विक्रय-कला नहीं कहलाती। अपने प्रतिस्पर्धियों की तुलना में अपनी वस्तु का महत्त्व व्यक्त कर ग्राहकों की क्रय शक्ति ज्ञात कर विक्रय कर दिखाना सच्चे विक्रेता का कार्य है। यह कला बिना प्रशिक्षण के प्राप्त नहीं हो सकती। प्रशिक्षण द्वारा विक्रेताओं को कुछ रामबाण युक्तियाँ प्रदान की जाती हैं और उनमें किस का किस समय उपयोग किया जाय इसका भी ज्ञान दिया जाता है। स्वभावतः विक्रय-कला में जिन्हें रुचि होती है, उन्हें यह शास्त्र सहज रूप से अवगत होता है। फिर भी घमंड में आकर विक्रेता यदि प्रशिक्षण की अवहेलना करेगा तो वह बहुत बड़ा दोष होगा। किसी एक स्थिति में वे सफल रहेंगे, किन्तु परिवर्तित परिस्थिति में किस प्रकार अपनी नीति परिवर्तित की जाय इसका ज्ञान उन्हें नहीं होगा।

प्रशिक्षित विक्रेता विक्रय कार्य कलात्मक ढंग से, शीघ्र गति से और ग्राहकों को अधिक संतोष प्रदान करते हुए करेगा। इस के कारण समय, श्रम और व्यय की बचत होकर विक्रय-राशि बढ़ेगी।

प्रशिक्षण में निम्न बातों का समावेश होगा :—

१. पुराने साथियों एवं उनकी विक्रय-प्रणाली का अध्ययन।

२. वस्तु के गुण, महत्व, उपयोग, मूल्य आदि बातों का अध्ययन ।
३. ग्राहकों की मनोवृत्ति, ऋय-शक्ति और रुचि का अध्ययन ।
४. वर्तमान विक्रय-माध्यम, यशस्वी विक्रेताओं के सफलता के कारण और असफल विक्रेताओं के दोषों का अध्ययन ।

प्रशिक्षण के दो हिस्से किये जायें । प्रथम विभाग में प्रारंभिक प्रशिक्षण होगा । इस प्रशिक्षण द्वारा प्रार्थी को 'विक्रेता' बनाया जाता है । उसे सभी प्रकार की आवश्यक जानकारी दी जाती है । दूसरे हिस्से में 'सामयिक प्रशिक्षण' आता है । वह कुछ समय के अन्तर से प्रदान किया जाता है । प्रारंभिक प्रशिक्षण काफी महत्व रखता है । उसका यदि योग्य परिणाम हुआ तो ही सामयिक प्रशिक्षण का उपयोग हो सकेगा, अन्यथा नहीं ।

प्रारंभिक प्रशिक्षण में वस्तुओं की विस्तारपूर्वक जानकारी, उसकी विशेषताएँ उपयोग और मूल्य के संबंध में पूरी जानकारी का समावेश होना चाहिये जिसके आधार पर विक्रेता ग्राहकों को अपनी वस्तुओं का महत्व बता सके । यदि वस्तु तात्त्विक स्वरूप की हो तो उसकी निश्चित (Accuracy) और कार्य-सुलभता के संबंध में विशेष ज्ञान दिया जाना चाहिये ।

उसी प्रकार अपनी सार्य की विक्रय-नीति, उसके द्वारा दी जानेवाली सहाय्यता, नमूने की वस्तुएँ, विक्रय-माध्यमों का अवलंब, प्रदर्शन, विक्रय-प्रवर्तन योजना, कार्यालयीन कार्य-नीति और अन्य सब बातों की जानकारी विक्रेता को दी जाय ताकि अपनी सार्य की नीति ग्राहकों को किस प्रकार अधिक लाभदायी होगी इस बात का विवरण वह विक्रय-भाषण करते समय दे सके ।

विक्रेता के अधिकार, उसका क्षेत्र, कार्य-प्रणाली, प्रवास के बीच संबंध बनाये रखने के साधन, वृत्त और पत्र-व्यवहार, आदेश एकत्रित करने की पद्धति और मूल्य वसूल करने के मार्ग इन सब बातों का ज्ञान प्रारंभिक प्रशिक्षण में ही आता है ।

अपना व्यक्तित्व किस प्रकार बनाया जाय और उस व्यक्तित्व की ओर ग्राहकों को किस प्रकार आकृष्ट करें इस कला का ज्ञान प्रारंभ से ही आवश्यक होता है ।

एक बार प्रशिक्षण देने के पश्चात् प्रबंधक का उत्तरदायित्व समाप्त नहीं हो जाता । जिस प्रकार इमारत बनाने के बाद भी प्रतिवर्ष लिफाई-पुताई करनी पड़ती है, उसी प्रकार विक्रेताओं को समय समय पर प्रशिक्षण देते ही रहना

पड़ता है। प्रशिक्षण तो सतत चलनेवाली चीज़ है। व्यापार-विश्व सदा परिवर्तनशील होता है। नये संशोधनों, आविष्कारों, भूषाचारों और वितरण-साधनों का प्रयोग कर प्रतिस्पर्धी से किस प्रकार टक्कर ली सकती है यह बतलाने के लिये सामयिक प्रशिक्षण ज़रूरी होता है जो निम्न साधनों द्वारा प्रदान किया जा सकता है।

१. छपी सूचनाओं द्वारा—

परिचलन-पत्र, मासिक-पत्र या अन्य छपी सामग्री द्वारा व्यापार युग में या सार्थ की नीति में जो भा परिवर्तन हुए होंगे या विक्रय का नया तंत्र प्रचलित हुआ होगा उसका ज्ञान दिलाना चाहिये। मासिक पत्रिका में विक्रेताओं को मार्गदर्शन करने वाले विक्रय-प्रबंधक और प्रवर्तकों के लेख दिये जायें और साथ ही साथ विक्रेताओं को भी अपने अनुभवों और व्यवहार में लाये गये सिद्धांतों का व्यापार छपाने के लिए उत्साहित किया जाय।

२. सभाओं में चर्चा और विक्रयकला दिग्दर्शन—

सामयिक सभाएँ प्रशिक्षण में सहायक होती हैं। उनमें खुली चर्चा हो और विख्यात अनुभवी विक्रेताओं द्वारा विक्रय-तंत्र का प्रात्यक्षिक दिग्दर्शन भी कराया जाय।

इस प्रणाली में एक कठिनाई होती है। पुराने अनुभवी कार्यकर्ता इस प्रकार की प्रशिक्षण-सभा में बैठकर शिक्षा पाना अपनी प्रतिष्ठा के खिलाफ समझते हैं। अतः उनके क्षेत्र में जाकर ही अप्रत्यक्ष रूप से उन्हें प्रशिक्षण प्रदान करना होगा। पर यह कार्य सम्पूर्ण रूप से संभव नहीं हो सकता; क्योंकि उसके लिए काफी समय, व्यय, श्रम और शिक्षकों की संख्या की जरूरत होगी। अतः प्रशिक्षण के नाम पर नहीं, पर परिषद के बहाने इन कार्यकर्ताओं को एकत्रित कर चर्चा के जरिए उन्हें प्रशिक्षण प्रदान करना पड़ेगा। अद्यावत जानकारी वार्तालाप करते-करते स्वाभाविक रूप से उनके गले उतारनी चाहिये।

३. अनुभव और ज्ञान की जाँच—

यह जाँच सामान्य विद्यालयीन परीक्षा के समान नहीं होगी। बचि बचि में विक्रेताओं के क्षेत्र का भ्रमण कर उनके कार्य का निरीक्षण कर उनकी कार्य-प्रणाली में कोई दोष दीखे तो उन्हें अप्रत्यक्ष रूप से और कलात्मक ढंग से भिन्न के नाते उनका ज्ञान करा दिया जाय।

प्रार्थियों में से विक्रेता के लिए निर्वाचित किये गये व्यक्तियों को तीन विभागों में विभाजित करना होगा :

१. सार्थ की वस्तु-विक्रय का जिन्हे अनुभव है ऐसे विक्रेता,
२. अनुभव-शून्य विक्रेता,
३. अन्य व्यवसाय का अनुभव जिन्हें है ऐसे विक्रेता,

उपर्युक्त भिन्न-भिन्न विभागों के विक्रेताओं को भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रशिक्षण देना होगा। अनुभवी विक्रेता को अपनी सार्थ की कार्य-प्रणाली और विक्रय-नीति का ज्ञान देना ही पर्याप्त होगा। सभी विक्रेताओं के साथ उन्हें अन्य तत्त्वों का प्रारंभ से ज्ञान प्रदान कराने में उनका समय बरबाद करना अनावश्यक होगा। अनुभव विहीन विक्रेताओं को प्रारंभ से लेकर अन्ततक का सम्पूर्ण प्रशिक्षण देना पड़ेगा। अन्य व्यवसाय का अनुभव रखनेवाले विक्रेताओं को अपनी सार्थ की नीति और वस्तुओं की विशेषताएँ इन दो बातों का ज्ञान प्रदान कराना ही पर्याप्त है।

प्रशिक्षण की आवश्यकता तो हर सार्थ महसूस करने लगी है। पर समय और पैसे का अपव्यय न करते हुए सर्वोत्तम प्रशिक्षण प्रदान करना बड़ा कठिन कार्य है। अतः प्रशिक्षण अत्यंत सरल, किन्तु प्रभावी और विक्रेताओं की दृष्टि से अत्यंत उपयुक्त हो। प्रशिक्षण की सच्ची कसौटी विक्रेता के और सार्थ के विक्रय-आन्दोलन की सफलता से नापी जायगी। अत्यंत सरल पद्धति से अत्यंत सरल प्रशिक्षण प्रदान करने के लिये अनुभवी तर्कों की आवश्यकता होती है जो सिवा किसी अभिनय के वस्तुओं और वितरण-मार्गों के गुणों का ज्ञान करा सके। प्रशिक्षण प्रदान करने वाला व्यक्ति आदर-पात्र हो। हर उत्तम प्रबंधक, विक्रेता या प्रवर्तक सफलता पूर्वक प्रशिक्षण प्रदान कर सकेगा ही, ऐसा नहीं। सफलतापूर्वक विक्रय करना और सफलतापूर्वक विक्रय करने का प्रशिक्षण देना दोनों भिन्न बातें हैं। विक्रेता की योग्यता, उसकी स्मरण और ग्रहण-शक्ति, उसके कार्य का स्वरूप और उसके क्षेत्र में स्थित ग्राहकों की मनोरचना ध्यान में रखते हुये प्रशिक्षण प्रदान करना आवश्यक होता है।

प्रशिक्षण का समय अनावश्यक प्रदीर्घ न हो, क्योंकि विक्रेता अपनी प्रशिक्षा और योग्यता को कार्यान्वित करने के लिये उत्सुक होते हैं। यदि प्रशिक्षण का समय अनावश्यक अधिक रखा गया तो उनका उत्साह कम होगा और वे उकता जायेंगे। समय के बारे में निश्चित राय देना संभव नहीं है। तद्विक्रम

प्रशिक्षण को अधिक समय लग सकता है। फिर भी प्रशिक्षण का समय तीन और छः माह के बीच हो तो ठीक रहेगा।

प्रशिक्षण-स्थान और प्रकार के संबंध में प्रारंभ में ही ठीक विचार किया जाय ताकि समय और द्रव्य का व्यय करने के बाद पछताने का मौका न आवे। छोटी सार्थ नये विक्रेता को अपनी विक्रय-शाला में पुराने अनुभवी विक्रेताओं-द्वारा प्रशिक्षण प्रदान कर सकती हैं। बड़े प्रमाण में व्यापार करनेवाली सार्थ या निर्माणी-सार्थ अपने नये विक्रेताओं को दो प्रकार से प्रशिक्षण दे सकती हैं। नये विक्रेताओं को अपने प्रमुख-कार्यालय में वे प्रशिक्षण दे सकती हैं या शाखा-कार्यालय में। यदि शाखा-कार्यालय को प्रशिक्षण देने का कार्य सौंपा जाय तो प्रशिक्षण की बुनियादी बातों की सूचनाएँ मुख्य कार्यालय द्वारा शाखा-कार्यालयों में भेज दी जानी चाहिये, ताकि सभी विक्रेताओं के प्रशिक्षण में समानता रह सके। शाखा कार्यालयों को प्रबंधन (Execution) अधिकार दे दिया जाय।

विक्रेताओं का पारिश्रमिक

विक्रेताओं के प्रमुख दो प्रकार हैं:—

१. विक्रय-शाला में कार्य करनेवाले और
२. प्रवासी विक्रेता

इन दोनों के वेतन एवं पारिश्रमिक के संबंध में स्वतंत्र रूप से विचार करना होगा। पहले दोनों की सर्वसामान्य परिस्थिति पर विचार करेंगे। विक्रेता का कार्य अभिनेता के समान होता है। अपने व्यवसाय के लिए उपयुक्त और लोकरुचि के अनुसार उसे पोशाक धारण करना पड़ता है और हजारों ग्राहकों के सम्मुख अपना व्यक्तित्व व्यक्त करना पड़ता है जिसके लिये उत्तम पोशाक, टायलेट आदि मूल्यवान चीजें उसे उपयोग में लानी पड़ती हैं। इन चीजों पर उसे काफी व्यय करना पड़ता है। अतः अन्य कर्मचारियों की तुलना में विक्रेताओं का पारिश्रमिक अधिक होना अत्यंत स्वाभाविक है।

विक्रय-शाला में कार्य करनेवाले विक्रेताओं की अपेक्षा प्रवासी विक्रेताओं को अधिक परेशानियाँ उठानी पड़ती हैं। प्रवास में ओढ़ने-बिछाने के कपड़े अधिक रखने पड़ते हैं और कपड़े धोने तथा धुलवाने का प्रवास में प्रबंध न होने के कारण पहनने के कपड़े भी पर्याप्त प्रमाण में रखने पड़ते हैं। कई रातें रेल के डिब्बों में काट कर मच्छरों और खटमलों की पीड़ा बरदास्त करते हुए जहाँ

भी और जैसा भी भोजन प्राप्त हो उससे अपनी क्षुधा शान्त करनी पड़ती है। घरेलू जीवन की सरसता के अभाव के कारण मनोरंजन के अनेक साधनों पर उसे स्वर्च करना पड़ता है। उसे अपना अधिकांश समय प्रवास में व्यतीत करना पड़ता है जिसके कारण किसी भी अतिरिक्त-आय की गुंजाइश नहीं होती है। अतः निष्कर्ष यह है कि विक्रेता को अच्छा पारिश्रमिक मिले और प्रवासी विक्रेता को उससे भी अधिक।

विक्रेताओं को, यदि उनका कार्य संतोषजनक रहा, नौकरी का आश्वासन दिया जाना चाहिये ताकि वे अपनी पूर्व-तैयारी पर विनियोग कर सकें। नौकरी की अनिश्चितता मानसशास्त्र की दृष्टि से बड़ा विचित्र कार्य करती है और उत्तम गुणों से सम्पन्न मनुष्यों के दिल में भी घबराहट पैदा कर उसे असफलता का शिकार बनाती है। भविष्य की चिन्ता उनके मनमें सदा कम्पन पैदा करती है जिससे उत्तम वाक्पटु भी लड़खड़ाने लगते हैं; अतः प्रारंभिक विकास के लिए और गुण-रश्मियों को प्रकट करने के लिए तथा कोमल पौधों को अपनी नाजुकता त्याग कुछ सहन-शक्ति प्राप्त करने के लिए योग्य अवकाश दिया जाना ही चाहिये। अतः कमसे कम एक वर्ष की अवधि प्रयोगात्मक काम के लिये समझी जाय जिसके पश्चात् कमसे कम तीन माह की पूर्व-सूचना देकर कार्यमुक्ति दी जानी चाहिये।

विक्रेताओं को पर्याप्त पारिश्रमिक और प्रवास-व्यय प्रदान करने को कई सार्थ आर्थिक हानि समझती हैं। यह बड़ी भूल है। दूरदृष्टि से पर्याप्त और योग्य पारिश्रमिक प्रदान करना आर्थिक दृष्टि से सार्थ के लिये लाभकारी होगा। जब विक्रेता यह देखेंगे कि उनके साथ समझदारी एवं उदारता के साथ व्यवहार किया जा रहा है तो इसके प्रतिफल स्वरूप वे अधिक विक्रय करने का प्रयत्न करेंगे और साथ ही साथ प्रवास-व्यय और वितरण-व्यय कम करने की कोशिश करेंगे। विपरीत रीति का अवलंबन करने से विक्रेता अयोग्य मागों से अपनी आय बढ़ाने की कोशिश करेंगे और मौका पाकर सार्थ को हजारों की हानि में उतार देंगे। इसका मतलब यह नहीं कि विक्रेता अत्यंत निकम्मा सिद्ध होने पर भी साहभर सार्थ पर बोझ बना रहे और व्यर्थ में वेतन लेता रहे। यदि विक्रेताओं का चुनाव करते समय विशेष ध्यान रखा गया तो इस प्रकार की परिस्थिति सामान्यतः खड़ी ही नहीं होगी। स्थायी विक्रेताओं को यथासंभव कार्य से हटाया न जाय; किन्तु कोई विशेष परिस्थिति (बीमारी, अपघात, पागलपन आदि) निर्माण होने पर उन्हें रखना सार्थ की दृष्टि से योग्य भी नहीं होगा।

पारिभ्रमिक प्रणालियाँ

पारिभ्रमिक प्रणालियाँ अनेक प्रकार की हो सकती हैं, किन्तु निम्न प्रणालियाँ अधिक प्रमाण में प्रचलित हैं:—

१. मासिक निश्चित वेतन
२. विक्रय के अनुपात में पारिभ्रमिक
३. निश्चित वेतन और वर्तन
४. सामुदायिक वर्तन (Pooled Commission)

मासिक वेतन

मासिक वेतन की प्रणाली अधिकांश सार्यों ने अपनायी है और वह काफी हद तक सफल भी रही है। विक्रेताओं को आर्थिक आश्वासन प्रदान करना इस प्रणाली की विशेषता है। आर्थिक निश्चितता के कारण अपनी आर्थिक चिंताओं को भूलकर विक्रेता पूरी योग्यता के साथ विक्रय करने की कोशिश करेगा। जहाँ पर कार्य नापा नहीं जा सकता (Hand to Mouth Purchase) जहाँ वस्तु-विक्रय अत्यल्प प्रमाण में किया जाता है वहाँ यह प्रणाली सफल सिद्ध हुई किन्तु इस प्रणाली का सब से बड़ा दोष है कि सभी कर्मचारी सर्व साधारण कार्यक्षमता से ही कार्य करेंगे। परिणामतः विशेष योग्यता रखनेवाले विक्रेताओं की कुशलता का सार्य को अधिक लाभ नहीं होगा। अधिक योग्यता के लिए विशेष प्रतिफल पाने की गुंजाइश न होने के कारण कुशल विक्रेताओं की विक्रय-राशि (Turn Over) घट जायगी।

विक्रेताओं का वेतन निश्चित करना बड़ा कठिन कार्य है। समान विद्यालयीन योग्यता रखने वाले दो उम्मीदवारों के वेतन में भी कई बार जमीन आसमान का अंतर हम पाते हैं। विक्रेताओं का वेतन उनकी कार्य-शक्ति और कार्य-कला पर निर्भर होगा। कई निराशावादी उम्मीदवार प्रारंभ में कम वेतन बतलाकर नियुक्ति ले लेते हैं; किन्तु बाद में दूसरों की तुलना में अपना काम अच्छा है वह ज्ञात होने पर अपने दिये गये शब्दों के लिये पछताते हैं और शीघ्र ही उन्हें तरकी न दी गयी तो वे असंतुष्ट रहते हैं। इस के ठीक विपरीत अपने आपका अधिक मूल्यांकन करने वाले कुछ विक्रेता प्रारंभ से ही योग्यता से अधिक पारिभ्रमिक की माँग करते हैं और प्रबंधक चन्द मिनटों की मुलाकात में उम्मीदवारों की योग्यता का मूल्यांकन न कर सकने के कारण उस माँग को स्वीकार कर लेते हैं। यह निर्विवाद बात है कि ऊँचे दर्जे के कार्यकर्ताओं की कार्य-क्षमता को देखते हुए उन्हें

अधिक वेतन देना कभी भी हानिप्रद नहीं होगा। किन्तु अपनी सार्थ में इतना ऊँचा कार्य न हो तो प्रवीण विक्रेताओं को नियुक्त करना मानो उनकी कार्य-शक्ति का दुरुपयोग करना और सार्थ का आर्थिक व्यय व्यर्थ में बढ़ाना होगा। किसी विक्रेता को आर्थिक कठिनाई में पाकर कम वेतन पर नियुक्त करना सब से बड़ी भूल होगी। परिस्थिति से विवश कार्यकर्ता का शरीर आप खरीद सकते हैं, मन कदापि नहीं। उस की दयनीय अवस्था का जिसने अनुचित फायदा उठाया है उसके प्रति विक्रेता के मन में प्रेम या आदर की भावना नहीं होगी और मौका पाकर वह सार्थ को छोड़ देगा। इतना ही नहीं, बल्कि आप की अपमानजनक नीति का वह प्रचार करेगा और अच्छे कार्यकर्ता को उस सार्थ में न जाने की सलाह देगा। अवसाद-समय पर या आर्थिक हिन-अवस्था में किसी विक्रेता की परिस्थिति का अनुचित फायदा उठाना घृणापूर्ण नीति है। विक्रेता की नियुक्ति विक्रेता और प्रबंधक के बीच का प्यार का संविदा होना चाहिये। यदि अपनी सार्थ के भीतरी कार्यकर्ताओं को प्रवासी-विक्रेता के स्थान पर नियुक्त करना हो तो उसने जो प्रारंभ से ही सार्थ की नीति एवं व्यवहार का ज्ञान प्राप्त किया है उस के प्रतिफल स्वरूप उसे थोड़ा-अधिक वेतन दिया जाना चाहिये। किन्तु भीतरी कार्यकर्ता कई बार प्रवासी-विक्रेता के कार्य में असफल होते हैं। अतः उनकी नियुक्ति काफी सोच-समझकर करनी चाहिये।

हर वर्ष या किसी निश्चित अवधिके पश्चात् विक्रेताओं द्वारा किये गये कार्यों को महेनजर रख वेतन-वृद्धि की जाय ताकि अधिक कार्य करने का प्रेरणा उनमें पैदा हो और अपने निजी स्वार्थ के साथ साथ सार्थ की आर्थिक एवं ख्याति की प्रगति वे करते रहें। यदि किसी खास कारणवश या कार्यक्षेत्र अत्यंत जटिल होने के कारण कोई विक्रेता प्रगति न कर सका तो भी उसे वेतन-वृद्धि मिलनी चाहिए। वेतन-वृद्धि-कार्य काफी सोच-समझ कर किया जाय। वैयक्तिक मत-मतांतर, पक्षपात आदि दोषोंसे अलिप्त रहा जाय ताकि विक्रेताओं की अपने प्रति जो भ्रमा है उसे धक्का न लगने पावे। वास्तव में वेतन-वृद्धि बगैर माँगे ही प्राप्त होनी चाहिये; क्योंकि प्रतिष्ठित विक्रेता आर्थिक माँग करना अपनी शान के खिलाफ समझते हैं। समय पर वेतन-वृद्धि मिलने से विक्रेताओं के मन में उत्साह पैदा होता है। माँग करने पर वेतन-वृद्धि की जाय तो विक्रेता यह समझेंगे कि यदि उस समय के पूर्व ही माँग की जाती तो भी से वृद्धि मिलती। योग्य समय पर और योग्य प्रमाण में वेतन-वृद्धि न की गयी तो संभवतः वे अन्य

प्रतिस्पर्धी सार्व में अधिक वेतन पर नियुक्त किये जावेंगे और सार्व को हानि होगी। विक्रेताओं द्वारा किसी भी प्रकार की धमकियाँ दी जाने पर वेतन-वृद्धि करना सबसे कनिष्ठ कार्य पद्धति है।

वेतन के अतिरिक्त प्रवास विक्रेता को प्रवास व्यय के लिए अभिदेय दिया जाता है जिसके दो प्रकार हैं—प्रथम प्रकार में विक्रेता का जितना भी व्यय होगा वह सारा सार्व द्वारा दे दिया जाता है, किन्तु दूसरे प्रकार में मासिक प्रवास-व्यय प्रारंभ से ही निश्चित किया जाता है जिसके भीतर विक्रेता को अपना सारा कार्य करना पड़ता है। जिस व्यापार में प्रवास-स्थान और मार्ग करीब करीब निश्चित होता है, वहाँ पर दूसरे प्रकार का अभिदेय अधिक उपयुक्त सिद्ध होगा। दोनों प्रणालियों में कुछ दोष हैं ही। यदि सारा प्रवास-व्यय मंजूर किया जाय तो विक्रेता अवास्तविक व्यय बतलाते हैं और यदि निश्चित अभिदेय दिया जाय तो पूरा प्रवास नहीं करते हैं। अतः प्रबंधक द्वारा विक्रेताओं से लिखित विवरण, लेखा, व्यय-विज्ञक माँगकर उन पर नियंत्रण रखना चाहिये।

२. विक्रय-अनुपात में पारिश्रमिक

जिस समय विक्रेता के कार्य का फल मापा जा सकता है और जिस समय जल्दबारी से नुकसान होने की बहुत कम संभावना होगी, उस समय वर्तन-पारिश्रमिक-प्रणाली बड़ी लाभकारी सिद्ध होगी। कार्यकुशल और उत्साही विक्रेताओं के लिये यह पद्धति उपयुक्त है। प्रवीण विक्रेता विशेष कार्य-शक्ति के कारण अधिक कार्य करते हैं जिसके लिये उन्हें आर्थिक लाभ के साथ साथ प्रतिष्ठा भी प्राप्त होती है। इस पद्धति का अवलंबन लेने के पूर्व पूर्ण विचार कर लेना चाहिये। विशेषतः जटिल विपणि परिस्थिति में इस प्रणाली का प्रयोग करना अनुचित होगा। विपणि जटिलता के कारण प्रवीण विक्रेता भी पर्याप्त आदेश नहीं भेज सकेंगे और परिणामतः वे निराश हो जायेंगे और बार बार कार्य छोड़कर जानेवाले विक्रेताओं की संख्या बढ़ जायगी और व्यापार को स्थायी स्वरूप प्राप्त नहीं होगा। प्रायः यह देखा गया है कि इस प्रणाली का उपयोग सस्ते विक्रेता पाने के लिये किया जाता है जिन्हें प्रशिक्षण देने की आवश्यकता नहीं होती। सामान्यतः वर्तन-पद्धति से पारिश्रमिक स्वीकार करनेवाले वे विक्रेता होते हैं जिन्हें अन्यत्र अच्छे वेतन का कार्य प्राप्त नहीं होता। अतः यह कहा जा सकता है कि इस प्रणाली के अन्तर्गत सर्वोत्तम या कनिष्ठतम विक्रेताओं का ही समावेश होता है; माध्य विक्रेताओं का नहीं। इस प्रणाली में आर्थिक स्वार्थ के सिवा कुछ

नहीं होता । यह प्रणाली सार्व के प्रति प्रेम या ईमानदारी पैदा नहीं करती । स्वतंत्र विचार के, दूसरों का दबाव या प्रभाव सहन न करनेवाले और अपनी ताकत पर पूर्ण भरोसा करनेवाले विक्रेताओं के लिये यह पद्धति सर्वोत्तम सिद्ध हुई है ।

विक्रय-अनुपात में दिये जाने वाले वर्तन की भी दो प्रणालियाँ हैं :

(अ) विक्रेता के प्रदेश से प्राप्त सभी आदेशों पर

(आ) विक्रेता द्वारा भेजे गये आदेशों पर ही

(ई) विक्रेता द्वारा प्रेरित नये ग्राहकों के आदेशों पर

(ई) विसृप अनुमाप वर्तन (Sliding scale commission)

(अ) विक्रेता के प्रदेश से प्राप्त आदेशों पर :—

विक्रेताओं को प्रोत्साहित करने के लिए कई बार क्षेत्र-एकाधिकार प्रदान किया जाता है और उस प्रदेश से प्राप्त, चाहे वे उस विक्रेता द्वारा भेजे गये हों या नहीं, सभी आदेशों पर वर्तन दिया जाता है । इसके पीछे यह भावना होती है कि सीधे आदेश भेजने वाला ग्राहक भी विक्रेता के प्रचार के कारण ही प्रवृत्त हुआ है । स्थायी विक्रेता बनाये रखने के लिये यह पद्धति उपयुक्त है, अन्यथा बीज बोये एक और समय पर फसल काट ले जाय दूसरा ऐसी विचित्र स्थिति खड़ी हो सकती है । इस प्रणाली की ईमानदारी (Honesty) और सरलता के बारे में कोई संदेह नहीं कर सकता । किन्तु प्रणाली का दोष यह है कि विक्रेता के प्रदेश में से सार्व के पास जानेवाले सभी आदेशों पर उसे वर्तन मिलेगा ही यह निश्चित होने के कारण विक्रेता के कार्य में शिथिलता आ जायगी । उसे प्रतियोगिता का कोई डर नहीं होगा । वह ग्राहक तथा विक्रय बढ़ाने की कोशिश नहीं करेगा और पुराने ग्राहकों की शिकायतें क्या हैं तथा उन्हें किस प्रकार दूर किया जा सकता है इस ओर भी उसका कम ध्यान रहेगा । परिणामतः विक्रय-शक्ति स्थिर रहेगी और सार्व की प्रगति रुक जायगी । विक्रेता को निश्चित वेतन मिलता रहेगा और उसे वेतन का स्वरूप प्राप्त होकर कार्य में शिथिलता आयगी ।

(आ) विक्रेता द्वारा भेजे गये आदेशों पर ही—

उपर्युक्त दोषों को हटाने के लिये विक्रेता द्वारा भेजे जाने वाले आदेशों पर ही वर्तन प्रदान करने की दूसरी प्रणाली है । यह प्रणाली सार्व और विक्रेता दोनों

के लिए पारिश्रमिक के नाते तो ठीक है किन्तु कभी कभी इस का बड़ा विचित्र असर होता है। जबतक कोई दूसरा अधिक पारितोषिक प्रदान करने वाला व्यवसाय हो, तबतक विक्रेता उस व्यवसाय में अधिक ध्यान देगा, केवल शेष समय में इस प्रकार के आदेश एकत्रित कर भेजेगा। अन्य कार्य न होने पर ही अपना पूरा सामर्थ्य और समय वह विक्रय कार्य में लगायगा। इस का परिणाम यह होगा कि सार्थ की विक्रय-राशि में सदा उच्चावचन होते रहेंगे। इस प्रणाली का दूसरा दोष यह है कि यदि प्रदेश-एकाधिकार विक्रेताओं को न दिया गया तो अधिक आदेश भेजने के लिये विक्रेता एक दूसरे के विभागों को आदेश भेजना प्रारंभ करेंगे। यदि विक्रेताओं का कार्य प्रदेश निश्चित कर दिया गया तो पारिश्रमिक की दर काफी ऊँची रखनी पड़ेगी। इसी प्रकार जो व्यापारी-ग्राहक सीधे सार्थ के पास आदेश भेजेंगे उन ग्राहकों की किसी भी प्रकार की सेवा विक्रेता नहीं करना चाहेंगे।

(इ) विक्रेता-द्वारा प्रेरित नये ग्राहकों के आदेशों पर

यह नयी प्रणाली है जिसके अनुसार विक्रेता को उन्हीं आदेशों पर वर्तन प्राप्त होगा जो विक्रेता की मुलाकात होने के पूर्व आदेश नहीं भेजते थे और जिन्हें आदेश भेजने के लिए विक्रेता ने ही प्रेरित किया है। इस प्रणाली का सब से बड़ा दोष यह है कि पुराने ग्राहकों की ओर विक्रेता जरा भी ध्यान नहीं देगा। यह मान लेना गलत होगा कि पुराने विक्रेताओं के आदेश, सिवा किसी सेवा के, अविरत आते ही रहेंगे। संभवतः पुराने ग्राहक सार्थ की इस नीति का विरोध कर अपना दूसरा रास्ता ढूँढ लेंगे।

(ई) विसृप अनुपात वर्तन (Sliding Scale Commission)

जैसे जैसे विक्रय-राशि में वृद्धि होती जायगी, वैसे वैसे वर्तन-अनुपात में वृद्धि करने की प्रणाली को विसृप अनुपात वर्तन प्रणाली कहते हैं। उदाहरण के लिये समझिएगा कि प्रथम १,००० रुपयों के आदेशों पर ३% वर्तन दिया जाता है, उसके पश्चात् के १,००० रुपयों के आदेशों पर ४% वर्तन दिया जाता है और बाद के १,००० रुपयों के आदेशों पर ५.३% आदि—तो यह प्रणाली विसृप-अनुपात-वर्तन प्रणाली कहलायेगी। ऊँची कार्य-शक्ति के विक्रेताओं के लिए यह बहुत ही सुन्दर प्रणाली है।

३. निश्चित वेतन और विक्रय-अनुपात में वर्तन

इस प्रणाली द्वारा विक्रेता को निश्चित वेतन दे दिया जाता है ताकि किसी माह में आदेश प्राप्त न होने पर भी उदरभरण की चिन्ता न करनी पड़े और अपने प्रयत्नों का फल विलम्ब से प्राप्त होने वाला हो तो उस के लिए राह देखने की शक्ति प्राप्त हो। इस प्रणाली के भी दो उपभेद हैं :—

(अ) निश्चित वेतन के साथ साथ सभी आदेशों पर वेतन और

(आ) निश्चित वेतन और निश्चित अभ्यंश के अलावा आने वाले आदेशों पर वर्तन।

प्रथम प्रणाली का दोष यह है कि निश्चित अभ्यंश पूरा करने की कोई जिम्मेवारी न होने के कारण कार्य में शिथिलता पैदा हो सकती है।

दूसरी प्रणाली में वर्तन का दर कुछ ऊँचा रखना पड़ेगा। उसमें एक कठिनाई उपस्थित हो सकती है कि यदि निश्चित अभ्यंश किसी माह में पूरा न हो पाया हो तो उस माह का पूरा वेतन दिया जाय या नहीं। ऐसे मौकों पर केवल कानून से चलना संभव नहीं होता, पूरा वेतन दे ही देना पड़ता है।

४. सामुदायिक वर्तन (Pooled Commission)

यह प्रणाली बहुत ही कम प्रमाण में प्रयुक्त होती है। इस प्रणाली के अन्तर्गत विक्रेताओं की किसी एक चसु को सामुदायिक रूप से कार्य करने के लिए प्रेरित किया जाता है और सब को समान अनुपात में वर्तन वितरित किया जाता है। कभी कभी प्रत्येक विक्रेता को कुछ प्रतिशत उसके निजी आदेशों पर और शेष सभी को समान अनुपात में वर्तन वितरित किया जाता है। इस प्रकार की प्रणाली सामुदायिक एकता निर्माण करती है वशतें कि सबका योग्य मार्गदर्शन करने की योग्यता प्रबंधक में हो। अक्सर स्वतंत्र व्यक्तित्व और कार्यक्षमता रखनेवाले विक्रेता इस प्रणाली में सम्मिलित नहीं होना चाहेंगे।

स्वतंत्र वाहन-साधन

जब किसी विक्रेता को बहुत विशाल क्षेत्र में प्रवास करना पड़ता हो और भीतरी विभाग में अधिक समय तक रहना पड़ता हो, तब उसके लिये स्वतंत्र वाहन की जरूरत होती है ताकि अपनी इच्छानुसार चाहे जितने समय किसी एक स्थान में रुक सके। रेलों, सर्विस की मोटरों का समय निश्चित होता है जिनके छूट जाने के बाद विक्रेता को घण्टों तक समय बरबाद करते बैठना पड़ता है। उदाहरणार्थ

यदि विक्रेता के पास स्वतंत्र मोटर-साधन हो तो व्यापारी-ग्राहकों पर उसका अच्छा प्रभाव पड़ता है। विक्रेता अपनी मोटर में नमूने की पर्याप्त वस्तुएँ रख सकता है और आवश्यकतानुसार विख्यात व्यापारी-ग्राहकों को सार्थ में ले जाने के लिए भी उसका उपयोग कर सकता है। किसी भी प्रकार का स्वतंत्र प्रवास साधन रखते समय विक्रेता को यह ध्यान में रखना चाहिये कि उसका विक्रय-साधन-व्यय को बरदाश्त कर सके इतना अधिक हो।

विक्रेताओं पर नियंत्रण (Control of Salesmen)

विक्रेताओं के अधिकार : विक्रेताओं के अधिकारों संबंधी नीति सार्थद्वारा प्रारंभ से ही स्पष्ट रूप से निर्धारित की जानी चाहिये ताकि किसी प्रकार के मतभेद के लिए स्थान न रहे। यह नीति विपणि परिस्थिति और सार्थ की वस्तुओं का स्वरूप ध्यान में रखकर निर्धारित करनी होगी। यदि विपणि में कंठ-छेदी प्रतिस्पर्धा हो या वस्तुओं का स्वरूप प्रयोगिक (Technical) हो तो प्रत्यक्ष विक्रय-स्थान निर्माण काफी महत्त्व रखता है। अतः विक्रेताओं के अधिकार कुछ हदतक प्रत्यास्थ (Elastic) रखने होंगे।

यदि सार्थ छोटी हो तो प्रबंधक स्वयं व्यापारी-ग्राहकों की ओर ध्यान दे सकेगा। किन्तु क्षेत्र जैसे जैसे विस्तृत होता जायगा वैसे वैसे विक्रेताओं के अधिकारों में वृद्धि करना होगा। एकाएक बड़ी जिम्मेदारी सौंपने की अपेक्षा विक्रेताओं के अधिकार क्रमशः बढ़ाते रहना ठीक रहेगा। मूल्य निश्चित करना, अभिवचन देना, वस्तुके गुणों की तथा उपयोगिता की हामी भरना, बड़े व्यापारियों को थोड़ी अधिक सहूलियत देना और छोटे हगड़ों तथा मतभेदों का निपटारा करना ये अधिकार साधारणतः विक्रेताओं को दिये जाने चाहिये। प्रत्यक्ष अनुभव ऐसा है कि इनमें से बहुत ही कम अधिकार विक्रेताओं को दिये जाते हैं। किन्तु यह नीति कई बार लाभप्रद सिद्ध नहीं होती क्योंकि सदा परिवर्तित होनेवाली विपणि प्रवृत्ति के कारण कई बार बड़े व्यापारी-ग्राहकों के बनाए रखने के लिए विशेष सहूलियतें तथा विशेष उपहार प्रदान करना आवश्यक हो जाता है।

सामान्यतः वस्तुएँ नमूने के समान न होने कारण, गलती से मूल्य अधिक लगाया जाने के कारण, वस्तुएँ पुरानी या गंदी निकलने के कारण, वस्तुएँ मार्ग में टूटने फूटने के कारण, योग्य प्रत्यक्ष-सहूलियतें न मिलने के कारण, बितरण

विलम्ब, प्रसविदा की शर्तें पूरी न की जाने के कारण और शोधन माध्यम की सुविधाएँ न मिलने के कारण व्यापारी-ग्राहकों से शिकायतें आ सकती हैं। इन शिकायतों का हल योग्य विक्रेताओं पर सौंपा जाना चाहिये। किन्तु यदि विक्रेता में प्रसविदा शक्ति (Contractual Power) न हो तो उसे यह कार्य सौंपना अनुचित होगा। क्योंकि वह ग्राहकोंद्वारा सहज रूप से प्रभावित हो सकेगा और सार्थ को आर्थिक हानि पहुँचायगा। इसके विपरीत यदि विक्रेता उदंड हो तो भी उसे यह कार्य सौंपना उचित नहीं है। वह ग्राहकों की अड़चनों को समझ नहीं सकेगा।

यथा संभव किसी एक प्रदेश की शिकायतों का निपटारा दूसरे प्रदेश के विक्रेता द्वारा करना चाहिये, ताकि वह तटस्थ वृत्ति से कार्य निपटा सके। यदि विक्रेताओं और ग्राहकों के आपसी संबंध काफी गहन हों तो यह कार्य उसी प्रदेश द्वारा कराया जा सकता है।

विक्रेताओं पर नियंत्रण रखने के दो प्रमुख कारण हैं—

१. कार्य शिथिलता से सार्थ कार्य को बचाने के लिए नियंत्रण न होने के कारण विक्रेता आलसी बन जाते हैं जिससे सार्थ की आर्थिक हानि होती है और उसकी ख्याति को धक्का पहुँचता है।

२. विक्रेता वैयक्तिक ख्याति निर्माण कर विपणि में सार्थ का स्थान गौण स्वरूप का कर रखते हैं। जब किसी कारण वश वह विक्रेता सार्थ को छोड़ जाता है, तब उस से प्रभावित सारे ग्राहक भी सार्थ को छोड़ जाते हैं। अपनी प्रतिष्ठा जमाने के लिए कभी तो विक्रेता ग्राहकों को अजीब आश्वासन देते हैं—उदाहरणार्थ “भाई सार्थ का नियम तो रोक व्यवहार करने का है पर मैं अपनी सिफारिश से आपको प्रत्यय (Credit) प्रदान करा दूँगा.....सार्थ ग्राहकों को ३३% वर्तन देती है, पर मैं प्रबंधक के पास से आपको ५% वर्तन दिला दूँगा। आदि।”—इस प्रकार के आश्वासन नये ग्राहक प्राप्त करने के लिए देने भी पड़ते हैं, किन्तु उन का उपयोग विक्रेता अपनी वैयक्तिक ख्याति प्रस्थापित करने के लिए न करे इस ओर सदा ध्यान रहना चाहिये अन्यथा चन्द दिनों में विक्रेता अपनी निजी प्रतिस्पर्धा-सार्थ खड़ी कर देगा। अतः प्रारंभ से ही सार्थ की नीति का कड़ा पालन करने के लिए विक्रेताओं को चेतावनी दी जानी चाहिये जिससे सार्थ की ख्याति प्रस्थापित होगी, विक्रेता की नहीं। कोई विक्रेता एक दो बार समझाने

पर भी यदि निर्धारित नियमों का उल्लंघन करता है तो उसे जबरन कार्यमुक्ति दे देनी चाहिये ।

विक्रेताओं को योग्य रूप से नियंत्रित करने के निम्न दो मार्ग हैं—

१. विक्रय-बोजना के नियमों का पालन—

प्रदेश बंटन, विक्रय अभ्यंश, विक्रय माध्यम आदि के निश्चित नियम बनाने चाहिये और उन का पालन विक्रेताओं द्वारा करा लेना चाहिये ।

२. विक्रेताओं द्वारा सामयिक अभिलेख माँगना—

सामयिक अभिलेख कार्य औचित्यक न रखते हुए, उसे विक्रेताओं के कार्य का ही एक अविभाज्य अंग समझा जाना चाहिये । सामान्यतः विक्रेता इसे अतिरिक्त (Additional) कार्य समझते हैं, अतः इस का महत्त्व उन्हें बता देना आवश्यक है । अभिलेखों की छपी छपाई प्रतियाँ विक्रेताओं को भेजी जायँ । अल्प समय में पूर्ण जानकारी विक्रेता भर सके । इन अभिलेखों की सहायता से विक्रेताओं के कार्य की प्रगति जाँची जा सकती है और योग्य कार्यवाही की जा सकती है ।

३. प्रबंधकों द्वारा क्षेत्र निरीक्षण—

बीच बीच में प्रबंधकों द्वारा विक्रेताओं के क्षेत्र का निरीक्षण किया जाना दो प्रकार से महत्त्व रखता है । उस के कारण ग्राहकों से वैयक्तिक सम्पर्क बना रह सकता है और किसी कारणवश वह विक्रेता सार्थ को छोड़ जाय तो ग्राहक बचाये रखे जा सकते हैं । साथ ही साथ विक्रेताओं पर प्रत्यक्ष नियंत्रण रहता है ।

४. योग्य और शीघ्र प्रबंधन—

कार्यालय का प्रबंध इस प्रकार रखा जाय जिस से आवश्यक सूचनाएँ विक्रेताओं को तुरन्त मिल सके ।

विक्रय अभिकर्तृत्व (Agency) और उसका नियंत्रण

हर प्रदेश में प्रवासी विक्रेता को भेजना संभव और योग्य नहीं होता । अतः ऐसे प्रदेशों में अभिकर्ता नियुक्त कर उनके भरोसे निर्भर रहना ही बुद्धिमार्त्त मानी जा सकती है । निम्न परिस्थिति में प्रवासी विक्रेता भेजने की अपेक्षा अभिकर्ताओं को भेजना योग्य होगा ।

१. नई वस्तु-विपणि में प्रचलित करने के लिये—

नई वस्तु का प्रचार करना कठिन कार्य है। जबतक उस वस्तु के प्रचार के लिए ग्राहकों के सदा सर्वदा निकट रहनेवाला विक्रेता प्राप्त नहीं होता, तब तक ग्राहकों के मन में वस्तु के प्रति विश्वास पैदा करना कठिन है। अतः ऐसे समय पर किसी प्रतिष्ठा-प्राप्त विक्रय-शाला को अभिकर्तृत्व सौंपना ही उचित होगा।

२. वस्तुओं की विक्रय-राशि कम होने पर—

जब वस्तुओं की विक्रय-राशि संभावना कम हो तो उन वस्तुओं के लिए विक्रेता नियुक्त करने की अपेक्षा वर्तन पर किसी विक्रय-शाला को अभिकर्तृत्व सौंपना उचित होगा। वह विक्रय-शाला अन्य वस्तुओं के साथ इन वस्तुओं का भी व्यवसाय आसानी से कर सकती है।

३. मौसमी वस्तुओं के लिए —

बरसाती (Rain Coat) का उदाहरण लीजिये। इसके उत्पादक प्रचार और वितरण के लिये प्रवासी विक्रेता नियुक्त नहीं करना चाहेंगे; क्योंकि उनके लिये सारे सालभर में २-३ महीनों से अधिक अवधि के लिए (वर्षा ऋतु के प्रारंभ से लेकर मध्य तक) कार्य प्राप्त नहीं होगा। इस परिस्थिति में किसी प्रमुख विक्रय-शाला को अभिकर्तृत्व सौंपना ही ठीक रहेगा।

४. विदेशी व्यापार के लिए—

किसी वस्तु का विदेश में विक्रय करने के लिये सामान्यतः किसी भी उत्पादक के लिये विक्रेता भेजना उचित नहीं होगा। वहीं के वातावरण में पनपे हुए किसी-विक्रय-शाला को अभिकर्तृत्व सौंपने से प्रगति हासिल की जा सकती है। उदाहरणार्थ भारतीय चाय के उत्पादक विक्रय के लिए अपने विक्रेता विदेशों में भेजने की अपेक्षा वहाँ पर अभिकर्ता नियुक्त करना ही उचित समझते हैं।

अभिकर्तृत्व किसे सौंपा जाय ?

कई बार यह प्रश्न उपस्थित होता है कि किसी छोटी सार्थ को अभिकर्तृत्व सौंपा जाय या बड़ी सार्थ को। छोटी सार्थ को अभिकर्तृत्व सौंपने के पक्ष में यह कहा जा सकता है कि वह सार्थ अपना सारा समय तथा सारी शक्ति इस कार्य में जुटा देगी जिस से कार्य में प्रवाह एवं जीवटपन पैदा होकर विक्रय बढ़ेगा। साथ ही साथ उसकी आत्मसमर्पण-नीति के कारण उसे भेजी गयी सूचनाओं पर वह ठीक से गौर करेगी।

उपर्युक्त नीति के विपक्ष में यह कहा जा सकता है कि छोटी सार्थ की कार्य-शक्ति मर्यादित होगी। उनके पास विक्रेता और विज्ञापन तथा वितरण के साधन कम होते हैं। बड़ी सार्थ के पास विक्रेताओं की बड़ी फौज होती है जो प्रदेश के कोने कोने में पहुँचकर अन्य वस्तुओं के प्रचार के साथ साथ अपनी वस्तुओं का प्रचार भी आसानी से कर सकते हैं। उनका विशाल विज्ञापन अनवरत चलता रहता है और विज्ञापन वस्तु-सूची में इस उत्पादक की वस्तु का नाम भी हर जगह चमकने लगता है। बंधाई (Packing) रवानगी (Booking) और संग्रह करने की विस्तृत सुविधायें भी वहाँ पर प्राप्त होती है। अतः सामान्यतः छोटे से सरोवर की अपेक्षा सागर ही पसंद करना अच्छा होगा। किन्तु बड़ी सार्थ को अभिकर्तृत्व सौंपने में एक हानिभय जरूर है। बड़ी सार्थ के पास कई वस्तुओं का अभिकर्तृत्व होने के कारण संभव है नये उत्पादक की वस्तु का विज्ञापन और प्रचार किया गया या नहीं इसका कई दिनों तक पता न चलेगा जिससे सार्थ को हानि होगी। इस प्रकार की गलती यदि छोटी सार्थ करें तो उसे सौम्य रूप में ताक़ीद दी जा सकती है, किन्तु बड़ी सार्थ को ताक़ीद देने की हिम्मत ही नहीं होगी। और यदि ताक़ीद दी भी गयी तो उसकी ओर लापवाही ही होगी।

अभिकर्ताओं का नियंत्रण एवं मार्गदर्शन

सार्थ और अभिकर्ता के बीच योग्य कानूनी संविदा होना चाहिये ताकि मतभेद के समय पर कानून के द्वारा निर्णय प्राप्त करने में असुविधा न हो। अभिकर्ता को योग्य पारितोषिक दिया जाय ताकि उसे कार्य में रुचि हो। साथ ही साथ अभिकर्ता ने भी अपना अधिकांश समय इस कार्य में व्यतीत कर सार्थ की वस्तुओं का विक्रय बढ़ाने की कोशिश करनी चाहिये।

प्रारंभ से ही स्थायी अभिकर्तृत्व प्रदान करने की अपेक्षा कुछ समय के लिए अस्थायी अभिकर्तृत्व प्रदान करना अधिक अच्छा होगा। यह अस्थायी समय कितना हो यह वस्तु के स्वरूप पर निर्भर होगा। यदि वस्तु नयी हो तो उसके प्रारंभिक प्रचार में काफी समय लगेगा, अतः पहला वर्ष प्रचार के लिए और दूसरा वर्ष प्रारंभिक विक्रय की प्रगति दिखाने के लिए ऐसे दो वर्षों की अवधि देनी होगी। यदि वस्तु जन-प्रचार की होगी तो एक वर्ष की अवधि पर्याप्त होगी।

सार्थ को या अभिकर्ता को अभिकर्तृत्व छोड़ना हो या छुड़वाना हो तो योग्य अवधि के पूर्व सूचना देनी चाहिये। यह अवधि प्रारंभ से ही संविदा में लिखी जाय और वह कम-से-कम इतनी हो जिसके बीच सार्थ अन्य प्रबंध कर सके। भिन्न भिन्न अभिकर्ताओं का प्रदेश स्पष्ट रूप से वितरित किया जाय जिसके भीतर उन्हें पूर्ण स्वतंत्रता दी जाय। यह प्रदेश इतना विस्तृत हो जिससे अभिकर्ता को पर्याप्त पारिभ्रमिक प्राप्त हो सके और इतना सीमित हो जितना वह आसानी से संभाल सके। अन्यथा प्रदेश-विदोहन (exploitation) ठीक रूप से न होगा। दो पड़ोसी अभिकर्ता आपस में कंठछेदी स्पर्धा न करे इस बात की पूर्ण सतर्कता रखी जाय। वस्तुओं के विज्ञान एवं प्रदर्शन पर सामान्यतः सार्थ को ही व्यय करना चाहिये। यदि अभिकर्ता की आर्थिक स्थिति और ईमानदारी आशंका के परे हो तो उसे प्रत्यय प्रदान करने में हर्ज न होगा, किन्तु यदि जरा भी संदेह हो तो परेषण आधार पर (Consignment Basis) वस्तुएँ भेजना अच्छा होगा, ताकि शेष स्क्व पर सार्थ का कानूनी अधिकार रह सके। इस प्रकार के परेषण में भी अधिक से अधिक कितना स्क्व अभिकर्ता के पास रखा जाय इसकी मर्यादा प्रारंभ से ही निश्चित कर दी जानी चाहिये। अन्यथा अभिकर्ता वस्तुओं की अनावश्यक माँग कर अपने पास मृत-स्क्व बनाये रखा करेगा और परिणामतः सार्थ को हानि होगी। इसके विपरीत प्रगतिशील अभिकर्ता यदि किसी समय अधिक वस्तुओं की माँग करे तो इन्कार नहीं करना चाहिये।

जब परेषण आधार पर वस्तुएँ भेजी जाती हैं तब परेषणी ग्राहकों से राशि वसूल कर सार्थ को भेजता है। उस राशि में से वह अपना वर्तन और व्यय कम कर लिया करता है। अतः यह निर्बंध लगाया जाना आवश्यक है कि वह परेषण के लेखे स्वतंत्र और स्पष्ट रूपसे रखे और निश्चित समय के बाद विवरण परेषक को भेजे। उधार-विक्रय पर प्राप्त होनेवाली वृद्धि की राशि उसने परेषण लेखे जमा की है या नहीं इस ओर परेषक का विशेष ध्यान रहना चाहिये। यदि परेषणी को वस्तुयें विपणि दर से बेचने का अधिकार दिया गया हो तो यह अवश्य देखता रहे कि वस्तुएँ योग्य दर से बेची गयी या नहीं। संभव है कि परेषणी अपनी विक्रय-राशि बढ़ाने के लिये कम दरसे वस्तुएँ बेचना प्रारंभ करे यदि परेषणी के विक्रय-व्यय पर सार्थ नियंत्रण चाहती हो, तो स्वयं विक्रय-व्यय न करते हुए प्रसंविदा इस प्रकार करे कि विक्रय-व्यय का प्रभार (Charge) परेषणी पर रखा जाय ताकि परेषणी मितव्ययता को अपनाये। उधार विक्रय का प्रमाण यदि अधिक हो तो

सार्य के लाभ की दृष्टिसे Del Credere परेषणी नियुक्त करना अच्छा होगा जिससे अशोध्य त्राण की जिम्मेदारी परेषणी पर रह सके ।

विक्रय प्रदेश Sales Territories

किसी भी कार्य को पूर्ण रूप से सफल बनाने के लिए उसे योजनाबद्ध करना अनिवार्य है, अन्यथा भ्रम बरबाद होने की अधिक संभावना होगी । जिस सार्य का कार्यक्षेत्र विशाल हो, जिसकी वस्तुओं का विपणि में काफी तादाद में विक्रय हो और जिस के विक्रेताओं को विक्रय के लिए बारबार प्रादकों का मुलाकात लेनी पड़ती हो उसमें कई विक्रेता होते हैं । और यदि प्रत्येक का प्रदेश निश्चित न हो तो आपस में प्रतिस्पर्धा प्रारंभ होगी जिसकी सर्वत्र धांधली फैल जायगी । अतः हर विक्रेता के लिए कार्यक्षेत्र निश्चित कर दिया जाय । किसे कौनसा और कितना प्रदेश सौंपा जाय यह विक्रेता की कार्य-शक्ति पर, वस्तुओं के स्वरूप पर और प्रदेश की आबादी पर निर्भर रहेगा । उत्साही एवं आत्मविश्वासी विक्रेता बड़ा क्षेत्र लेकर अपनी कर्तृ-व शक्ति को कसना चाहेंगे, इसके विपरीत अल्पसंतुष्ट विक्रेता विशालता की झंझट में न पड़कर अपने छोटेसे प्रदेश को ही सुसंगठित रखकर अपना पारिश्रमिक नियमित करना चाहेंगे । अतः विक्रेता का स्वभाव, कार्य-शक्ति, मनोरचना, भाषण-शैली और शरीर सामर्थ्य को सोचकर ही उसे प्रदेश सौंपना चाहिये । वस्तु का प्रदेश भी क्षेत्र वंटन में काफी महत्त्व रखना है । यदि सस्ती, निलोपयोगी और हल्की वस्तुएँ हों तो क्षेत्र कम-से-कम इतना विशाल रखना होगा कि विक्रेता को पर्याप्त पारिश्रमिक प्राप्त हो सके । उसके विपरीत नाजुक और वैज्ञानिक वस्तु हो तो उसके लिए क्षेत्र थोड़ा छोटा रखना होगा ताकि वैज्ञानिक वस्तुओं के वर्णन, विश्लेषण, स्थापना (Installation) और प्रचार में पर्याप्त समय दे सके । घनी आबादी वाले विभाग के लिए विक्रय प्रदेश का क्षेत्र छोटा रहे और बिरली आबादी के लिये विशाल । वर्षा जिले के (५ लाख आबादी के) लिए यदि एक विक्रेता नियुक्त होता हो, तो अकेले नागपुर शहर के लिये (जिसकी भी आबादी करीब ५ लाख है) एवं स्वतंत्र विक्रेता नियुक्त करना होगा ।

विक्रय प्रदेशका वंटन पूर्ण कल्पना तथा अनुभवों के समन्वय के अधार पर किया जाय । यदि आवश्यकता महसूस हो तो विशेषज्ञों की सहायता लेने में प्रबंधक किसी प्रकार का अपमान न समझे । विक्रेताओं को कार्य-शक्ति का और विपणि संभाव्य-विक्रय का पूरा लाभ उठाया जा सके इस ओर पूर्ण ध्यान रहे । संभवतः क्षेत्र वंटन की योजना को कार्यान्वित करने के लिये प्रारंभ में थोड़ी कड़ाई से भी

काम लेना पड़े जिसके कारण कुछ विक्रेता नाराज़ भी हो सकते हैं। किन्तु अन्तिम सफलता को ध्यान में रखते हुए प्रारम्भिक अल्प कटुता बुरी नहीं समझनी चाहिये। वंटन में सेना-नियमों के समान सूत्रबद्धता जरूर हो, पर साथ ही साथ परिस्थिति के अनुसार योग्य परिवर्तन के लिए कुछ प्रत्यास्पता (Elasticity) भी हो। कई पुरानी साथों की प्रदेश-वंटन प्रणाली सिवा किसी वैज्ञानिक आधार के ही निश्चित की हुई होती है और परम्परा के नाते उस का प्रयोग होता रहता है। परिवर्तन व्यापार युग में यह चीज अच्छी नहीं है।

विक्रय-प्रदेशों का वंटन करते समय प्राकृतिक या राजनैतिक सीमाओं के आधार का उपयोग करना अच्छा होगा। इसके अंतर्गत शहर और देहात ऐसे दो विभाग करने होंगे क्योंकि कोई एक शहर ही किसी एक विक्रेता के लिए पर्याप्त विभाग हो सकता है। देहात-विभाग ऐसे ही विक्रेता को सौंपा जाय जिसे ग्रामीण जीवन के रीति-रिवाज़ और भाषाओं का पूरा ज्ञान हो। उसका वर्तन निश्चित करते समय उसकी प्रवास जटिलता और ग्रामीण गरिब जीवन का भी विचार किया जाना चाहिये। शहर के विक्रेता को कई सुविधायें प्राप्त होती हैं और वहाँ पर विक्रय भी कम परिश्रम में काफी तादाद में हो सकता है। पर उनका वर्तन दर निश्चित करते समय उनके ऊँचे जीवन प्रमाण का भी विचार किया जाना चाहिये।

विक्रेता के सम्मुख उसके प्रदेश का साफ और स्पष्ट चित्र रखा जाय। प्रदेश में आवागमन की कौनसी सुविधाएँ उपलब्ध हैं और उनका उपयोग मितव्ययता तथा शीघ्रगति की दृष्टिसे किस प्रकार किया जा सकता है इसकी जानकारी उसको दी जाय। प्रवास योजना इस प्रकार की हो कि प्रवास-व्यय कम से कम रह सके। विक्रेता जब विक्रय करने के लिए निकले तो वह अपने प्रवास में अधिक से अधिक विक्रय केन्द्रों से गुजर सके इस प्रकार का उसका कार्यक्रम होना चाहिये। यदि क्षेत्र में मार्ग की जटिलता, लोक सेवा प्रवास साधनों का अभाव और समय की असुविधा हो तो विक्रेताको स्वतंत्र छोटी मोटर देना ही उचित होगा।

प्रदेश वितरण के पूर्व एक बार विहंगम दृष्टिसे पूरे क्षेत्र का विपणि-अन्वेषण हो जाना चाहिये ताकि योग्य प्रदेश विभाजन हो सके और उनका योग्य वंटन हो सके।

वर्तमान विपणि शीघ्र परिवर्तनशील है, अतः व्यापारी ग्राहकों की संग्रह प्रवृत्ति काफी कम हो रही है। (हमारा मतलब सामान्य परिस्थिति से है, वर्तमान व्यापारियों की (Hoarding) और काले बाज़ार नीति से नहीं)। अतः वे उतनी ही वस्तुएँ खरीदना चाहेंगे जितनी किसी अल्प-मौसम-समय के लिए पर्याप्त हों। कभी कभी तो सप्ताह-दो सप्ताह का ही वे संग्रह रखना चाहेंगे ताकि भूषाचार या अन्य किसी परिवर्तन के कारण उनके पास मृतस्कंध न रहे। उक्त प्रवृत्ति के कारण विक्रेताओं को बार बार व्यापारी ग्राहकों के पास जाना पड़ता है। प्रदेश बंटन करते समय इस बात को भुलाया नहीं जा सकता।

विक्रय प्रदेशों का निरीक्षण

विक्रेताओं का प्रदेश बंटन करने के पश्चात् उनके कार्य की देखरेख करते रहना चाहिये। प्रबंधक के लिये घोंड़े बेचकर सोना अच्छा नहीं। उसे पूर्ण सतर्कता के साथ निरीक्षण करते रहना चाहिये अन्यथा सारे कार्य में शिथिलता निर्माण होगी और कृष्ण-कर्म प्रारंभ हो जायेंगे। निरीक्षण-कार्य करते समय यदि यह देखा गया कि कोई विक्रेता आशाजनक उन्नति नहीं कर रहा है, तो उसकी सहायता कर कठिनाइयों को हटाने में उसे प्रवृत्त किया जाय। यदि आवश्यकता महसूस हो तो विपणि-अन्वेषण किया जाय। इसके बावजूद भी विक्रेता उस विभाग में असफल रहा तो उसका प्रदेश परिवर्तित कर देना चाहिये। यदि अधिक योग्य विक्रेता अपने क्षेत्र का विस्तार चाहे तो उसे सहर्ष स्वीकार करना योग्य होगा। विक्रेताओं से निश्चित अवधि के पश्चात् अभिलेख (Reports) मँगाकर उनका अध्ययन करते हैं।

शाखा-कार्यालय और उनका नियंत्रण

व्यापारी-ग्राहकों के साथ निकटतम सम्पर्क प्रस्थापित करने के लिए तथा वितरण-कार्य सरल-सुगम करने के लिए कई सार्थ प्रमुख वितरण केन्द्रों में अपनी शाखाएँ खोलती हैं। जो सार्थ सीधे अल्पशो-विक्रेताओं को वस्तुएँ बेचती हैं या जो विक्रय-पश्चात् सेवाएँ (after Sale-Service) ग्राहकों को प्रदान करती हैं उन्हें अपनी शाखाएँ स्थापित करना कार्य की दृष्टि से सुविधाजनक होगा।

शाखा प्रारंभ करने के पूर्व शाखा आर्थिक दृष्टि से लाभकारी होगी या नहीं इस बात का योग्य विचार किया जाना चाहिये। शाखा स्थापित करने पश्चात् उसका कार्य-क्षेत्र भी स्पष्ट रूप से निश्चित कर उस क्षेत्र की जिम्मेवारा

शाखा-विक्रय-प्रबंधक को सौंप दी जाय । यह कर्मचारी मुख्य विक्रय-प्रबंधक द्वारा निर्धारित विक्रय-नीति से कार्य करेगा । शाखा की प्रगति एवं सुसंगठन की दृष्टि से शाखा-प्रबंधक को आत्मविश्वास और स्वयं स्फूर्ति के साथ कार्य करना चाहिये । शाखा-प्रबंधकों में इस प्रकार का आत्मविश्वास निर्माण करने के लिए उनके कार्यों, अधिकारों और उत्तरदायित्वों की स्पष्ट परिभाषा की जानी चाहिये ताकि ग्राहकों के साथ व्यवहार करते समय वे किसी भी प्रकार हिचकिचाहट न करें । यदि इस प्रकार की स्थिति रही तो ग्राहक भी यह विश्वास करने लगेंगे कि वे सार्य के उत्त्वाधिकारी के साथ बात कर रहे हैं ।

शाखा-प्रबंधक के अधिकार सार्य के स्वरूप को ध्यान में रखते हुए निश्चित किए जायें । वह अपना कार्य विश्वास के साथ कर सके इतने कार्याधिकार उसे दिये जाने चाहिये, किन्तु कुछ बातें ऐसी होंगी जिनका पूर्णाधिकार प्रमुख प्रबंधक के पास ही रखना आर्थिक दृष्टि से योग्य होगा । अतः शाखा कार्य प्रारंभ करने के पूर्व इन सब बातों पर स्पष्ट चर्चा कर निर्णय लिया जाना चाहिये, ताकि बाद में किसी भी प्रकार की गलतफहमी के लिए गुंजाइश न रहे ।

जहाँ तक लेखा-कर्म का प्रश्न है, शाखा कार्यालयों को अपनी अपनी शाखाओं के लेखा-कर्म स्वतंत्र रूपसे रखना चाहिये । इन लेखा-कर्मों का अंकेक्षण सार्य के अंकेक्षकों द्वारा समय समय पर किया जाना चाहिये । यदि सार्य के अंकेक्षक न हों तो जिन अंकेक्षकों द्वारा मुख्य कार्यालय का अंकेक्षण होता है, उन्हींके बरिए शाखा कार्यालयों का भी अंकेक्षण करा लिया जाय । आवश्यक समंक-साहित्य (Statistical Material) एकत्रित करने की जिम्मेवारी शाखा-कार्यालय की ही होगी । इस प्रकार एकत्रित किये गये समंक मुख्य कार्यालय को भेज दिये जायें जिनके आधार पर मुख्य कार्यालय निष्कर्ष निकाल कर प्रत्यय-नीति और विक्रय-नीति निर्धारित करेगी । जहाँतक विक्रय पश्चात् सेवा का संबंध है, उस संबंध में यह कहा जा सकता है कि यह कार्य स्वतंत्र शाखाओं द्वारा करना सर्वोत्तम होगा ; किन्तु शाखा-कार्यालय और विक्रय पश्चात्-सेवा कार्य का आपस में सुन्दर समन्वय होना आवश्यक है । अन्यथा विक्रय में प्रगति नहीं हो सकेगी । शाखा कार्यालय क्षेत्र में कार्य करनेवाले सभी विक्रेताओं पर शाखा-प्रबंधक की पूर्ण देख-भाल रहेगी और उसे यहाँतक अधिकार रहेंगे कि वह किसी विक्रेता को योग्य कारण से पदच्युत कर सके । लेकिन प्रमुख कार्यालय यह ज़रूर ध्यान रखे

कि शाखा-प्रबंधक अपने अधिकारों का दुरुपयोग न करे। नियुक्ति, प्रमुख प्रशिक्षण, वेतन और वृद्धि आदि प्रमुख कार्य शाखा-प्रबंधकों की सलाह से करे और विक्रेताओं में प्रदेश-वंटन, छुट्टियाँ आदि कार्य शाखा प्रबंधक स्वयं करे। अपने क्षेत्र के अन्तर्गत कार्य करने वाले विक्रेताओं की समस्याओं को ज्ञात कर उनको हल करना शाखा-प्रबंधक का कार्य है। इस कार्य को पूर्ण रूप से सफल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि वह प्रत्यक्ष प्रदेश में जाकर कभी कभी विक्रेताओं की मुलाकात ले। उसी प्रकार शाखा प्रबंधक भी प्रमुख प्रबंधक से अपना सम्पर्क सदा बनाये रखे और आवश्यक समय पर उनकी मुलाकात लेता रहे।

सार्थ के कार्य को ध्यान में रखकर शाखा कार्यालय को विज्ञापन-कार्य भी सौंपा जा सकता है। हर प्रदेश की अपनी अपनी विशेषताएँ होती हैं जिनके कारण प्रादेशिक प्रचार के लिए स्थानिक विज्ञापन ये शाखा-प्रबंधक करें। किन्तु यदि सार्थ का स्वतंत्र विज्ञापन विभाग हो, तो शाखा कार्यालय अपनी विशेष समस्याओं की जानकारी उसके पास भेजकर अपने प्रदेश के लिए योग्य विज्ञापन की माँग करें। प्रमुख कार्यालय को विज्ञापन साहित्य (विक्रय साहित्य) शाखा कार्यालयों द्वारा ही वितरित करना चाहिये।

विक्रय अनुमान-पत्रक (Sales Budget)

गत सौ वर्षों का व्यापार का अध्ययन हमें यह दर्शाता है कि वाणिज्य क्षेत्र में निश्चित स्वरूप के तथा अनिश्चित स्वरूप के उच्चावचन हुआ करते हैं। वे निम्न लिखित हैं:—

१. अल्पकालीन (Short Term)

(अ) मौसमी (Seasonal)

(आ) चक्रीय (Cyclic)

२. दीर्घकालीन (Long Term)

३. आकस्मिक (Accidental)

सार्थ अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन उच्चावचनों से होनेवाले लाभों का फायदा अधिक से अधिक उठा सकती है और उनसे होनेवाली हानियों को टाल सकती है जबतें कि सार्थ के पास कार्य-पूर्व-योजना प्रारंभ से हो। इस प्रकार की पूर्व-योजना में अनुमान-पत्र काफी महत्व का स्थान रखता है। विक्रय अनुमान-

पत्रक की सहायता से परिस्थिति के अनुसार उत्पादक अपनी उत्पादन-नीति निर्धारित करेगा और विक्रय-विभाग अपना आसम-व्यय लेखा बना सकता है।

श्री व्हाइट हेड के मतानुसार 'विक्रय अनुमान-पत्रक का अर्थ है संभाव्य विक्रय और उसे करने के लिए लगनेवाले व्यय की योजना...दूसरे शब्दों में विक्रय अनुमान-पत्रक याने विक्रय-विभाग का आय और व्यय'। यह परिभाषा कुछ अधूरी-सी लगती है। श्री व्हाइट हेड ने केवल संभाव्य विक्रय और विक्रय-व्यय का ही उल्लेख किया हालांकि भूतकालीन समकों का अध्ययन अत्यंत महत्व रखता है। अतः स्पष्ट शब्दों में विक्रय अनुमान-पत्रक की परिभाषा—भूतकालीन समकों के गहन अध्ययन के पश्चात् आनेवाले वर्ष के विक्रय एवं विक्रय-व्यय का अनुमान लगाना—इस प्रकार होगी। उपर्युक्त परिभाषा से यह स्पष्ट होगा कि विक्रय अनुमान-पत्रक तैयार करना कोई सहज कार्य नहीं है। व्यापार के स्वरूप को ध्यान में रखते हुए कुछ अनुभवी तर्कों की एक समिति पिछले समकों का अध्ययन करने के लिए गठित की जा सकती है। इस समिति द्वारा किये गये सारे सुझावों पर गौर कर निर्णयात्मक विक्रय अनुमान पत्रक स्वयं प्रबंधक बना सकता है। विक्रय अनुमान पत्रक की नींव समंक और अभिलेख है यह कहना बड़ी अतिशयोक्ति नहीं होगी। अतः यह जरूरी है कि सार्थ का अभिलेख विभाग सुसंगठित एवं सदा अद्यावत् रहे।

यदि केन्द्रीय कार्यालय के पास सभी विक्रय-प्रदेशों के अभिलेख स्वतंत्र रूपसे रखे गये हों, तो केन्द्रीय कार्यालय उनके आधार पर प्रदेश के संभाव्य विक्रय का अनुमान कर अनुमान-पत्रक बना सकता है। इस प्रकार बनाया गया अनुमान-पत्रक काफी सुसंगठित होगा। यदि सार्थ के पास अलग अलग प्रादेशिक अभिलेख न हों तो पूरे सार्थ के लिये, विभाग प्रबंधकों की सलाह से, अनुमान पत्रक तैयार कर लिया जाय और उसको प्रदेशों में वंटित कर दिया। इस प्रकार की योजना बनाना कठिन कार्य है। अतः यथा संभव प्रादेशिक अभिलेख स्वतंत्र ही रखे जाने चाहिये।

अनुमान-पत्रक बनाते समय निम्न बातोंपर सोच लेना चाहिये :—

सर्वप्रथम ग्राहकों की क्रय-शक्ति पर विचार करना जरूरी होगा। ग्राहकों की क्रय-शक्ति का परिवर्तन विक्रय पर गहरा प्रभाव डालता है। अतः भविष्य काल में किसी भी कारण ग्राहकों की क्रय-शक्ति में यदि परिवर्तन होने की संभावना हो तो उसका विचार कर लेना आवश्यक है।

क्रय-आदतें सदा परिवर्तन-शील होती हैं जिनपर विक्रय निर्भर रहता है । यदि बर्तनों का ही उदाहरण लिया जाय तो पीतल का अपेक्षा स्टेनलेस स्टील के बर्तनों के प्रति ग्राहकों के मनमें आजकल अधिक आकर्षण निर्माण होने लगा है । अतः विक्रय अनुमान-पत्रक पर निर्णयात्मक विचार करने के पूर्व क्रय आदतों संबंधी बातें भी ठीक रूप से सोच लेनी चाहिये ।

वस्तु का स्वरूप तीसरी बात है जो विक्रय अनुमान-पत्रक पर असर डालती है । वस्तु के स्वरूप पर वितरण माध्यम काफी हदतक निर्भर होता है । वितरण माध्यम और वितरण समय क्षेत्र की व्यापकता निश्चित करेगा और उसीपर परिणामतः विक्रय-राशि निर्भर होगी ।

यदि अगले वर्ष में सार्थ की विक्रय-नीति में कोई परिवर्तन करना हो— उदा० प्रत्यय नीति, ग्राहकों को दी जानेवाली सुविधायें, अपहार नीति, और मूल्य— तो इन बातों का अभियाचन पर किस प्रकार प्रभाव पड़ेगा, यह सोचकर ही विक्रय अनुमान-पत्रक तैयार करना होगा । यह कार्य विपणि-अन्वेषण, प्रतिस्पर्धियों के कार्यों की जानकारी, अपने विक्रेताओं की सूचनायें और विपणन वृत्त आदि बातों के अध्ययन पर आधारित किया जाना चाहिये ।

अंतिम किन्तु सर्वाधिक महत्व की बात प्रतियोगिता है जिसे भुलाकर बनाया गया अनुमान-पत्रक केवल काल्पनिक चीज बनी रहेगी । यदि प्रतिस्पर्धा तीव्र होने की संभावना हो तो उस का मुकाबला करने के लिए ग्राहकों को कौन-कौन सी सहुलियतें देनी पड़ेगी यह सोच लिया जाय और उसको ध्यान में रखते हुए विक्रय अनुमान-पत्रक बना लिया जाय ।

विक्रय अनुमान-पत्रक तैयार करते समय विपणि प्रवृत्ति जानना अत्यावश्यक है । यह प्रवृत्ति देशनोंकों के अध्ययन द्वारा आसानी से जानी जा सकती है । किन्तु यह देख लिया जाना चाहिये कि देशनांक कहाँतक विश्वसनीय हैं और उन के आधार पर निकाले गये निष्कर्ष किस हदतक मार्ग दर्शक हो सकते हैं ।

सरकारी समंक विक्रय अनुमान-पत्रक के लिए काफी सहायक होते हैं । आजकल प्रत्येक विभाग पर सरकारी समंक प्रकाशित हुआ करते हैं जिन का फायदा अवश्य उठाया जाना चाहिए । उदाहरणार्थ जनगणना वृत्त, मूल्यवृत्त, कृषि आगणन आदि समंकों द्वारा विक्रय अनुमान पत्रक बनाने में सहायता पहुँच सकती है ।

विक्रय अभ्यंश (Sales Quota)

किसी भी निश्चित अवधि के लिए सार्थ द्वारा अनुमानित विक्रय की संभाव्य राशि उस सार्थ का विक्रय-अभ्यंश कहलायगी। विक्रय-अनुमान-पत्रक द्वारा अगले वर्ष के लिए निश्चित की गई संभाव्य विक्रय राशि उस वर्ष के लिये विक्रय-अभ्यंश होगा। विपणि के विकास एवं विस्तार के साथ साथ व्यापारियों ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भविष्य के विक्रय का अनुमान लगाकर ही कार्य करना प्रारंभ किया। वास्तव में यह विक्रय-अभ्यंश का ही प्रारंभिक और अनुगत स्वरूप था। इस अनुमान का आधार केवल कल्पना और प्रबंधकों का मोटा अनुभव मात्र था। भूतकालीन समंक, व्यापार-चक्र भूषाचार, परिवर्तन और ग्राहकों की परिवर्तित क्रय-शक्ति का अध्ययन विक्रय अभ्यंश निश्चित करने का दृष्टि से नहीं किया जाता था। आज यह अध्ययन विक्रय अभ्यंश की अनिवार्य बात हो बैठी है। अतः हम यह कह सकते हैं कि विक्रय-अभ्यंश पुराने अनुमानों का ही निखरा हुआ स्वरूप है।

एक निश्चित अवधि के लिये पूर्ण विक्रय-अभ्यंश निश्चित करने के पश्चात् उसका प्रदेशों में अथवा शाखाओं में उनकी विक्रय-शक्ति के अनुसार विभाजन किया जाना चाहिये। इसका उल्लेख विक्रय अनुमान-पत्रक में हम कर चुके हैं। प्रादेशिक या शाखा का विक्रय-अभ्यंश उन क्षेत्रों के शाखा प्रबंधकों द्वारा विक्रेताओं में वितरित किया जाना चाहिये और इसकी जानकारी केन्द्रीय कार्यालय के पास भेज दी जानी चाहिये।

विक्रय-अभ्यंश नीति के लाभ

१. विक्रेताओं के लिए योग्यता और विक्रय का एक प्रमाण निश्चित किया जाता है। उसी प्रकार प्रादेशिक विक्रय-अभ्यंशों द्वारा प्रदेशों की आपस में तुलना की जा सकती है और प्रगति एवं अवनति के कारण खोजकर उस प्रकार नीति निर्धारित की जा सकती है।

२. यह वह वैज्ञानिक रीति है जिसकी सहायता से विक्रेताओं पर नियंत्रण रख विक्रय की देखरेख की जा सकती है। पूरे विक्रय को योजनाबद्ध करने का यह सर्वोत्तम मार्ग है।

३. किसी एक-विक्रेता को सौंपे गये विक्रय अभ्यंश के कारण उसे पूर्ण करने का उत्तरदायित्व उस पर आ जाता है जिसके लिए पूर्ण उत्साह के साथ वह

कार्य करता है। प्रयत्नों के परिणामस्वरूप कार्य सिद्ध होकर विक्रेताओं को आर्थिक एवं प्रतिष्ठा का लाभ होता है। सार्थ के लिये यह पारिभाषिक प्रमाण के नाते उपयुक्त होता है।

४. यदि सार्थ भिन्न भिन्न वस्तुओं का व्यापार करती हो तो अभ्यंश प्रणाली द्वारा सभी प्रकार की वस्तुओं का सभी प्रदेशों में योग्य प्रमाण में प्रचार और विक्रय किया जा सकता है।

उपर्युक्त लाभ हासिल करने के लिए प्रतिमाह विक्रय-अभ्यंश प्रगति की जाँच करना आवश्यक है और जहाँ पर प्रगति योग्य प्रमाण में नहीं हो रही हो, वहाँ की कठिनाइयों को खोजकर शीघ्र उपाय-योजना की जानी चाहिये।

किसी प्रदेश या विक्रेता के लिए विक्रय-अभ्यंश निश्चित करते समय किसी एक बात के आधार पर ही निर्णय न लेते हुए विपणि के सभी पहलुओं का गहन अध्ययन कर निर्णय लेना चाहिये। किसी एक पहलू के आधार पर (जैसे केवल जनसंख्या, केवल क्षेत्र विस्तार आदि) लिया गया निर्णय भ्रामात्मक सिद्ध होगा।

विक्रय परिव्यय (Sales Cost)

हर सार्थ का अन्तिम उद्देश्य ग्राहकों को पर्याप्त संतोष प्रदान करते हुए अधिक से अधिक लाभ कमाना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमें वस्तु के विक्रय-मूल्य का विश्लेषण करना होगा। विश्लेषणात्मक दृष्टि से विक्रय-मूल्य के तीन विभाग हो सकते हैं (१) उत्पादन-परिव्यय और (२) विक्रय-परिव्यय एवं लाभ। प्रतिवस्तु लाभ का प्रमाण कितना रखा जाय यह विक्रय-राशि पर निर्भर रहेगा। जहाँतक उत्पादन-व्यय का प्रश्न है, उसका विक्रय-विभाग से प्रत्यक्ष कोई संबंध नहीं हो सकता। फिर भी इन दो विभागों का आपस में समन्वय रखना अत्यावश्यक है। विक्रय-विभाग उत्पादन-विभाग को उत्पादन संबंधी सूचनाएँ देते रहे और उन पर उत्पादन विभाग सहानुभूति पूर्वक सोचें। गत कुछ वर्षों से उत्पादन-व्यय को कम करने की ओर काफी ध्यान दिया जा रहा है और परिणामतः नये आविष्कारों एवं संशोधनों द्वारा उत्पादन-व्यय काफी प्रमाण में घट गया है। किन्तु उत्पादन-व्यय के साथ साथ विक्रय-परिव्यय पर भी नियंत्रण रखना महत्त्वपूर्ण बात है, इसकी व्यापारियों ने अवहेलना की।

उत्पादन-आविष्कारों द्वारा उत्पादन-व्यय घटता रहा और उत्पादन का प्रमाण बहुत ही बड़े प्रमाण में बढ़ता रहा। इस वर्धित उत्पादन का वितरण करने

के लिए विक्रय विभागों में विज्ञापन और वितरकों को दी जानेवाली सुविधाओं पर होनेवाला व्यय बढ़ने लगा। परिणामतः उत्पादन-व्यय और विक्रय-व्यय का अनुपात कम-ज्यादा (disturb) हुआ और वितरण व्यय की समस्या सम्मुख खड़ी हुई। विक्रय-व्यय पर नियंत्रण रखकर विक्रय-मूल्य कम किया जा सकता है जिससे विक्रय-वृद्धि होकर समस्त लाभ बढ़ सकता है और हानि की संभावना कम की जा सकती है। विपणि में किसी एक प्रकार की कितनी वस्तुएँ लाभ के दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए बेची जा सकती है इस का अनुमान प्रारंभ से लगा लेना अच्छा होगा; क्योंकि किसी एक विक्रय परिसीमा के पश्चात् विक्रय-प्रवर्तन कार्य अधिक प्रमाण में करना पड़ता है और उसका विक्रय के रूप में प्रति फल कम प्रमाण में हासिल होता है। फलतः उस परिसीमा के बाद किए गये विक्रय पर एकक (Unit) विक्रय-व्यय बहुत बढ़ जायगा और इस विक्रयद्वारा प्राप्त लाभ नहीं के बराबर ही होगा। इसलिए यह धारणा गलत है कि विक्रय बढ़ने से लाभ बढ़ता ही है।

विक्रय परिव्यय के विभाग

मोटे प्रमाण पर विक्रय-व्यय के निम्न विभाग किये जा सकते हैं :—

१. संग्रह एवं परिवहन व्यय
२. विक्रेताओं एवं अभिकर्ताओं का पारिश्रमिक
३. केन्द्रीय कार्यालय व्यय
४. विज्ञापन प्रवर्तन कार्य व्यय और विक्रय पश्चात् सेवा
५. अशोध्य ऋण

१. संग्रह एवं परिवहन

विक्रय-व्यय में संग्रह तथा परिवहन व्यय प्रथम महत्त्व रखते हैं। अत्यल्प प्रमाण में क्रय करने की आजकल ग्राहकों की प्रवृत्ति हो गयी है। अतः ग्राहकों को उनकी माँग के अनुसार वस्तुओं की पूर्ति करना आवश्यक है। इसलिये प्रमुख कार्यालय में या प्रादेशिक केन्द्रों में पर्याप्त संग्रह रखना होगा। परिवहन व्यय की दृष्टि से भी पर्याप्त मात्रा में वस्तुएँ केन्द्रों में भेजना आवश्यक है जिससे अनावश्यक होने वाला समवेष्टन व्यय बच जाता है और परिवहन भाटक-दर में भी सहुलियतें प्राप्त हो सकती हैं। इसी परिवहन साधनों का कौन सा माध्यम स्वीकार करें, यह भी सोच-समझकर तय करना चाहिये। शीघ्रगति साधनों से

वस्तुएँ भेजने का यदि प्रबंध हो सके तो ग्राहकों की इच्छानुसार अत्यल्प प्रमाण में और अथाक्त स्वरूप की वस्तुएँ भेजी जा सकती हैं और केन्द्र-स्थानों में संग्रह-गृह रखने का व्यय भी बच सकता है। इसके विपरीत शीघ्रगति परिवहन व्यय अधिक देना पड़ता है। अतः इन सब बातों का अध्ययन कर सार्थ की दृष्टि से और अपने व्यापारी ग्राहकों की दृष्टि से, प्रतिस्पर्धा को ध्यान में रखते हुए उपर्युक्त दो मार्गों में से योग्य मार्ग चुनना चाहिये।

२. विक्रेताओं एवं अभिकर्ताओं का पारिश्रमिक

विक्रेताओं एवं अभिकर्ताओं का पारिश्रमिक व्यय प्रमाण प्रतिशत निश्चित रखा जाय ताकि विक्रय-वृद्धि के साथ साथ प्रतिवस्तु व्यय स्थिर रह सके। पारिश्रमिक की कई प्रणालियाँ हैं जिनमें से अपनी आवश्यकतानुसार सार्थ योग्य प्रणाली को अपना सकती है।

३. केन्द्रीय कार्यालय व्यय

प्रत्येक बड़ी कार्य का केन्द्रीय कार्यालय होता है जिसमें अंकपाल, लेखापाल, लिपिक, निरीक्षक, प्रबंधक, अंकेक्षक और अन्य कर्मचारी अभिलेख और वस्तुएँ भेजने का कार्य किया करते हैं। इस व्यय का भी विक्रय-व्यय में समावेश है। यह व्यय सदा स्थिर स्वरूप रहता है और विक्रय घटने-बढ़ने से उसपर कोई असर नहीं होता। अतः इस व्यय का पूर्णरूप से फायदा उठाने के लिए विक्रय-राशि बढ़ाना ही एकमात्र मार्ग है। यह व्यय यदि अनावश्यक प्रमाण में बढ़ा लौ उसका वस्तु-मूल्य पर प्रतिकूल असर होगा और प्रतिस्पर्धा में वह सार्थ टिक नहीं सकेगी। अतः कार्यालयीन कार्य सरल हो और कार्यकर्ताओं में उत्साह एवं परिश्रम-प्रवृत्ति हो। कार्यालय में आवश्यक सुविधा साधन ज़रूर हों, पर अनावश्यक ऐशो-आराम न हों।

४. विज्ञापन, प्रवर्तन और विक्रय पश्चात् सेवा

आजकल प्रतिस्पर्धा बढ़ जाने के कारण विज्ञापन, प्रवर्तन और विक्रय पश्चात् सेवा पर काफी खर्च किया जा रहा है। इस प्रकार किया गया खर्च जिस हद तक ग्राहकों को खर्च के अनुपात की अपेक्षा अधिक सुविधायें देगा, उस हद तक ही इन बातों पर व्यय करना योग्य होगा।

५. अशोध्य ऋण (Bad debts)

अधिक उत्पादन तथा प्रतियोगिता के कारण व्यापारी ग्राहकों की प्रत्यक्ष सुविधायें प्रदान करना अत्यंत ज़रूरी हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप वर्ष के अन्त

में, सतर्कता रखते हुए भी, कुछ ऋण अशोध्य बन जाता है जिसे विक्रय-व्यय में समाविष्ट समझना आवश्यक है। इस पर नियंत्रण रखने का उत्तम मार्ग यह है कि प्रत्यय प्रदान करते समय प्रत्यय विभाग से सलाह ली जाय।

विक्रय परिव्यय अनुपात और नियंत्रण

संभाव्य समस्त विक्रय का और संभाव्य विक्रय-परिव्यय का अनुमान लगाकर (जिसका उल्लेख विक्रय अनुमानपत्रक में किया जा चुका है) उन दोनों के बीच क्या अनुपात है यह ज्ञात किया जाय। तत्पश्चात् विक्रय परिव्यय के प्रत्येक पद (उदा० संग्रह, परिवर्तन, विज्ञापन आदि) परिव्यय का संभाव्य विक्रय के साथ क्या अनुपात है इसे भी ज्ञात कर लिया जाय। विक्रय करते समय इस अनुपात को स्थिर रखने की भरसक कोशिश करनी चाहिये। उपर्युक्त अनुपात से प्रतिवस्तु और प्रतिप्रदेश विक्रय-व्यय कितना होगा यह ज्ञात किया जा सकता है और प्रत्येक प्रदेश से यह कहा जा सकता है कि उस अनुपात का उल्लंघन वह किसी हालत में न करे। निश्चित किये गये विक्रय-व्यय अनुपात में कोई अवांछनीय परिवर्तन हो रहा हो तो उसके कारण खोजकर उस पर योग्य उपाय किया जाय। उपायों के उपरान्त भी यदि परिस्थिति काबू में नहीं आ रही हो तो विक्रय-अभ्यंश बेशक घटा देना चाहिये।

विक्रय नियंत्रण में समंकों (Statistics) का उपयोग

समंकों के आधार पर यदि विपणि-अन्वेषण किया गया तो भविष्यकालीन विपणि स्वरूप का चित्र वर्तमान काल में ही तैयार करना विशेष कठिन नहीं होगा। ग्राहकों की भविष्यकालीन माँग का ही नहीं बल्कि भविष्यकालीन भूषाचारों का कल्पना-चित्र समंकों द्वारा ज्ञात किया जा सकता है। समंकविहीन विपणि-अन्वेषण भ्रम निर्माण करनेवाला होगा। अतः समंकों की सहायता से विपणि-अन्वेषण कर प्रतिस्पर्धी पर मात की जा सकती है। कुछ सनकी व्यापारी ग्राहकों को छोड़ सर्वसामान्य सभी ग्राहकों की माँग की कल्पना समंक अवश्य दे सकते हैं। समंक विभाग तथ्यों को ही सौंपा जाना चाहिये, अन्यथा दुरुपयोग की काफी गुंजाइश होती है। समंकों की सहायता से मौसमी एवं चक्रीय उच्चावचन की जानकारी प्राप्त हो सकती है और उनसे बचने के लिये योग्य उपाय तैयार रखे जा सकते हैं जिनके बल पर अचानक आनेवाले परिवर्तनों का सामना सार्थ आसानी से कर सकती है। भूतकालीन समंकों के आधार पर खड़ा किया गया भविष्यकालीन चित्र विक्रय नियंत्रण का उत्तम साधन बन सकता है।

विक्रय नियंत्रण में बिन्दु-रेखों (Graps) का उपयोग

पिछले कई वर्षों के समकों का अध्ययन कर अल्प समय में और रूप में निष्कर्ष निकालना कठिन है। केवल विक्रय-अंकों की सहायता से विक्रय-प्रवृत्ति (Trend) जानना संभव नहीं होगा और संभवतः निष्कर्ष गलत भी हो सकता है। किन्तु बिन्दु रेख की सहायता से उपर्युक्त परिस्थिति का चित्र आसानी से खड़ा किया जा सकता है और प्रथम दृष्टिक्षेप में ही व्यापार प्रवृत्ति का अनुमान लगाया जा सकता है, किन्तु यह ध्यान रखना ज़रूरी है कि बिन्दु-रेख तांत्रिक कार्य है और उसे बड़ी सावधानी के साथ किया जाना चाहिये अन्यथा गलत मार्गदर्शन होने की काफी संभावना रहती है। बिन्दु-रेख की सहायता से गत वर्षोंका विक्रय, प्रतिमाहविक्रय-व्यय आदि सारी बातें दर्शाकर उनकी प्रवृत्ति दर्शायी जा सकती है। उसी प्रकार हर व्यय और विक्रय में क्या संबंध है यह विक्रय और व्यय के बिन्दु-रेख निकाल कर जाना जा सकता है। इससे किस माह में कितना लाभ हो रहा है इसकी स्पष्ट कल्पना प्रबंधक कर सकता है और जहाँ भी प्रतिकूल प्रवृत्ति दीख पड़े उसको दुरुस्त करने के लिये उपाय योजना कर सकता है।

नक्शे और चित्र (Charts and diagrams) बिन्दु-रेख की अगली सीढ़ी हैं। इनकी सहायता से कल्पना चित्र अधिक स्पष्ट होता है और योग्य रीति से निकाले गये नक्शे तथा चित्र विक्रय प्रवृत्तिका योग्य एवं सूक्ष्म ज्ञान कराते हैं। नक्शों में आवश्यक भीड़ और अस्पष्टता न हो। उन्हें योग्य आकार में और स्पष्ट रंगों में चित्रित किया जाना चाहिये। चित्रों और नक्शों की सहायता से विक्रय-जानकारी का वर्णन करना एक कठिन कला है। अतः यह कार्य विशेष निपुण व्यक्ति पर ही सौंपना चाहिये।

प्रश्न

१. विक्रय-संगठन का विक्रय-विभाग के लिए क्या महत्त्व है? विक्रय-संगठन में किन-किन बातों का समावेश है?

२. विक्रय-विभाग को कितने प्रकार की नीतियाँ (Policies) निर्धारित करनी पड़ती हैं? विक्रय-विभाग का अन्य विभागों के साथ क्या संबंध है?

३. 'विक्रय-प्रबंधक यह विक्रय-विभाग में अत्यंत प्रभावशाली व्यक्ति है' इस कथन की चर्चा कीजिए ।

४. विक्रय-प्रबंधक के कर्तव्यों का वर्णन कर उसके लिए कौनसे गुण आवश्यक हैं यह बतलाइए ।

५. विक्रय अभिकर्तृत्व पर नियंत्रण रखने के कौनसे भिन्न-भिन्न मार्ग हैं ?

६. विक्रेता का चुनाव करते समय कौनसी सावधानी रखना ज़रूरी है ? चुनाव-प्रणालियों का वर्णन कर उनमें से आप कौनसी पसंद करते हैं यह सकारण लिखिए ।

७. 'प्रशिक्षण मनुष्य को प्रवीण बनाता है' यह विधान विक्रेताओं के लिए कहाँ तक लागू होता है ? प्रशिक्षण प्रणालियों का तुलनात्मक दृष्टि से विवेचन कीजिए ।

८. आपकी देशी तथा विदेशी खेलों के साधनों का व्यापार करनेवाली सार्य है । इस सार्य के लिए नियुक्त विक्रेताओं के लिए कौनसी पारिश्रमिक प्रणाली आप पसंद करेंगे ? अन्य पारिश्रमिक प्रणालियों का संक्षेप में उल्लेख करते हुए तुलनात्मक दृष्टि से चर्चा कीजिए ।

९. विक्रेताओं को विक्रय-प्रदेश किस प्रकार वंटित किया जाय ? उनपर नियंत्रण कैसा रखा जाय ?

१०. बिन्दुलेख, चित्र और नक्शों का विक्रय-विभाग को क्या उपयोग है ?

११. 'विक्रय-अनुमान-पत्रक के सिवा विक्रय करना बिना पतवार और कील के नाव में सैर करने के समान है'—इस कथन के संबंध में आपकी क्या राय है ? अनुमान-पत्रक में अचानक परिवर्तन करने की आवश्यकता कब निर्माण होती है ?

१२. विक्रय-परिव्यय पर नियंत्रण किस प्रकार रखा जा सकता है ?

१३. आप 'आनन्द औषधालय' के प्रबंधक हैं । उस सार्य के विकास के लिए एक योजना तैयार कीजिए । ध्यान रहे कि गत वर्ष उस सार्य में विक्रेता पर नियंत्रण असंभव हो गया था ।

: ६ :

विक्रय-विज्ञापन

किसी भी कलाको परिभाषा-बद्ध करना कठिन है। इसे ध्यान में रखते हुए भी जब किसी कला की परिभाषा की जाती है, तब उसका केवल शब्दकोषीय अर्थ दे देना पर्याप्त नहीं हो सकता। 'विज्ञापन यानी जानकारी' — श्री पं. ज. पटवर्धन—इस प्रकार की परिभाषा अधूरी और अस्पष्ट है। व्यापार जगत में जिस मतलब से 'विज्ञापन' शब्द का प्रयोग किया जाता है, उसे ध्यान में रखते हुए विज्ञापन को 'जानकारी' कह देना पर्याप्त नहीं है। जब वस्तु या सेवा के लिए माँग उत्पन्न करने के लिए जानकारी दी जाती है, तब उसे 'विज्ञापन' कहते हैं। श्री. सी. एल. बोलिंग ने विज्ञापन की परिभाषा इस प्रकार की है—'वस्तु या सेवा के लिए अभियाचन निर्माण करने की कला को विज्ञापन कहा जा सकता है।'।

विज्ञापन विक्रय-कला का अविभाज्य अंग है। विज्ञापन-द्वारा सर्व साधारण जनता को, मनोविज्ञान को ध्यान में रखकर, वस्तु के संबंध में जानकारी दी जाती है। विज्ञापन समस्त जनता को ध्यान में रखता है, किसी व्यक्ति विशेष की चिंता करना उसका कार्य नहीं है। किन्तु विक्रय-कला के विक्रेता का वैयक्तिक ग्राहक से संबंध है। विक्रेता को ग्राहक के वैयक्तिक मनोविज्ञान का अध्ययन करना पड़ता है, जनता का नहीं। इस प्रकार दोनों का उद्देश्य एक ही है।

नये नये आविष्कारों के कारण बड़े प्रमाण में उत्पादन प्रारंभ हुआ और उत्पादित वस्तुओं के प्रकार भी खूब बढ़े। यदि इसका एक छोटासा उदाहरण देना हो तो श्री एफ. डब्ल्यू. टेलरने बतलाया है कि आज १४०० रंगों से कपड़ों की रंगाई होती है। जनता में भूषाचार प्रवृत्ति बढ़ती गयी जिस की पूर्ति के लिए जनता योग्य वस्तुओं की खोज में लगी। उत्पादकों की उत्पादित वस्तुओं की जानकारी इन उपभोक्ताओं के पास कम से कम व्यय में पहुँचाने का विज्ञापन-मार्ग उत्पादकों ने खोज निकाला।

बहुत व्यापक प्रमाण में उत्पादन होने के कारण जनता के अभियाचन का अंदाज पूर्ण रूप से लगाया जाना हर समय संभव नहीं था जिस से कई बार अनावश्यक उत्पादन (Over-Production) हुआ करता था। साथ ही साथ चक्रीय उच्चावचन के कारण अवसाद-समय भी निर्माण होने लगे। उन दिनों में मूल्य गिरने लगा और वस्तुओं का क्रय करना बड़ा कठिन होने लगा। ऐसे समय पर जनता में अपनी वस्तुओं के प्रति प्रेम निर्माण कराने के लिए सिवा विज्ञापनों के कोई मार्ग शेष नहीं रहा।

उत्पादन वृद्धि के साथ साथ विक्रय प्रतियोगिता भी प्रारंभ हुई। अपनी विशेषताएँ जनता को बतलाकर प्रतिस्पर्धी पर मात करने के लिए सिवा विज्ञापन के कोई अन्य प्रभाव पूर्ण माध्यम नहीं रहा। प्रतिस्पर्धा में विजय पाने के लिए प्रति-वस्तु मूल्य घटाने की विचार-धारा उत्पादकों के मन में जड़ पकड़ने लगी और मध्यजनों को हटाकर यह किया जा सकता है ऐसा वे सोचने लगे। इन मध्यजनों के अभाव में वस्तुओं की जानकारी अल्पशो-विक्रेताओं तथा उपभोक्ताओं को पहुँचाने का कार्य विज्ञापन पर सौंपा जाने से कम व्यय में शीघ्र गति से कार्य करने की कल्पना उन्होंने सोची और सफलता पूर्वक कार्यान्वित भी की।

विज्ञापन का कार्य और महत्त्व

विश्वयुद्ध से तहस नहस होने के कारण आज प्रायः हर राष्ट्र वस्तुओं का अभाव महसूस कर रहा है और 'अधिक-उत्पादन करो' के आदोलन में व्यस्त है। किन्तु युद्ध के पूर्व उत्पादन इतने अधिक प्रमाण में बढ़ गया था कि विपणन समस्या सत्तार के सामने जटिलतम हो बैठी थी और चन्द वर्षों में ही वह समस्या फिर से जाग्रत हो कर हमारे सम्मुख खड़ी होने वाली है। इस समस्या का हल विज्ञापन के आधार पर प्राप्त करने की हर राष्ट्र की कोशिश थी और रहेगी। अपनी वस्तुओं तथा सेवाओं की जानकारी संसार के कोने कोने में पहुँचाकर उन का क्रय बढ़ाने का प्रयत्न किया जा रहा है। यह माध्यम परिणामकारी होते हुए भी कम खर्चीला होने के कारण उत्पादकों के सामने जो विपणन समस्या है उसे हल करने में यह सहायक हो सकता है।

हमारे उपभोग के लिए कौन कौनसी वस्तुएँ और सेवायें संसार में मौजूद हैं इसकी जानकारी विज्ञापन हमें बड़े मनोरंजक एवं मनोवैज्ञानिक ढंग से देता है। विज्ञापन के अभाव में वह जानकारी हमारे पास नहीं पहुँच पाती और जीवन को मनोरम बनाने के जो भी साधन उत्पादक हमें दे सकते हैं, हमारे

लिष्ट उपयोगी नहीं हो पाते। उनके अभाव में हमारा जीवन नीरस एवं अत्यंत पिछड़ा हुआ बना रहता और असंख्य जनों में हमारी गणना की जाती। संसार में प्रतिवर्ष ही नहीं बल्कि प्रतिदिन नये नये भूषाचारों एवं उपयोगों की वस्तुएँ पैदा होती हैं। इन वस्तुओं की जानकारी चन्द दिनों, या तो कहिए मिनटों में भी, सर्वत्र फैलाने का प्रभावी साधन है विज्ञापन। रेडियो द्वारा भेजे गये विज्ञापन-समाचार चन्द मिनटों में सर्वत्र वितरित होते हैं। समाचार-पत्रों और इस्तहारों द्वारा किया गया विज्ञापन तुरन्त जनता के पास पहुँच जाता है। इन विज्ञापन साधनों का उपयोग यदि न किया जाय तो ज़रूरी चीजों की जानकारी उपभोक्ताओं के पास पहुँचनी तो ज़रूर, पर उसे पहुँचने में इतनी अधिक अवधि लगेगी कि पहुँचने तक, संभव है, उसका महत्त्व काफी कम हो जायगा और इस प्रकार अत्यंत धीमी गति से पहुँचाई गई जानकारी का व्यय भी काफी अधिक रहेगा।

वस्तुओं की विज्ञापन सामग्री जनता को केवल वस्तुओं की ही नहीं, बल्कि अन्य कई बातों की जानकारी देती है। उदाहरण के लिए 'लाइफ बाय' साबुन लीजिए। वह साबुन हमें स्वच्छता के लिए उपयुक्त कैसे होती है यह विज्ञापन बतलाता है, साथ ही साथ गंदगियों हमारा क्या नुकसान कर सकती हैं और हम उनसे कैसे बच सकते हैं इससे संबंधित सारी भौतिक जानकारी हमें प्राप्त होती है। साबुन के द्रव्यों तथा उनके कार्यों की सामान्य ज्ञान-शिक्षा भी हमें विज्ञापन करा देता है।

विज्ञापन सबसे सस्ता विक्रय माध्यम है। विज्ञापनों द्वारा विक्रय काफी तादाद में बढ़ता है जिससे बड़े प्रमाण में उत्पादन किया जा सकता है। बड़े प्रमाण में किए जानेवाले उत्पादन के कारण प्रतिवस्तु मूल्य कम हो जाता है। अतः अप्रत्यक्ष रूप से मूल्य घटाने का सारा श्रेय विज्ञापन को ही है। विज्ञापन नई नई वस्तुओं की उपभोक्ताओं को जानकारी प्रदान कर उनकी क्रय लालसाएँ और उनके ज़रिये उनका जीवन प्रभाव बढ़ाता है। जीवन प्रमाण बढ़ाने से वे अधिक वस्तुओं का उपभोग प्रारंभ करते हैं जिनसे राष्ट्रीय उद्योगों को प्रोत्साहन प्राप्त होकर राष्ट्र समृद्ध बनता है। संतत किया जानेवाला विज्ञापन उत्पादकों की और उनकी वस्तुओं की ख्याति प्रस्थापित करता है। ख्याति प्राप्त वस्तुओं का विक्रय बिना किसी प्रचार के और उसका भी किया जाने के कारण मध्यजनों का कार्य सरल हो जाता है।

अपने मध्यजनों का विक्रय प्रवाह सफल एवं सरल बनाने के लिए वस्तुओं की ख्याति प्रस्थापित की जानी चाहिये, यह हमने ऊपर देखा है। ख्याति उन्हीं वस्तुओं की प्रस्थापित की जा सकती है जो सर्वोत्तम हो। अतः स्वाभाविक रूप से विज्ञापन उत्पादकों को अच्छी वस्तुएँ पैदा करने के लिए प्रेरित करता है यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस प्रकार प्राप्त अच्छी वस्तुएँ उपभोक्ताओं को अपार संतोष देगी और विक्रय-कला का प्रमुख उद्देश्य सफल होगा।

विज्ञापन उपभोक्ताओं की उत्पादन-दक्षता (Efficiency of Production) बढ़ाता है। वस्तुओं के विज्ञापन द्वारा वस्तुओं की आवश्यकता की लालसा मनुष्य के दिल में निर्माण होती है जिसकी पूर्ति के लिए उन्हें द्रव्य की जरूरत होती है। उस द्रव्य को पाने के लिए वह अधिक दक्षता के साथ कार्य करता है और अपनी निजी कार्य-शक्ति के साथ साथ राष्ट्रीय कार्य-दक्षता (Efficiency of Labour) भी बढ़ाता है। बार बार विज्ञापनों को देखकर अपने घर के सम्मुख मोटर खड़ी रखने की अभिलाषा उसके मनमें पैदा होती है और उसके लिए प्रयत्नशील होने के कारण वह राष्ट्रीय उत्पादन में सहायक होता है।

विज्ञापन द्वारा विज्ञापक की कार्य-दक्षता बढ़ती है। वह विपणि-अन्वेषण करता है ताकि उसके विज्ञापन का प्रत्येक कण और क्षण विपणन के लिए उपयुक्त हो सके। अतः विज्ञापन किसी सार्थ के लिए केवल प्रयोगात्मक चेष्टा के नाते नहीं, बल्कि अभिन्न अंग के नाते आवश्यक है।

व्यापार-चक्रों के आघातों से व्यापार को बचाने का कुछ हद तक प्रयत्न विज्ञापन करता है। अवसाद-समय में उपभोज्य वस्तुओं का अभियाचन गिर जाता है। ऐसे मौकों पर विज्ञापन उनका प्रचार कर माँग स्थिर रखने की कोशिश करता है। अवसाद-समय का मुख्य कारण होता है उपभोक्ताओं की क्रय-शक्ति का हास। ऐसे मौकों पर ग्राहकों को विज्ञापन द्वारा क्रयावकय विक्रय और प्रमाण-शोधन प्रणाली की सुविधाएँ घोषित कर दी जाती हैं। मध्यजनों को हटाकर केवल विज्ञापन के आधार पर विक्रय कर प्रतिवस्तु मूल्य कम से कम रखा जाता है। उसी प्रकार मौसमी उच्चावचन (Seasonal fluctuations) से व्यापारियों को विज्ञापन बचाता है। वह अवसाद महीनों में भविष्यकालीन विक्रय का प्रसंविदा-सुविधाएँ प्रदान कर वस्तुओं का मूल्य गिरने नहीं देता। कुछ मौसमी वस्तुओं को सारे वर्ष तक बनाये रखने की सुविधाएँ (जैसे मौसमी फलों की शीतग्रह में रखने की) निर्माण कर उनकी जानकारी विज्ञापनों द्वारा

ग्राहकों को दी जाती है जिससे उन वस्तुओं की दर पूरे वर्ष तक सामान्यतः समान रह सके।

विज्ञापन वस्तुओं के उपयोग की पूर्ण जानकारी वितरित करता है जिससे वस्तुओं के उपयोग में किस प्रकार सावधानी रखें और उसका अधिक से अधिक आनंद लूटें इसके समाचार विज्ञापन पहुँचाता है जिससे वस्तु के क्रय से उपभोक्ताओं को कल्पना से अधिक (उपभोक्ताधिक्य Consumers Surplus) आनन्द प्राप्त होता है।

कहा जाता है कि 'विज्ञापन का व्यय किसी को बरदाश्त नहीं करना पड़ता, विज्ञापन स्वयं उसे बरदाश्त करता है'। विज्ञापन ने व्यापार जगत् में क्रान्ति निर्माण कर दी है और वास्तव में उसने वस्तुओं का मूल्य बहुत घटा दिया है। उसने वितरण कार्य की जटिलता को इतना सरल बना दिया है जितना सर्कस में रिंगमास्टर क्रूर शेर को बना देता है। विज्ञापन के कारण ही बहुशो-विक्रेताओं का और उनके द्वारा बड़े प्रमाण में होनेवाले वितरण का जन्म हुआ। बहु-विभागी-भांडारों के लिए विज्ञापन तो प्राण है।

विज्ञापन द्वारा सार्थ की विक्रय-राशि बढ़ती है परिणामतः उसे पर्याप्त शुद्ध लाभ होता है।

विज्ञापनों के कारण समाचार-पत्रों की आय बढ़ती है जिसके अभाव में आज संसार में जो अत्यंत सस्ते समाचार-पत्र मिलते हैं, वे सब असंभव हो जाते। समाचार-पत्र ज्ञान प्रदान करने का और संसार के समाचार वितरित करने का कार्य करते हैं, वह भी केवल विज्ञापनों के भरोसे। 'विज्ञापन यदि हटा दिये जायें तो साल में दस बार समाचार पत्र नष्टनिधि हो जायेंगे' — ऐसा श्री न. चि. केलकर का कहना है जो सर्वथा उचित है। विज्ञापनों द्वारा प्राप्त राशि के आधार पर ये समाचार-पत्र सर्वोत्तम एवं सब प्रकार के समाचार और विद्वत्पूर्ण लेख प्राप्त कर ग्राहकों को अत्यंत सस्ते मूल्य में दे सकते हैं।

विज्ञापन सरकारी नीति तथा कार्य की जानकारी भी घोषित करते हैं। नेशनल सेविंग्स सर्टिफिकेट, सरकारी कर्ज आदि के विज्ञापन द्वारा सरकार अपना कार्य शीघ्र और सरल रीति से पूरा कर सकती है। विज्ञापनों के अभाव में सरकार के ये कार्य असंभव हो बैठते।

विज्ञापन की सीमायें (Limitations of Advertising)

विज्ञापन के लाभों का वर्णन सुन या पढ़कर कुछ अनावश्यक उत्साही व्यापारी बिना सोचे समझे विज्ञापन को जादू मान उसका उपयोग करना प्रारंभ

करते हैं। वे सोचते हैं कि विज्ञापन उन्हें लाभ प्रदान करेगा, पर अनुभव के पश्चात् स्थिति विपरीत दिखायी देती है। अतः यह ठीक रूप से समझ लेना चाहिये कि विज्ञापन की भी अपनी सीमाएँ होती हैं और उन को ध्यान में रखकर ही विज्ञापन माध्यम का उपयोग किया जाना चाहिये। अपने विज्ञापन की संभाव्य कार्य सफलता को प्रारंभ से सोच कर किस प्रदेश में, किन माध्यमों द्वारा और कब विज्ञापन करें, इस बात को ठीक से सोच लेना होगा। विक्रय विज्ञापनों के मतानुसार विज्ञापन की निम्न सीमायें (Limitations) हैं :—

१. ग्राहक जिन वस्तुओं को नहीं चाहते, उन वस्तुओं का अभियाचन विज्ञापन पैदा नहीं करता। वास्तव में अभियाचन ग्राहकों की क्रय-इच्छा और क्रय शक्ति पर निर्भर होता है। जनता के विचारों का विरोध करने वाला विज्ञापन उस को वस्तु-क्रय की ओर आकृष्ट नहीं कर सकता। इसके विपरीत जनता के मन में जिन भूषाचारीय वस्तुओं के प्रति (सुप्त क्यों न हो) लालसा है, उन वस्तुओं का क्रय विज्ञापन बहुत ही शीघ्र गति से बढ़ा सकता है। विज्ञापन क्रय-इच्छा निर्माण नहीं करता, स्थित इच्छा को क्रय की ओर प्रवृत्त कर उस इच्छा की पूर्ति के लिए हम क्या दे सकते हैं यह बतलाता है। पिछड़े और दरिद्री-विभागों में मोटर का विज्ञापन व्यर्थ है।

२. केवल विज्ञापन अपंग है। वह स्वयं विक्रय नहीं कर सकता। वह तो विक्रेताओं को विक्रय करने में सहायता करता है। विज्ञापन सार्य की वस्तुओं के प्रति लालसा पैदा करता है जिसे प्रत्यक्ष विक्रय में परिणत करने के लिए योग्य सेवा और विक्रेता की सहायता ज़रूरी होती है।

३. अनियमित और कभी-कभी किया गया विज्ञापन सफल नहीं हो सकता। लोगों के मन पर योग्य प्रभाव डालने के लिए विज्ञापन लगातार और योग्य रीति से किया जाना ज़रूरी है अन्यथा उसका विस्मरण होगा। इससे न तो नये ग्राहक निर्माण होंगे न पुराने बने रहेंगे। लोगों को सतत विज्ञापन द्वारा बार-बार यह बतलाया जाना ज़रूरी है कि वे उसी सार्य से या उसी वस्तु को क्रय क्यों करें।

विज्ञापन की आलोचना

१. विज्ञापन मूल्य बढ़ाता है—आलोचकों का कथन है कि विज्ञापन द्वारा विक्रय-राशि बढ़ती है और उत्पादन का प्रमाण भी। यदि उत्पादन अहासी प्रत्याव के नियमों के अनुसार हो रहा हो तो यह बढ़ता हुआ उत्पादन प्रतिवस्तु

मूल्य बढ़ायेगा। विज्ञापन विज्ञापक की बोधचिन्दांकित वस्तुओं के लिये कभी-कभी पूर्ण या आंशिक एकाधिकार प्राप्त करा देता है। इससे स्पर्धा नष्ट होकर उत्पादक मनमाने मूल्य पाने की इच्छा करने लगते हैं। विज्ञापन पर किया जाने वाला व्यय भी उत्पादन में जोड़ा जाता है और अन्त में उपभोक्ताओं से वह वस्तु-मूल्य के रूप में बसूल किया जाता है।

विज्ञापन एकाधिकार निर्माण करेगा ही यह धारणा गलत है। हरेक उत्पादक विज्ञापन का अवलंब कर अपनी प्रतियोगिता ज़िन्दा रखने की भरसक कोशिश करेगा। इसके बावजूद यदि यह भी मान लें कि एकाधिकार निर्माण होता हो तो भी यह जरूरी नहीं कि उस अवस्था में मूल्य बढ़ेगा ही। आहासी प्रत्याय के दोषों से भी अपने उत्पादन केन्द्रों को विकेन्द्रित कर आहासी प्रत्याय के दोषों से भी एकाधिकारी या उत्पादक आसानी से बच सकता है। प्रायः निर्मित वस्तुओं के बारे में आहासी प्रत्याय नियम लागू नहीं होता। उसमें तो व्यापक परिमाण में उत्पादन के कारण प्रतिवस्तु मूल्य घटता है जिससे सस्ते दाम में वस्तुएँ बेची जा सकती हैं। अतः विज्ञापन का व्यय इस घटनेवाले दाम से किया जा सकता है और कहा जा सकता है कि विज्ञापन अपना व्यय स्वयं करता है। विज्ञापन विक्रय-राशि बढ़ाता है और परिणामतः लाभ भी। अतः वस्तुओं का मूल्य बढ़ाकर उसमें से विज्ञापन-व्यय करने की अपेक्षा वस्तु मूल्य कम रख कर बढ़ी हुई विक्रय-राशि से प्राप्त लाभ में से ही उत्पादक विज्ञापन का व्यय करना योग्य समझेगा। उपर्युक्त बातों के बावजूद भी प्रतिवस्तु मूल्य यदि बढ़ता है तो भी कोई चिन्ता की बात नहीं होनी चाहिये। आजकल जीवनमान बढ़ रहा है जिसके कारण सस्ती वस्तुओं की अपेक्षा अच्छी वस्तुएँ लोग अधिक पसंद करते हैं। ख्याति-पूर्ण वस्तुएँ मँहगी होनेपर भी उपभोक्ता उन्हीं को खरीदना चाहेंगे। यह ख्याति और उत्तम गुणों की प्रतिभूति देने का कार्य विज्ञापन करता है।

२. विज्ञापन का असर अनिश्चित होता है, वह योग्य रीति से किया नहीं जाता और अनावश्यक कंठछेदी प्रतिस्पर्धा बढ़ाता है—

हर समय किया जाने वाला विज्ञापन फलदायी होगा ही ऐसा नहीं कह सकते। ख्याति प्रस्थापित करने की आसक अभिलाषा से कई बार अनावश्यक स्थान में विज्ञापन-व्यय हो बैठता है। उसी प्रकार हर सार्थक विज्ञापन वैज्ञानिक ढंग से ही किया जाता है ऐसा कहना कठिन है। अवैज्ञानिक विज्ञापन पर किया जाने वाला व्यय पूर्णतः व्यर्थ जाता है। साथ ही साथ विद्याल विज्ञापन उन्हीं

व्यापारियों तथा उत्पादकों के लिए संभव है बिनकी आर्थिक हालत अच्छी हो। पूँजीवादी व्यापारी विज्ञापन की सहायता से छोटे किन्तु योग्य व्यापारियों के साथ कंठच्छेदी स्पर्धा कर उन्हें व्यापार-क्षेत्र से निकाल-बाहर करते हैं। कई बार तो अपना प्रतिस्पर्धी विज्ञापन कर रहा है इसलिए हमें भी करना चाहिये इस भ्रामक भावना से विज्ञापन पर व्यापारी काफी व्यय कर डालते हैं।

उपर्युक्त आलोचना यद्यपि सत्य है तथापि यह नहीं भूलना चाहिये कि उक्त दर्शाये गए दोष केवल अपवाद स्वरूप ही घटित होते हैं। हर सार्थ वे गलतियाँ नहीं कर सकती और करे भी तो उसके दुष्परिणाम तुरन्त दिखाई देने लगते हैं जिसके बाद उन पर शीघ्र ही नियंत्रण लगाया जा सकता है।

३. हरेक विज्ञापन विश्वसनीय नहीं होता—

विज्ञापन वस्तुओं के संबंध में अपूर्ण और अविश्वसनीय जानकारी देता है। इसका परिणाम यह होता है कि ग्राहक कई बार ऐसी वस्तुओं का क्रय करते हैं जो अच्छी वस्तुओं के समान दीखने पर भी उनकी बनावट नकली और हीन कोटि की हुआ करती है। दो बोधचिह्नंकित वस्तुएँ समान गुणों की होते हुए भी, उनमें से एक का उत्पादक विज्ञापन की सहायता से अपनी वस्तु दूसरे उत्पादक की वस्तु से अधिक अच्छी है यह बतलाने की कोशिश करता है। यह देखकर दूसरा उत्पादक भी अपनी वस्तुओं का वर्णन बढ़ा-चढ़ाकर करना प्रारंभ करता है जिसका अन्त अतिशयोक्ति और असत्य-कथन में हो सकता है। परिणामतः भड़कीले वर्णन द्वारा भावनाओं को उभार कर ही विक्रय करने की प्रवृत्ति सर्वत्र फैलती है।

यह दोष सर्वथा सत्य है, फिर भी यह दोष आसानी से हटाया जा सकता है। असत्य विज्ञापनों पर कानून द्वारा या सरकारी विज्ञापन जाँच समिति (जिस के अनुमान के सिवा विज्ञापन गैरकानूनी घोषित किया जा सके) स्थापित कर निर्वेध लगाया जा सकता है। इस छोटे से दोष के लिए, जिसे हटाना आसान है, विज्ञापन जैसी महान शक्ति का त्याग करना सर्वथा अनुचित है।

४. विज्ञापन व्यक्ति को स्वार्थी और मलबू-बनाता है और समाज में ऐसे का अनावश्यक आकर्षण निर्माण कर देता है —

विज्ञापन अनेक वस्तुओं का भड़कीला चित्र लोगों के सामने खड़ा करता है जिसे देखकर उनके मन में वस्तुएँ खरीदने के लिए हलचल मच जाती

है। हरेक वस्तु खरीद करना हर किसी को संभव नहीं होता, अतः व्यक्ति अपने परिवार और समाज के प्रति उसके जो कर्तव्य होते हैं उन्हें भूलकर अपनी ही लालसाओं की तृप्ति के दृष्टिकोण से सोचने लगता है। अतः स्वार्थ और आपमत्तलब्धीपन का साम्राज्य समाज में फैल कर वह कमजोर बन जाता है।

५. समाचार-पत्रों का व्यापारीकरण होता है—

व्यापारी अपने विज्ञापनों के लिए समाचार-पत्र चलाते हैं और देश के प्रभावी समाचार-पत्रों को भी पैसे के बलपर खरीद लेते हैं। ये समाचार-पत्र उन व्यापारियों की योग्य आलोचना नहीं करते जिससे पाठकों के मनमें उन पत्रों के लिए रस निर्माण नहीं हो सकता। ये समाचार-पत्र कहानियों, पत्रों तथा सम्पादकीय टिप्पणियों के रूप में उन व्यापारियों की और उनकी वस्तुओं की अनावश्यक झूठी प्रशंसा करना प्रारंभ करते हैं।

६. विपणि का स्वरूप बदल गया है—

प्रारंभ में उपभोक्ताओं और अल्पशो-विक्रेताओं का विपणि में काफी प्रभाव रहता था और उनकी इच्छा के आगे उत्पादक को झुकना पड़ता था। किन्तु आजकल उत्पादक विज्ञापन द्वारा इन उपभोक्ताओं तथा अल्पशो-विक्रेताओं के मन में इस प्रकार का वातावरण निर्माण करता है कि अपना व्यक्तित्व भूलकर उत्पादकों के अधीन हो जाते हैं। वे उन्हीं वस्तुओं का विक्रय करने के लिए प्रभावित होते हैं जिनका अधिक से अधिक विज्ञापन होता है। उन के अपने मत के लिए कहीं भी गुंजाइश नहीं रहती, उत्पादक कहेगा वे ही चीजें उन्हें खरीदनी पड़ती हैं।

उपर्युक्त आलोचना का अध्ययन कर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि विज्ञापन के कुछ दोष अवश्य हैं, किन्तु उसकी की जानेवाली अधिकांश निन्दा निराधार है। दोष आखिर किस में नहीं होते? दोषों के बावजूद भी विज्ञापन समाज की कितनी सेवा करता है यही देखकर उसके पक्ष या विपक्ष में हमें निर्णय लेना होगा। वास्तव में विज्ञापन की व्यापार को अनमोल देन है! आज विपणि को विश्व-व्यापक स्वरूप प्राप्त हो गया है जिसमें विज्ञापन के अभाव में अंधेरे में वस्तु टटोलने जैसी स्थिति निर्माण हो सकती है।

आज की मानवी बासनायें अत्यंत जटिल हैं और हाँती जा रही हैं। संसार की इस स्थिति में मानवी विलासिता पूर्ण करने के लिए विविध प्रकार की

वस्तुओं की जरूरत है जिनकी जानकारी जनता को देने का सर्वोत्तम और उचित साधन सिवा विज्ञापन के कौनसा हो सकता है ? उत्पादन स्वतंत्र वैयक्तिक उपक्रम के आधारपर किया जाता है, अतः उनकी कौनसी वस्तु किस प्रकार की और किस उपयोग की है यह विज्ञापन के सिवा जानना असंभव है। विज्ञापन प्रदाताओं में प्रतिस्पर्धा निर्माण कर उत्पादन-व्यय को घटाने में और वस्तु-गुणों को वर्धित करने में सहायता करता है। इसीलिये 'विज्ञापन' को मानव-हित का संरक्षक कहा जाता है।

मनोविज्ञान का विज्ञापन के साथ संबंध

क्रय की प्रेरणा का मन के साथ घनिष्ठ संबंध है। अतः मन को क्रय की ओर प्रेरित कर सके इस प्रकार के विज्ञापन ही सफल विज्ञापन कहलाये जा सकते हैं। इसलिए मनोविज्ञान का विज्ञापन के साथ अत्यंत नजदीक का संबंध है। मनोविज्ञान-शास्त्र की अवहेलना करने वाला विज्ञापन कभी सफल नहीं हो सकता।

वैज्ञानिक दृष्टिसे सर्व प्रथम महत्व की बात यह है कि विज्ञापन की प्रतिलिपि इस प्रकार की हो जिससे उसकी ओर पाथिक या दर्शक आकृष्ट हो सके। विज्ञापन का प्रथम आकर्षण उसके स्वरूप पर निर्भर होगा। विज्ञापन का दृश्य स्पष्ट निश्चित और प्रत्यक्ष स्वरूप का होना चाहिये जिससे पाठक या दर्शक को विज्ञापन के अर्थ का आसानी से पता चल सके। शब्दों की रचना और चित्रका दृश्य इस प्रकार का हो मानो प्रत्यक्ष वस्तु का आनंद मूर्त स्वरूप में दर्शक के सम्मुख खड़ा हो गया हो। पुराने जमाने में वस्तुएँ देख-परख कर, सूँघ-चख कर खरीदी जाती थी। पर अब वह संभव नहीं रहा है। अतः विज्ञापन वस्तु या सेवा की इस प्रकार शब्द-चित्र खड़ा कर दे मानों वस्तु या सेवा के उपर्युक्त गुणों का आनंद वह प्रत्यक्ष में लूट रहा हो।

ग्राहक के चित्त को आकृष्ट कर आँखोंद्वारा शब्द-चित्र को मन की गहराई तक यदि पहुँचाना हो तो विज्ञापन का स्वरूप बहुत ही मनोरंजक किन्तु सरल रखना होगा। किसी भी प्रकार की जटिलता पाठक या दर्शक के मन में झुंझलाहट पैदा कर देती है। छोटे-छोटे अक्षरों में और नजदीक लिखी गयी पंक्तियों में किया गया विज्ञापन आँखों को तकलीफ पहुँचाती है। अतः स्पष्ट, बड़े और नित्य के अक्षरों में दूर दूर पंक्तियों में विज्ञापन की प्रति लिखी जानी चाहिये। निस्वर्क कलात्मक अक्षर लिख कर केवल सुन्दरता के पीछे पढ़ना योग्य नहीं है। २३” से लेकर ३१/४” की पंक्ति पढ़ने की दृष्टिसे योग्य मानी जाती है।

विज्ञापन का पूर्व स्मृति के साथ मनोवैज्ञानिक संबंध होता है। हमारी धार्मिक, राजनैतिक या पारिवारिक स्मृतियाँ यदि विज्ञापन चित्र देखकर हमें याद आती हैं तो हमारी पूर्व अनुभूतियाँ स्पष्ट चित्रों के रूप में हमारे समुख लुई होती हैं और विज्ञापन के प्रति हम अपनेपन की भावना महसूस करने लगते हैं। अतः विज्ञापन का चित्र स्पष्ट और उसका वर्णन सीढ़ियों का बना हुआ हो ताकि प्रत्येक सीढ़ी का वर्णन पढ़ने के पश्चात् उस पर क्षणमात्र सोचकर हम धीरे धीरे आगे बढ़ सकें।

ध्यान आकृष्ट करने की दृष्टि से तीसरी मनोवैज्ञानिक बात यह है कि विज्ञापन चित्र तथा वर्णन में एक ही बात का प्रभाव-पूर्ण वर्णन होना चाहिए। अनेक बातों की भीड़ लगाने से किसी एक भी बात का परिणाम न हो सकेगा। सारा वर्णन एक प्रवाह के समान हो जो अनवरत बहता रहे और अखंड अबाधित महसूस होवे।

विज्ञापन में दोहराने का काफी महत्त्व है। अतः प्रमुख बातों को एक दो बार इस प्रकार दोहराया जाय जिससे चित्र स्पष्ट होते हुए भी उसमें दोहराने से निर्माण होनेवाली जटिलता महसूस न हो। अपनी परिचित या पूर्व स्मृति के साथ संबंध रखनेवाली बात यदि दोहराई जाय तो मनुष्य दिलचस्पी से उसकी ओर देखना प्रारंभ करता है।

विज्ञापन अत्यंत सरल प्रणाली द्वारा और सर्वसामान्य जनता की भाषा में तथा लिपि में किया जाना चाहिये। शब्दाडंबर के बोझ से उसे जटिल बनाकर केवल कुछ ही विद्वान तथा बुद्धिमान लोगों को उसे चीज बनाई रखना बहुत बड़ा धोखा है। सरल, स्पष्ट और सम्पूर्ण चित्र तथा वर्णन ही प्रभावपूर्ण सिद्ध हो सकता है। लिखे गये चित्र में स्थान, कथावस्तु, उस समय का वातावरण और लोकवृत्ति इन सब बातों का योग्य समन्वय अत्यंत आवश्यक है।

विज्ञापन के चित्र सदा उमंगों से परिपूर्ण होने चाहिये। निराश और मनहूस वातावरण पैदा करनेवाले तथा अति करुण चित्रों को यथासंभव टालना चाहिये। मनुष्य-जीवन दुख और चिन्ता से इतना परिपूर्ण है कि वह फिर आपके विज्ञापन की चिन्ता में हिस्सा बँटा नहीं सकता। चित्र सदा जिन्दा एवं उत्साहवर्धक हो। उसमें मौलिकता, नवीनता और सुसंगति होनी चाहिये। चित्र और वर्णन इन दोनों का नजदीक का संबंध हो जिससे मानव-मन विचित्रता (Abusurdity) का अनुभव न करे।

विज्ञापन-चित्रों का समुदाय सदा सुसंस्कार तथा सुविचार पैदा करनेवाला होना ज़रूरी है। कुविचार और अश्लीलता के भाव व्यक्त करनेवाले चित्रों की ओर सभ्य जनता घृणा की निगाह से देखती है। विज्ञापन के अड़ोस-पड़ोस का वातावरण भी उसका पोषक रखना ज़रूरी है। किसी समाचार-पत्र में दिये गये विज्ञापन के पृष्ठ पर ही यदि दूसरे हीन विज्ञापन हों तो वे हीन विज्ञापन अच्छे विज्ञापन की कीमत भी घटा देते हैं।

यथासंभव नकार दर्शकता विज्ञापन में टालनी चाहिये। अपने प्रतिस्पर्धी की वस्तुएँ अपनी वस्तुओं की अपेक्षा खराब हैं ऐसी निंदा करने की प्रवृत्ति को प्रेक्षक और पाठक पसंद नहीं करते हैं। अपने गुण बताना ही पर्याप्त है।

विज्ञापन-चित्र अच्छे कागज पर अच्छे रंगों में और अच्छे चित्रकारों द्वारा निकाले जाने चाहिये जिससे विडंबना की गुंजाइश न रहे।

जिस विभाग में विज्ञापन करना है वहाँ की रुढ़ियों और धार्मिक भावनाओं आदि का पूरा खयाल रखना चाहिए। भारत में काला वस्त्र अत्यंत अशुभ माना जाता है, जब कि यही रंग चीन में अत्यंत शुभ समझा जाता है। भारत में उल्लू का चित्र अशुभ है, इंग्लैंड में वही शुभ है। विज्ञापन में इन बातों को नहीं भूलना चाहिये। कुछ चीजें सत्य होते हुए भी धार्मिक भावनाओं को यदि दुखानेवाली हों तो उस बात को टाल देना ही बुद्धिमानी है।

विज्ञापन मनुष्य में क्रय-इच्छा का झरना निर्माण करनेवाला होना चाहिये। अपने प्रतिस्पर्धी की अपेक्षा हम अधिक सेवाएँ और अच्छी वस्तुएँ किस प्रकार दे सकते हैं इसका स्पष्ट चित्र उसमें होना ज़रूरी है। विज्ञापन करने के पूर्व अनुभवी और तज्ञ लोगों की सलाह लेना ज़रूरी है।

विज्ञापन माध्यम (Advertising Media)

विज्ञापक अपने विज्ञापन के लिये कौनसा विज्ञापन माध्यम निश्चित करे यह उसके व्यापार क्षेत्र, ग्राहकों के प्रकार, वस्तुओं का उपयोग और उसकी कार्य-शक्ति इन बातों पर निर्भर रहेगा। यहाँ पर इतना ही कहा जा सकता है कि माध्यम ऐसा हो जो कम-से-कम व्यय में स्थायी ग्राहकों का संपर्क रख और भविष्यकालीन ग्राहकों के साथ संपर्क प्रस्थापित कर विक्रय-वृद्धि कर सके। आज-कल विज्ञापन के अनेक माध्यम उपलब्ध हैं, उनमें से अपनी वस्तु या सेवा के लिये कौनसा माध्यम उपयुक्त हो सकता है यह काफी सोच-समझकर और

विशेषज्ञों की सलाह लेकर तय करना चाहिये अन्यथा गलत माध्यम का अवलंब लेने पर उसपर किया गया व्यय व्यर्थ जायगा।

विज्ञापन के लिये निम्न माध्यम उपलब्ध हो सकते हैं :—

१. प्रदर्शन (Displays)
२. नियतकालिक माध्यम (Periodical Media)
३. प्रत्यक्ष विज्ञापन माध्यम (Direct Media)
४. समूह माध्यम (Mass Media)
५. चलचित्र (Cinema)
६. भाषण (Lectures)
७. रेडियो

१. प्रदर्शन : प्रदर्शन दो प्रकार के होते हैं—

(अ) बाह्य प्रदर्शन और (आ) आन्तरिक प्रदर्शन। इनका वर्णन 'विक्रय-कला' विभाग में दिया जा चुका है।

२. नियतकालिक माध्यम :—

अ. समाचार-पत्र

आ. विक्रेताओं के समाचार-पत्र

इ. विविध नियतकालिक जैसे—

(अ) स्थानीय प्रकाशन

(ब) महाविद्यालयीन प्रकाशन

(क) मार्गदर्शिका (Directory)

(ड) मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक आदि पत्रिकाएँ।

(अ) गत कुछ वर्षों में विज्ञापन के अनेक माध्यम प्रचलित हुए हैं, फिर भी समाचार-पत्र माध्यम का महत्त्व अत्यंत अधिक है। समाचार-पत्रों की रोज की घटनायें, राजनैतिक चर्चा, क्रीड़ाओं का वर्णन, चलचित्रों की आलोचना आदि विविध जानकारी के कारण वे समाज में अत्यंत लोक-प्रिय हैं। प्रतिदिन पढ़े जाने के कारण उनमें प्रकाशित विज्ञापन हर रोज जनता की नज़र में आते हैं। समाचार-पत्रों के समान ऐसा दूसरा कोई भी विज्ञापन माध्यम नहीं है जो विज्ञापकों की खबरें विविध प्रकार के ग्राहकों तक, मन चाहे स्थान पर, प्रतिदिन और नियमित समय पर तथा कम से कम व्यय में पहुँचा सके। इतनी शीघ्र

गति से विक्रय बढ़ाने भले दूसरे माध्यम ही नहीं हैं। जिस कार्य का व्यापार केन्द्रीय स्थान पर केन्द्रीभूत है और जिसके ग्राहक व्यापक क्षेत्र में बिखरे हुए हैं उन साथों के लिये यह माध्यम अधिक उपयुक्त है। उदाहरणार्थ बहुविभागी माडागार, सीधे अल्पशो-विक्रेताओं तथा उपभोक्ताओं के साथ सम्पर्क चाहने वाले उत्पादक आदि के लिये यह माध्यम उपयुक्त है। समाचार-पत्र माध्यम के निम्न लाभ हैं :—

१. प्रतिपाठक-व्यय बहुत ही कम आता है।

२. अत्यंत व्यापक क्षेत्रों की विपणि में विज्ञापन पहुँचते हैं।

३. घर के हर व्यक्ति के लिए रुचि निर्माण हो सके इस प्रकार की कोई न कोई खबर समाचार-पत्र में होती है। अतः सभी व्यवसाय के तथा प्रकार के व्यक्तियों के पास ये विज्ञापन पहुँचते हैं।

४. इस माध्यम द्वारा किये जाने वाले विज्ञापन की प्रतिक्रिया शीघ्र ही प्रतीत होने लगती है। यदि विज्ञापन परिणामकारी हुआ हो तो तुरन्त अभियाचन में वृद्धि दिखाई देगी। यदि प्रतिक्रिया अनुकूल न हुई तो योग्य समय पर माध्यम या पद्धति बदल दी जा सकता है जिससे व्यर्थ होनेवाला विज्ञापन-व्यय बच जाय।

५. वस्तुओं के भूषाचारों में होनेवाले परिवर्तनों की और वर्धित सेवा सुविधाओं की जानकारी नित्य और नियमित रूप से स्थायी तथा भविष्यकालीन ग्राहकों को देना ज़रूरी होता है जिससे उन्हें अद्यावत वस्तुओं के और नूतन सङ्कलितों के लाभों का जानकारी प्राप्त हो सके। यह कार्य सफलता के साथ समाचार-पत्र ही कर सकता है।

६. रेडियो को छोड़ अत्यंत शीघ्र गति से विज्ञापन पहुँचाने वाला माध्यम समाचार-पत्र है। कई बार टेलीफोन द्वारा समाचार-पत्रों को विज्ञापन की जानकारी दे दी जाती है और चन्द घण्टों के बाद पाठकों के हाथ में विज्ञापन का समाचार-पत्र उपस्थित हो जाता है।

७. समाचार-पत्रीय विज्ञापन में काफी प्रत्यास्थता (Elasticity) होती है। विज्ञापन का आकार अपनी इच्छानुसार छोटा-बड़ा किया जा सकता है, स्थायी बदली जा सकती है और साथ ही साथ विज्ञापन पृष्ठ बदलकर नवीनता निर्माण की जा सकती है।

८. विख्यात समाचार-पत्रों में छपे हुए विज्ञापन पर उनके ग्राहक विश्वास करते हैं। कुछ समाचार-पत्र अपनी ईमानदारी के लिए प्रसिद्ध होते हैं, वे झूठे और अश्लील विज्ञापन को स्वीकार ही नहीं करते। परिणामतः उन समाचार-पत्रों द्वारा विज्ञापन कर लोगों का विश्वास संपादन करना काफी आसान होता है।

समाचार-पत्रों के विज्ञापनों की कुछ सीमाएँ (Limitations) हैं :—

१. जिनके ग्राहकों का क्षेत्र सीमित है, उनके लिए समाचार पत्रों के विज्ञापन केवल व्यर्थ व्यय है। समाचार-पत्र ऐसे अनेक स्थानों पर पहुँचता है जहाँ पर उनके ग्राहक नहीं होते।

२. समाचार-पत्र की आयु बहुत ही कम होती है। पढ़ने पर उसकी उपेक्षा कर दी जाती है। अतः न वही विज्ञापन बार बार पाठकों के सम्मुख आ सकता है न जानकारी के लिए वह संग्रहीत किया जाता है।

३. समाचार-पत्र की एक ही प्रति में एक ही वस्तु का व्यापार करनेवाली कई साथों के विज्ञापन होते हैं जिससे व्यर्थ में ही वहाँ पर प्रतियोगिता निर्माण हो जाती है।

४. समाचार-पत्रों का कागज सामान्य कोटि का होता है जिससे विज्ञापन के चित्र विकृत हो सकते हैं। उसी प्रकार भिन्न भिन्न रंगों का उपयोग भी सीमित ही रहता है।

(आ) जहाँ समाचार-पत्र विक्रेताओं की माँग की पूर्ण रूप से पूर्ति नहीं करते, आवश्यक स्थान पर अन्य समाचार-पत्रों का प्रचार नहीं होता, विज्ञापन व्यय काफी अधिक रहता है, वहाँ व्यापारी स्वयं अपना या सहकारिता के आधार पर समाचार-पत्र केवल विज्ञापनार्थ प्रकाशित कर सकते हैं। इस प्रकार के समाचार पत्र वैयक्तिक सार्थ द्वारा या आलोक-प्रमण्डल द्वारा प्रकाशित किये जाते हैं और वे अन्य व्यापारियों के विज्ञापन स्वीकृत करते हैं। विज्ञापक समाचार-पत्र के प्रबंधक को अपने ग्राहकों की सूची दे देता है जिन्हें समाचार-पत्र की प्रतियाँ मुफ्त भेज दी जाती हैं।

इस प्रकार के समाचार-पत्र के पक्ष में निम्न दुर्लालें दी जा सकती हैं :—

१. इन समाचार-पत्रों का वितरण विज्ञापकों के आदेशानुसार होने के कारण वे जिसे पत्र पहुँचाना चाहते हैं उसे पत्र मिलता है। अतः जहाँ अन्य समाचार-पत्र नहीं पहुँचते, वहाँ इस प्रकार के समाचार-पत्र पहुँचाए जा सकते हैं।

२. माध्य (Average) समाचार-पत्रों की तुलना में इन समाचार-पत्रों द्वारा विज्ञापन की खबर अधिक शीघ्र गति से पहुँचाई जा सकती है।

३. इस प्रकार किये गये विज्ञापन उनकी ईमानदारी के बारे में जानकारी प्राप्त करने पर ही स्वीकृत किये जाते हैं। परिणामतः पाठक इन विज्ञापनों पर अधिक विश्वास करते हैं। अतः केवल प्रतिस्पर्धा के लिए भ्रामक और झूठी खबरें छपाई जाने की इसमें गुंजाइश नहीं होती। उसी प्रकार घटाई गई कीमत में विक्रय (Reduction Sale) आदि विज्ञापन स्वीकार कर व्यर्थ की प्रतियोगिता निर्माण नहीं की जाती है।

४. इस माध्यम-द्वारा होनेवाला विज्ञापन सस्ता होता है।

इस माध्यम के विपक्ष में निम्न दर्ताएँ दी जाती हैं :—

१. इस प्रकार के माध्यम द्वारा केवल विज्ञापित वस्तुएँ ही बेची जाती हैं।

२. यह माध्यम केवल छियों, बच्चों आदि की वस्तुओं के लिए ही उपयुक्त हो सकता है, प्रादुर्भाव के लिए नहीं।

३. इस प्रकार के समाचार-पत्र प्रतिदिन प्रकाशित नहीं होते हैं। सालभर में एक या दो बार ही प्रकाशित होते हैं। अतः विज्ञापन बार बार जनता के सम्मुख नहीं आता।

४. अतः व्यापारियों के समाचार-पत्रों के विज्ञापन सामान्य समाचार-पत्रों के विज्ञापनों के सहायक हो सकते हैं, उनका पूर्ण रूप से स्थान नहीं ले सकते।

(इ) मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक तथा अन्य पत्र-पत्रिकाओं द्वारा भी विज्ञापन किया जा सकता है। इन पत्रों का तीसरा स्थान है और समाचार-पत्रों के करीब करीब विज्ञापन इनमें छपते हैं। समाचार-पत्रों के गुणदोष कम अधिक प्रमाण में इस विज्ञापन में भी मौजूद हैं। प्रथम और उसके बाद के सात आठ पृष्ठों में छपे हुए विज्ञापन काफी महत्त्व रखते हैं।

मासिक पत्रों में विज्ञापन देते समय मासिकों का परिचय कितना विस्तृत और किस विभाग में है यह जान लेना चाहिये। यह अभिलेख अंशक के अहवाल में पाया जा सकता है। इसी प्रकार मासिक-पत्र किस प्रकार के लोगों द्वारा पढ़ा जाता है यह ज्ञात कर मासिक के गुण जान लेना चाहिये। जो मासिक-पत्र भारतीय गरीब किसानों और मजदूरों में परिचालित होता है उसमें

मोटर का विज्ञापन छपाना व्यर्थ होगा। मासिक-पत्र में किस प्रकार के अन्य विज्ञापन हैं यह देखकर ही व्यापारी को अपने विज्ञापन देने चाहिये। जिस मासिक-पत्र में अत्यंत उच्छृंखल और अश्लील विज्ञापन होते हैं, उसमें गंभीर विज्ञापन छपाना अयोग्य होगा। अतः अपनी वस्तु का दर्जा और मासिक-पत्र का दर्जा इसे ठीक सोचकर ही विज्ञापन दिये जाने चाहिये।

मासिक-पत्रों का परिचलन मर्यादित क्षेत्र में ही होता है। इसी प्रकार उनके प्रकाशन की तिथि भी निश्चित रहती है। अतः व्यापारी की वस्तु की दृष्टिसे जो समय और दिन योग्य होगा उसी दिन विज्ञापन लोगों के हाथ में नहीं दिया जा सकता। दो अंकों के बीच अवधि भी काफी होती है जिससे पहले अंक के विज्ञापन का असर दूसरे अंक तक बनाये रखना संभव नहीं हो सकता।

कुछ पत्र-पत्रिकायें स्थानिक महत्व रखती हैं जिनमें स्थानिक साधों और सेवाओं के विज्ञापन दिये जा सकते हैं। स्थानिक विक्रय-शालाओं के लिए ये पत्र-पत्रिकायें काफी-महत्व रखती हैं; किन्तु उनकी परिचलन मर्यादा के कारण अन्यो के लिये उनका कोई उपयोग नहीं हो सकता।

महाविद्यालयीन प्रकाशन और मार्ग दर्शिकायें (Directories) अपने क्षेत्र में ही अपना स्थान रखती हैं। उनका परिचलन समाज के किसी एक विभाग तक ही सीमित रहता है। अतः उस हिस्से के लिये उपयुक्त विज्ञापन ही उनमें छपाया जाना चाहिये।

३. प्रत्यक्ष विज्ञापन माध्यम (Direct Advertisement Media)

इस माध्यम का महत्व दूसरी प्रति का है। पत्र-पत्रिकाओं के मार्ग द्वारा किया जाने वाला विज्ञापन उन सब लोगों के पास पहुँचेगा जिनके पास समाचार-पत्र और मासिक-पत्र अनिवार्य रूपसे पहुँचते हैं। उन लोगों में से यदि कुछ ही लोगों में जब प्रचार करना हो तब वह माध्यम पूर्ण रूपसे लाभकारी नहीं हो सकता, क्योंकि उसमें विज्ञापन का काफी हिस्सा व्यर्थ जायगा जिसका व्यय विज्ञापक को निरर्थक बरदाश्त करना पड़ेगा। अतः ऐसे समय पर प्रत्यक्ष विज्ञापन माध्यम सहायक हो सकता है। इस माध्यम में जिन लोगों को विक्रय-पत्र भेजे जाते हैं उस पर विज्ञापक का सीधा नियंत्रण रहता है और वह विज्ञापन व्यय को भी नियंत्रित कर सकता है। जिन विक्रय-शालाओं के पास समाचार-पत्रीय विज्ञापन के लिये आर्थिक गुंजाइश नहीं होती, जो सीमित और विशिष्ट प्रकार की वस्तुएँ ही

बेचती हैं और जो केन्द्रीय विपणन स्थान से दूर बसी हुई हैं उनके लिए यह विज्ञापन माध्यम उपयुक्त हो सकता है।

सीधे विज्ञापन में निम्न विक्रय-साहित्य का समावेश है :—

१. विक्रय-पत्र (Sales Letter)
२. विक्रय लिफाफे
३. परिचलन-पत्र (Circular Letters)
४. स्थायी सौख्यता (कलात्मक विज्ञापन परिपूर्ण)
५. लघुपुस्तिका (Booklet) जिसमें एक लम्बे कागज़ पर विज्ञापन की सारी बातें लिखकर उसे मोड़ दिया जाता है।
६. कागज़ का बड़ा तख्ता (Broad Sheet) इस पर विज्ञापन लिख कर किताब के समान घड़ी कर दी जाती है।
७. ब्रौचर (Brochure) यह एक १५-१६ पृष्ठों की लघुपुस्तिका होती है।
८. सूची पत्रिका (Catalogue)
९. कट-आउट—विशेष ढंग से कटा हुआ पत्र
१०. समावरण (Encloser)—पत्र के साथ में भेजी जानेवाली सामग्री।
११. गृह पत्रिका (House Journal)
१२. पत्रिकाओं में रखे जानेवाले पत्र (Insets)
१३. एक या दोनों ओर लिखा हुआ (Leaflets) न मोड़ा हुआ पत्र।
१४. बड़े पोष्ट कार्ड
१५. जवाबी पोष्ट कार्ड
१६. प्रत्युत्तर बिना स्टैम्प कार्ड
१७. मोटे कागज़ का एक (Sticker) छोटा टुकड़ा जो किसी लिखित सामग्री पर अच्छी रीति से चिपका दिया गया हो और पढ़ने के पूर्व उसे उठाना आवश्यक हो।

इस माध्यम का सर्व प्रथम लाभ यह है कि विज्ञापन सामग्री चुने हुए लोगों के पास ही पहुँच सकती है जिन्हें उन विज्ञापनों में रुचि होती है। अतः अनावश्यक लोगों के पास विज्ञापन भेजकर किया जाने वाला व्यय बच जाता है। उसी प्रकार विक्रय साहित्य जिन्हें भेजा जाता है उन की सूची में

आवश्यक परिवर्तन परिस्थिति के अनुसार संभव हो सकता है। सूची में से निरर्थक नाम निकाल दिये जा सकते हैं और अन्य योग्य नाम उस में जोड़े जा सकते हैं। इस विज्ञापन में आकार की कोई मर्यादा नहीं होती। अपनी आवश्यकता-नुसार पत्र छोटे या बड़े आसानी से किये जा सकते हैं। वस्तुओं के न्यादर्श और अन्य मनोरंजक चित्र भी साथ में भेजे जा सकते हैं। जिन्हें विक्रय-साहित्य भेजा जाता है उन पर प्रत्यक्ष निरीक्षण और निमंत्रण इस सामग्री द्वारा संभव होता है। यह विज्ञापन मार्ग विज्ञापकों और उन्हें पानेवालों के बीच गुप्तता रखता है। अतः उन के प्रसंविदों, मूल्य आदि के बारे में प्रतिस्पर्धियों को जानकारी प्राप्त नहीं हो सकती। वैयक्तिक स्पर्श विक्रय-कला में काफी महत्त्व रखता है। ये वैयक्तिक पत्र ग्राहकों से वैयक्तिक संबंध प्रस्थापित करते हैं। अपने पते पर आया हुआ पत्र देखकर उसे पाने वाले को हर्ष हुआ करता है जिसे क्रय में परिणत करना कोई कठिन बात नहीं है। ये पत्र ऐसे समय पर भेजे जा सकते हैं जब पाने वाले आर्थिक दृष्टि से क्रय के लिए तैयार हों और उन चीजों का क्रय-मौसम आया हो।

इस विक्रय-माध्यम के बारे में यह कहा जाता है कि वह समाचार-पत्रीय विज्ञापन की तुलना में अधिक खर्चीली प्रणाली है। यद्यपि यह बात सत्य है, तथापि अपना व्यय अपने काबू में रखना इस प्रणाली में संभव है। इस प्रणाली में दूसरी दिक्कत यह है कि ग्राहकों के पते बदलते रहते हैं और कुछ लोगों का देहावसान भी हो जाता है। उस की पूरी जानकारी समय पर, प्राप्त नहीं होनेपर काफी सामग्री व्यर्थ में ही भेजी जाती है और बार बार सूची परिवर्तन की संज्ञा बनी रहती है। जो विक्रय-शालाएँ प्रगतिशील होती हैं और जिनकी ग्राहक संख्या बढ़ती रहती है उनके लिए यह माध्यम बहुत ही सीमित हो जाता है। विक्रय साहित्य किसी के पते पर पहुँचने पर उन पर पढ़ने की करीब करीब सख्ती की जाती है जिस का लोग विरोध करते हैं। समाचार-पत्रों के लिए खर्च किया जाता है अतः उसे पढ़ना प्रतिष्ठा की बात होती है, इस के विपरीत मुफ्त में आये हुए ये लम्बे पत्र लोगों को उतने प्रभावित नहीं कर सकते। कई बार तो विचित्र विज्ञापन-पत्र किसी असंबद्ध सज्जन के पास पहुँच जाता है। जैसे यदि किसी अत्यंत धनिक स्त्री के पास “कपड़े सीकर कुछ आमदनी पाने के लिए सौने का यंत्र खरीदिए” इस अर्थ का पत्र पहुँच जाय तो वह कितनी नाराज होगी! साथ

हीं साथ सीधे-विज्ञापन-सामग्री तैयार करना एक विशेष कला है जिसका प्रबंध हर छोटी सार्य के लिए संभव नहीं हो सकेगा ।

४. समूह माध्यम (Mass Media)

समूह माध्यम का प्रतिपाटक या दर्शक व्यय बहुत ही कम होता है । उसका आकार और दर्शन बहुत ही आकर्षक एवं मन को लुभाने वाला होता है । इस विज्ञापन में कल्पना-चुनाव के लिए काफी अधिक गुंजाइश होती है । अनेक रंग और मनमोहक चित्रों का उपयोग भी इस माध्यम में संभव होता है ।

किन्तु यह माध्यम केवल सर्व-साधारण जनता के उपयोग का ही हो सकता है, विशेष और बौद्धिक स्तर ऊँचा रखने वाले लोगों के लिये नहीं । लोग उसे आते जाते सरसरी निगाह से देखते हैं, अतः योग्य लोगों पर योग्य प्रकार से प्रभाव डालने का कार्य ये विज्ञापन नहीं कर सकते । कितने पयिकों ने विज्ञापन की ओर देखा होगा और उनमें से कितने लोगों के मन में अनुकूल प्रतिक्रिया हुई होगी इसका अंदाज व्यापारी नहीं लगा सकते । सामान्यतया लोगों से कुछ परिचित वस्तुओं का ही विज्ञापन इस प्रणाली द्वारा किया जा सकता है । इस विज्ञापन में जिन्दापन का अभाव होता है । वे केवल अन्य माध्यमों द्वारा दी गई यादगार को पुनः जागृत करने का कार्य कर सकते हैं ।

ये विज्ञापन सुंदर रंगों और आकर्षक चित्रों की सहायता से किये जाने चाहिये । उनका प्रदर्शन ऐसे स्थान पर हो, जहाँ से अनेक लोग प्रतिदिन गुजरते हैं । जिन लोगों के साथ विक्रय-शाला का सम्पर्क नहीं आता, उनके लिये इस माध्यम द्वारा अपनी जानकारी भेजी जा सकती है । इसी प्रकार शहर में जो नये बसनेवाले आते हैं या प्रवास के नाते जो लोग आते हैं उनके लिये उपहार-गृह और भोजनालय के विज्ञापन अत्यंत उपयुक्त सिद्ध हुए हैं । इनमें इतिहास (Posters), बुलेटिन आदि सामग्री समाविष्ट है ।

५. चल-चित्र माध्यम

यह माध्यम इन दिनों बहुत व्यापक प्रमाण में उपयोग में लाया जा रहा है । विदेशों में इसका काफी प्रचार है । भारत में तो यह अत्यंत उपयुक्त माध्यम है, क्योंकि भारतीय जनता निरक्षर होने के कारण पढ़ नहीं सकती पर चित्रों द्वारा और वार्तालापों द्वारा वस्तुओं का ज्ञान आत्मनी से प्राप्त कर सकती है । ये विज्ञापन देशव्यापी तथा उपभोक्त्य वस्तुओं के लिए काफी उपयुक्त हो

सकते हैं। विज्ञापन की फिल्म बनायी जाती है जिसके लिए काफी व्यय करना पड़ता है, फिर भी इस विज्ञापन का प्रति-दर्शक व्यय अत्यल्प रहता है। सुन्दर और मनोरम चलचित्र मनोवैज्ञानिक दृष्टि से दर्शकों की भावनाओं को अधिक आकृष्ट करते हैं। ५०१ साबुन का चलचित्र-विज्ञापन अत्यंत मोहक एवं प्रभावशाली बना है। ये चलचित्र उपहार गृहों में भी मुफ्त दिखाये जाने लगे हैं।

सिनेमा-गृहों में विभ्राति के समय पर स्लाइड्स लगाकर जो विज्ञापन किया जाता है उसे इसीका एक हिस्सा कह सकते हैं और उसका असर समूह-माध्यम के समान ही होता है। स्थानिक साधों के लिए वह माध्यम बहुत ही लाभकारी है।

६. भाषण माध्यम

यह माध्यम काफी पुराना है और इसका महत्त्व बहुत ही कम हो गया है। फिर भी पिछड़े हुए देशों में इसका उपयोग किया जाता है। विशेषतः सस्ती और हल्की वस्तुएँ इस प्रणाली-द्वारा विज्ञापित की जाती हैं। प्रतिष्ठित जनता इस प्रकार के विज्ञापन सुनने के लिए चौराहे पर खड़ी रहना अपनी इज्जत के खिलाफ समझती है। देशाती और अनपढ़ों के लिए यह माध्यम अब भी उपयुक्त है।

७. रेडियो माध्यम

यह रेडियो का युग माना जाता है। श्री आइ. ए. हरश्चमन का कथन है कि 'रेडियो-विज्ञापन याने बहुत बड़े प्रमाण में शब्दों-द्वारा विज्ञापन करना है' अतः अत्यंत व्यापक और आन्तरराष्ट्रीय प्रमाण में रेडियो द्वारा विज्ञापन संभव है। पश्चिमी राष्ट्रो में प्रायः हर घर रेडियो उपलब्ध है और इसलिए करोड़ों लोगों का सम्पर्क इस माध्यम द्वारा संभव हो सकता है। भारत में इस माध्यम का उपयोग बहुत ही कम किया जाता है। गोवा केन्द्र में विज्ञापन स्वीकृत होते हैं। नवीनता के नाते इस माध्यम का असर काफी अच्छा होता है। इस विज्ञापन में और विक्रेता-ग्राहक के बीच होनेवाले भाषण में काफी सभ्य है। अन्तर इतना ही है कि प्रथम स्थिति में ग्राहक विक्रेता को देख सकता है और रेडियो-भाषण में नहीं। इस प्रणाली द्वारा किये जानेवाले विज्ञापन कहाँ तक सफल हुए हैं इसका अन्दाज़ लगाना संभव नहीं है और प्रायः भाषण-शक्ति व्यर्थ ही जाती है।

इस प्रणाली के पक्ष में कहा जाता है कि रेडियो विज्ञापन ग्राहकों के मन पर कर्णोन्मुख-द्वारा असर डालता है (नयनों-द्वारा नहीं) और इसलिए अपनी

विशेषता रखता है। इसके द्वारा व्यक्तिगत निवेदन किया जाता है अतः उसमें मित्रता और ज़िन्दगी का स्पर्श होता है। नाटिका आदि मनोरंजन मार्गों-द्वारा विज्ञापन संभव होने के कारण उन कार्यक्रमों से ग्राहक उकताते नहीं हैं। यह प्रणाली व्यापक प्रमाण में और ग्राहकों के निजी कमरे में खबरें पहुँचाती है। सुननेवाले को किसी प्रकार की तकलीफ नहीं उठानी पड़ती। समय के अनुसार विज्ञापन कार्यक्रम में परिवर्तन किया जा सकता है।

इस माध्यम की सबसे पहली कमजोरी यह है कि उसके द्वारा वस्तु का प्रत्यक्ष चित्र नहीं दिखलाया जा सकता। संभव है टेलीविजन का आविष्कार जब सर्वत्र उपयोग में आया तब वह अड़चन दूर हो सकेगी।

इस माध्यम द्वारा किया जानेवाला विज्ञापन अत्यल्प अवधि में करना पड़ता है। चार छः मिनट के भीतर किया गया विज्ञापन सुनने वालों के मन पर असर डाल नहीं सकता। किसी एक समय में कुछ ही वस्तुओं का विज्ञापन किया जा सकता है। खबरें सुनाई जाने के समय पर जो रेडियो के पास होगा वह विज्ञापन सुन सकेगा। उसके एक मिनट बाद तो विज्ञापन का अस्तित्व समाप्त हो जायगा।

रेडियो-विज्ञापित वस्तुओं की खबरें शीघ्र ही भुलाई जाती हैं और यदि कोई उसके पश्चात् खबरों का विवरण चाहे तो वह उसे हासिल नहीं हो सकता।

इस विज्ञापन में काफी व्यय होता है और लोगों की रुचि के अनुसार विज्ञापन का कार्यक्रम बनाने में काफी मेहनत उठानी पड़ती है। जनता के किसी एक विभाग के लिए विज्ञापन करना संभव नहीं है। किया गया विज्ञापन सभी के लिए हुआ करता है, अतः वर्ग-विशेष की विशेषता निर्माण करना असंभव है।

सहकारी विज्ञापन (Co-operative Advertising)

‘एक ही जाति की वस्तुओं के उत्पादक या विक्रेता, या एक ही प्रकार की सेवाएँ प्रदान करनेवाली विक्रय-शालाएँ या प्रमण्डल जब अपनी वस्तु का या सेवा का प्रचार करने के लिए या विक्रय बढ़ाने के लिए मिलकर विज्ञापन करते हैं तो उसे सहकारी विज्ञापन कहते हैं।’ इस प्रकार के विज्ञापन के निम्न हेतु हो सकते हैं :—

१. वस्तु से या सेवा से सम्भाव्य ग्राहकों को परिचित कराना।
२. वस्तु के गुणों का या उपयोगों का सम्भाव्य ग्राहकों में प्रचार करना।
३. यदि वस्तु के बारे में जनता में या ग्राहकों में असन्तोष या गलतफहमी हो तो उसे दूर करना।

४. किसी विदेशी वस्तु की या सेवा की संगठित रूपसे प्रतिस्पर्धा करना ।

उक्त दर्शाये गये उद्देश्यों के अध्ययन से यह साफ जाहिर है कि इस प्रकार का विज्ञापन उसी समय किया जायगा जब उन वस्तु के उत्पादकों या सेवा प्रमण्डलों के सम्मुख एक ही समस्या होगी । उदाहरणार्थ आगोप प्रमण्डलों को (Insurance Companies) या चाय उद्योग को लिया जा सकता है । चाय के उत्पादन की वृद्धि के साथ जब उपभोग नहीं बढ़ा तब सब चाय उद्योगपतियों के सम्मुख चाय का विक्रय बढ़ाने की समस्या उत्पन्न हो गयी । अतः चाय के गुणों का वर्णन करनेवाले विज्ञापन की आवश्यकता महसूस हुई और 'इंडियन टी मार्केट एक्स्पैशन बोर्ड' ने, जो कि चाय उद्योगपतियों की प्रतिनिधि संस्था है, सहकारी विज्ञापन करना आरम्भ किया । यही बात आगोप-प्रमण्डलों के प्रति भी लागू होती है । भारतीय जनता में आगोप के प्रति कुछ गलत धारणायें हैं और भारतीय आगोप-प्रमण्डलों को विदेशी प्रमण्डलों से प्रतिस्पर्धा भी करनी पड़ती है, अतः 'भारतीय आगोप प्रमण्डलों में ही आगोपन कराइए' इस प्रकार के सहकारी विज्ञापन में सब भारतीय आगोप-प्रमण्डलों का हित है यह जानकर इस प्रकार का सहकारी विज्ञापन किया जाता है । इस प्रकार के विज्ञापन से जनता का दृष्टिकोण बदला जा सकता है और इस कार्य में सफलता मिलने पर सब उत्पादकों या सेवा प्रमण्डलों का हित हो सकता है । इसके अतिरिक्त आपसी कंठ-च्छेदी प्रतिस्पर्धा को हटाने के लिए भी एक ही जाति की वस्तु का उत्पादन करने वाले प्रमण्डल या विक्रय करनेवाली विक्रय शालाएँ इस प्रकार का विज्ञापन कर सकती हैं, और व्यर्थ की प्रतिस्पर्धा में होनेवाला विज्ञापन-खर्च बच सकता है । इस प्रकार विज्ञापन की एक आलोचना से विज्ञापन को मुक्त कर सकते हैं । यदि विदेशी प्रमण्डलों से प्रतिस्पर्धा के लिए सहकारी विज्ञापन का उपयोग किया जाय तो देशी प्रमण्डलों की प्रतिस्पर्धा शक्ति बढ़ाई जा सकती है ।

उक्त दर्शाये गये लाभ के होते हुए भी इस प्रकार के विज्ञापन की सीमायें हैं । यदि एक ही समस्या का सब साथों को सामना न करना पड़े तो सहकारी विज्ञापन का उपयोग प्रमण्डल या सार्व पसंद नहीं करते ।

विज्ञापन प्रतिलिपि (Copy of Advertisement)

विज्ञापन में प्रतिलिपि का वह महत्त्व है जो भोजन का जीवन में विकृत भोजन के कारण जिस प्रकार स्वास्थ्य सदा के लिए खराब होने की संभावना

होती है, उसी प्रकार विकृत प्रतिलिपि विज्ञापन के दुश्मन का कार्य कर सकती है। मनेवैज्ञानिक ढंग से आकर्षणपूर्ण प्रतिलिपि तैयार करना विज्ञापन सफलता की प्रथम सीढ़ी है। प्रतिलिपि का योग्य ढाँचा तैयार करने के लिए विपणि का पूर्ण ज्ञान, चित्रकला निपुणता, शब्द भांडार, उपलब्धता और सामान्यज्ञान (Common Sense) इन गुणों की नितांत आवश्यकता है।

प्रतिलिपि के आवश्यक गुण

१. वह सरल हो :—

प्रतिलिपि सरल तथा सामान्य जनता की भाषा में लिखी जानी चाहिये। शब्दाडंबर और कला की तथा उच्च भाषा की कसरत प्रतिलिपि में उपयोगी नहीं हो सकती। क्योंकि विज्ञापन पाठकों के लिए गहरे अध्ययन का विषय नहीं हो सकता, वह तो चलते फिरते या पजे पलटते समय सहज पढ़ने या देखने की वस्तु है। अतः जटिलता प्रतिलिपि की शत्रु है। जीवन की अनेक अड़चनों से ग्रस्त मानव प्रतिलिपि की जटिलता में फँसना कभी भी पसंद नहीं करता। साथ ही साथ सामान्य जनता भाषा तथा चित्र-कला विशेषज्ञ नहीं होती है जो अत्यंत कला-क्लिष्ट प्रतिलिपि को समझ सके। अतः यह ज़रूरी है कि प्रतिलिपि इतनी सरल हो कि सामान्य अनपढ़ मजदूर उसके चित्र पर से उसकी कल्पना कर सके और उसकी सरलता का मजा लूट सके।

२. वह स्वाभाविक हो :—

स्वाभाविक वस्तु सबको पसंद आती है। अनावश्यक भड़कीलापन, चमक-दमक, अश्लील या आर्तशृंगार पूर्ण शब्द-प्रयोग आदि बातें घृणा की पात्र मानी जाती हैं। चित्र में भी नारी-गात्रों का विकृत दर्शन, कामप्रेरक दृश्य, अतिभयानक या वीभत्स प्रसंगों का चित्र आदि बातें प्रयत्नपूर्वक टाली जानी चाहिये। प्रतिलिपि इतनी स्वाभाविक होनी चाहिये, मानों उसकी प्रत्येक बात का उपयोग पाठक निःसंकोच ले रहा हो। ज़रूरी से लेकर बूढ़ोंतक, शिक्षित से लेकर अनपढ़ोंतक और पुरुषों से लेकर स्त्रियोंतक सभी को उस विज्ञापन की अस्वाभाविकता खटकनी नहीं चाहिये। अक्सर कहा जाता है कि प्रतिलिपि उतनी स्वाभाविक हो जितना एक वर्ष का बालक होता है, जिसे कोई भी उठाकर प्यार से चूम सकता है।

३. वह स्वयंपूर्ण हो :—

प्रतिलिपि का अधूरी होना बड़ा व्यंग माना जाता है। प्रतिलिपि पढ़ने के पश्चात्—‘विज्ञापक क्या कहना चाहता है’ यह सवाल पाठक के मनमें कभी खड़ा नहीं होना चाहिये। विज्ञापन का मतलब न समझने पर कोई भी पाठक उसका मतलब किसी से पूछने नहीं जायगा। उसे उसके लिए फुर्सत नहीं होती है, और हो भी तो दूसरे के पास अपना अज्ञान—कि वह मतलब नहीं समझ पाया—व्यक्त करना नहीं चाहेगा।

४. वह केवल सूचनात्मक हो :—

प्रतिलिपि किसी एक पक्ष विशेष की मत-प्रणाली से प्रभावित रखना महा-भयंकर दोष है जिसके परिणाम-वश उस प्रणाली को न माननेवाले सभी सज्जन विज्ञापन के विरोधी बनकर उसकी बदनामी करना प्रारंभ करेंगे। अपने विचारों और मतों का प्रचार करने का साधन वस्तु-विज्ञापन नहीं है। वैसे तो हर व्यापारी को पाटोंबाजी के दल-दल से सदा अलिस रहना चाहिये। प्रतिलिपि का कार्य—‘सत्य समाचार देना’ इतना ही है। उन समाचारों का निष्पक्ष भाव से विचार करना पाठकों पर छोड़ देना चाहिये। अनावश्यक विशेषणों का प्रयोग कर प्रतिलिपि को क्लिष्ट बनाना उचित नहीं है। श्री वालटेअर तो ‘विशेषण को वास्तविकता का शत्रु’ मानते हैं।

५. वह उत्साहपूर्ण हो :—

उत्साह प्रतिलिपि का अविभाज्य अंग है। निष्प्रभ एवं उदासीन प्रतिलिपि ग्राहकों की आँखों को आकृष्ट नहीं करती। चन्द्रमा के दर्शन होते ही जिस प्रकार कुमुद-पुष्प खिलते हैं उसी प्रकार प्रतिलिपि का दर्शन-मात्र पाठकों के मनमें उत्साह और उमंगों की बाढ़ लानेवाला होना चाहिये। वैयक्तिक सेवा में मानवी स्पर्श होता है और इसीलिए विक्रय-कला अपना महत्त्व बनाए रख रही है। उस मानवी-स्पर्श का सजीव चित्र खड़ा करने की क्षमता प्रतिलिपि में आवश्यक है।

६. वह अतिशयोक्तिपूर्ण न हो :—

भारतीय विज्ञापकों में अतिशयोक्ति-दोष बहुत बड़े प्रमाण में आ गया है। अतः कई बार सत्य-विज्ञापन में भी पाठक अविश्वास व्यक्त करने लगते हैं। असत्य-कथन यानी अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार लेना है। खोयी हुई इज्जत बरसों प्रयत्न करने पर भी वापिस नहीं आती। पाठक एक बार धोखा खा

सकता है, बार बार नहीं; और इस प्रकार धोखा खाया हुआ पाठक वस्तु के दुर्गुणों का स्वयं-प्रेरित प्रचारक बनता है ।

७. वह अतिसंक्षिप्त हो :—

कुल विज्ञापकों को अनावश्यक अनेक बातें प्रतिलिपि में लिखने का मोह हुआ करता है जिस से प्रतिलिपि अत्यंत गंदी एवं अपाठ्य बन जाती है । संक्षेप में पूर्ण भावार्थ करने के लिए प्रतिलिपि लेखक को शब्द-भांडार बड़ा समर्थ रखना पड़ता है ।

८. एक समय एक-दो ही गुणों का उद्घाटन हो :—

प्रतिलिपि में एक समय किसी एक-दो गुणों का ही उद्घाटन किया जाना चाहिये । सभी बातें एक साथ कहने से उनमें से किसी एक का भी योग्य प्रभाव नहीं पड़ पाता । वस्तु के ऐसे गुण चुन लेने चाहिये जो जनता को मालूम नहीं हों और उन्हीं गुणों पर प्रकाश डालना चाहिये । अन्य गुणों की जानकारी तो लोगों को होती ही है ।

इसी प्रकार एक प्रतिलिपि में यथासंभव एक ही वस्तु का वर्णन होना चाहिये । जिस प्रकार विक्रेता एक समय एक ही वस्तु का वर्णन कर सकता है, उसी प्रकार एक समय प्रतिलिपि में एक ही वस्तु की चर्चा योग्य रूप से की जा सकती है ।

९. उस में समय-सुसंगति और मौलिकता हो :—

प्रतिलिपि लिखते समय मौसम, प्रसंग, स्थान आदि बातों का विचार कर लेना चाहिये । बरसात के दिनों में ग्रीष्म ऋतुका चित्र निकालना बुद्धिमानी नहीं कहलायेगी । उसी प्रकार अनाड़ी जातियों के लिए बनायी गयी प्रतिलिपि में ऐसे वैज्ञानिक-चित्र निकालना जिसे वे समझ न सकें, केवल मूर्खता होगी ।

शीर्षक

शीर्षक वह मोटे अक्षरों में सब के ऊपर लिखा हुआ शब्द-समुच्चय है जिसे पढ़कर प्रतिलिपि की जानकारी की मोटी कल्पना की जा सकती है । अतः 'शीर्षक' प्रतिलिपि का प्राण है । इस शीर्षक के तीन कार्य होते हैं :—

(अ) ध्यान आकृष्ट करना ।

(आ) आकृष्ट चित्त में कुतूहल निर्माण करना ।

(इ) प्रतिलिपि के समाचारों का निचोड़ बताना ।

वास्तव में आकर्षण निर्माण करने के लिए चित्र का उपयोग किया जाता है, फिर भी चित्रों को अधिक आकर्षक बनाने में शीर्षक काफी सहायता करता है। जिस विज्ञापन की प्रतिलिपि में चित्र नहीं होता है, वहाँ पर चित्र का कार्य भी 'शीर्षक' संभालता है। अतः यह ज़रूरी है कि शीर्षक सामान्यतः इतना स्पष्ट और बड़ा हो जिससे आने-जानेवाले या पाठक सहज रूप से उसकी ओर देखें और उसे समझ सकें। शीर्षक का रंग और आकार आँखों को संतोष प्रदान करनेवाला होना चाहिये। भड़कीले रंग और अनावश्यक कलापूर्ण आकार पढ़ने-देखने के कार्य में काफी बाधा खड़ी करते हैं।

इस प्रकार प्रतिलिपि की ओर देखकर जो उत्सुकता निर्माण होती है उसका असर क्षणमात्र ही का होता है। उस असर को स्थायी बनाने के लिए शीर्षक में दूसरा गुण आवश्यक है और वह है कुतूहलपूर्ण रस निर्माण करना। रस निर्माण होते ही पाठक उस कला में तल्लीन होते हैं और प्रतिलिपि को अपना असर डालने के लिए अवकाश मिल सकता है। रस निर्माण करने की दो प्रणालियाँ हैं—

१. सामान्य रुचि (General Interest)

२. विशेष रुचि (Specific Interest)

सामान्य रुचि निर्माण करनेवाली प्रतिलिपि केवल ध्यान आकृष्ट करती है, वस्तु का ज्ञान नहीं देती। 'जल्दी कीजिए स्कंध समाप्त हो रहा है' यह सामान्य रुचि का उत्तम उदाहरण है। इस शीर्षक से पाठक के मनमें कुतूहल ज़रूर निर्माण होता है, पर क्या समाप्त हो रहा है इसकी जानकारी उसे पूरा मजमून पढ़ने पर ही प्राप्त हो सकती है। जल्दी में पढ़नेवाले पाठकों के लिए इस प्रकार का विज्ञापन निष्क्रिय सिद्ध हो सकता है।

विशेष रुचि निर्माण करनेवाले शीर्षक पूरे मजमून का सारांश दे देते हैं। 'कीचड़ से बचने के लिए बाटा जूते इस्तेमाल कीजिए'। 'आपको सर्दी के प्रकोप से ओरिएंटल नीलगिरी बचावेगी' या 'विवाह प्रसंग पर मेंट देने के लिए यह पुस्तक' आदि प्रकार के शीर्षक विशेष रुचि निर्माण करते हैं।

उपर्युक्त दोनों प्रकारों के शीर्षक पूर्ण वाक्य में हो सकते हैं या केवल वाक्यांश में भी।

शीर्षक का निर्माण (Constuction of Head Lines)

शीर्षक अक्सर चार प्रकारों में लिखे जा सकते हैं :—

१. जानकारी के रूप में
२. सलाह के रूप में
३. प्रश्न-रूप में
४. आज्ञा के रूप में

१. जानकारी के रूप में :—

इस प्रकार का शीर्षक केवल सच्चे शब्दों में और स्पष्ट भाषा में जानकारी देता है। यह जानकारी सत्य और विश्वसनीय होनी चाहिये। अन्यथा आजकल अद्भुत रस निर्माण करनेवाले अनेक असत्य शीर्षकों के लिए भारतीय विज्ञापन बदनाम हो रहे हैं। 'घर बैठे प्रतिमाह ५००) कमाइए,' 'तीन रुपयों में बालक,' 'जो चाहोगे, मिलेगा,' 'चन्द मिनटों में खाँसी जड़मूल से नष्ट' आदि शीर्षकों में सिवा-अतिशयोक्ति के कुछ नहीं होता। अतः यदि विश्वास पैदा करना हो, तो 'सत्य कथन' सिद्धांत का उल्लंघन कभी भी नहीं करना चाहिये।

२. सलाह के रूप में :—

वास्तव में सलाह और जानकारी में विशेष अंतर नहीं है। इस प्रकार के शीर्षक में जानकारी के साथ-साथ सलाह भी दी जाती है। 'आप की आँखें अधिक पढ़ने से लाल हो गई हैं तो.....इस्तेमाल कीजिए,' 'नौद नहीं आना अच्छा नहीं.....से नौद शीघ्र आती है' — आदि प्रकार के शीर्षक इस विभाग में आते हैं। इस प्रकार के लम्बे शीर्षकों को दो विभागों में विभाजित कर उसका आधा हिस्सा (जैसे नौद नहीं आना अच्छा नहीं) मोटे अक्षरों में और शेष आधा हिस्सा उस के नीचे कुछ छोटे अक्षरों में लिखा जाता है।

३. प्रश्न के रूप में :—

प्रश्न रूप शीर्षक काफी लोकप्रिय एवं प्रभावपूर्ण सिद्ध हुआ है। जैसे 'क्या आपको कब्जियत की शिकायत है?' इस प्रश्न-शीर्षक को देखते ही उस शिकायत वाले सज्जन उस प्रश्न का जवाब अपने मन में तैयार कर नीचे के हिस्से में उसका क्या हल है देखना चाहेंगे। विशेषतः मासिक-धर्म की पीड़ा पानेवाली स्त्रियों के लिए 'आप क्यों परेशान है?' शीर्षक सदा आकर्षणपूर्ण होता है यह तो नित्य के अनुभव की बात है।

४. आशा के रूप में :—

धनिक और सुसंस्कृत ग्राहकों के लिए इस प्रकार का शीर्षक उपयुक्त नहीं हो सकता। इसके विपरीत सामान्य कोटि के और मामूली शिक्षित लोगों के लिए वह काफी प्रभाव पूर्ण होता है। धनिक लोगों को आशा सुनने की आदत नहीं होती, इसके विपरीत आशा सुनना ही गरीबों का स्वभाव-धर्म होता है। 'मलेरिया के लिए एग्यू मिक्शर लीजिए' यह शीर्षक भारतीय देहातियों पर काफी प्रभाव डालता है। परन्तु इसके विपरीत 'सौरभ इत्र इस्तेमाल कीजिए' यह आशा-शीर्षक अयोग्य है क्योंकि इत्र का उपयोग धनिक करते हैं जिन्हें 'आशा' अपमान स्वरूप प्रतीत होती है।

उपर्युक्त प्रकारों में से किस पद्धति का शीर्षक उपयुक्त होगा, यह सेवा या वस्तु के प्रकृति पर निर्भर रहेगा।

शीर्षक लिखते समय सर्व प्रथम महत्त्व की बात यह है कि उसकी लम्बाई इतनी ही हो जिसे पाठक आसानी से एक ही निगाह में पढ़ सके। एक शब्दीय शीर्षक अच्छा नहीं माना जाता। उसी प्रकार पाँच, छः शब्दों से अधिक का शीर्षक भी अयोग्य माना जाता है।

कई बार यह सवाल खड़ा होता है कि पहले चित्र और प्रतिलिपि बना लें और बादमें शीर्षक दें या पहले शीर्षक देकर अन्य बातें बादमें तय करें। इस प्रश्न का उत्तर कठिन है। अनुभवी विशेषज्ञों का कथन है कि शीर्षक अन्त में निश्चित किया जाना चाहिये। श्री चार्ल्स सी. नाइट्स के मतानुसार—प्रतिलिपि-कल्पना, प्रतिलिपि-शीर्षक-चित्र इस प्रकार का क्रम योग्य होगा।

दूसरा प्रश्न यह खड़ा होता है कि वस्तु का नाम शीर्षक में लिखा जाय या नहीं। यदि वस्तु नयी हो तो वस्तु का नाम लिखा जाना ज़रूरी है, क्योंकि अपरिचित वस्तु की व्याप्ति का चित्र पाठकों के मस्तिष्क पर तब तक नहीं होता जब तक शब्द बार बार उसकी आँखों के सम्मुख नहीं आता। किन्तु व्याप्तिपूर्ण वस्तुओं के लिए यह ज़रूरी नहीं कि उनका नाम शीर्षक में लिखा ही जाय। या तो कहना चाहिए कि ऐसे समय पर शीर्षक में वस्तु का नाम लिखना एक प्रकार से उसके आकर्षण को कम करना है।

कुछ शीर्षकों में मूल्य का भी उल्लेख होता है। विक्रय-विज्ञान में मूल्य की चर्चा को अंतिम स्थान दिया गया है। अतः मूल्य से प्रारंभ होनेवाले शीर्षक

अनुचित हैं। फिर भी किसी कारण काफी मूल्य घटा दिया गया हो तो उसका समावेश शीर्षक में किया जा सकता है। जैसे 'हिन्द साइकिल सौ रुपयों में'— इसका मतलब स्पष्ट है कि कुछ दिनों पूर्व (१५०) में मिलनेवाली साइकिल (१००) में मिलने लगी है अतः ग्राहकों को चाहिए कि वे शीघ्र क्रय करें। मूल्य से प्रारंभ होनेवाली शीर्षक-प्रतिलिपि हीन दर्जे की मानी जाती है और पाठक भी उसकी ओर संदेह की निगाह से देखते हैं, यह बात विज्ञापक को नहीं भूलनी चाहिए।

प्रतिलिपि लिखना प्रारंभ करने के पूर्व

प्रतिलिपि लिखने का कार्य प्रारंभ करने के पूर्व पास में निम्न सामग्री एवं ज्ञान का होना आवश्यक है :—

१. शब्द-विपुलता के सारे साधन एवं शब्दकोश

२. विज्ञापन-शास्त्र की पर्याप्त पुस्तकें

३. योग्य लेखन साहित्य

४. प्रतिलिपि का संक्षिप्त कल्पना-चित्र

५. चित्रकला की जानकारी

प्रतिलिपि में ऐसे शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है जो संक्षेप में स्पष्ट और पर्याप्त मतलब रखते हैं और जो जनता के पहिचान के हैं। ऐसे शब्दों का चुनाव सरल बात नहीं है, बड़ी कसरत है। अतः शब्दकोश और शब्द-भांडार का ज्ञान प्रतिलिपि के लिए अनिवार्य है। करीब पास का शब्द लिखकर काम निकालने की आली आदत प्रतिलिपि के उपयोग में नहीं लायी जा सकती। उससे बड़ा अनर्थ संभव होता है और कभी कभी विज्ञापन उपहास का विषय बन सकता है। शब्द-कोश में एक शब्द के अनेक अर्थ दिये जाते हैं, उनमें से योग्य कौनसा है यह जानना बड़ा कठिन काम है और वह तब तक हासिल नहीं हो सकता जब तक प्रतिलिपि लेखक का शब्द-भांडार समृद्ध न हो। श्री चार्ल्स सी. नार्डट्स ने एक ही अर्थ के किन्तु भिन्न उपयोग के निम्न अंग्रेजी शब्द दिए हैं—

(अ) Unique — unmatched, unequallable, Having no like or equal or parallel.

(आ) Beautiful, fine, Handsome, pretty अतः शब्द-ज्ञान के सिवा प्रतिलिपि लिखने बैठना और बिना गोली की बन्दूक से निशाना लगाना समान है।

कोई भी मनुष्य अपने आपको स्वयंपूर्ण नहीं कह सकता। उसे कई बार दूसरों के कदमों पर कदम रखकर ही चलना पड़ता है। अतः प्रतिलिपि लेखक को भी पूर्वानुभवों विद्वानों की लिखित सामग्री का (पुस्तकों का) लाभ अवश्य उठाना चाहिए। अतः इस शास्त्र पर लिखी गयी पुस्तकों का गहन अध्ययन ज़रूरी है। इसी प्रकार प्रत्यक्ष प्रतिलिपि तैयार करते समय उन चित्रों तथा वर्णनों को साथ लेकर बैठना चाहिये जिनका उपयोग प्रतिलिपि लेखन में ज़रूरी हो।

लेखन-साहित्य योग्य और पर्याप्त होना ज़रूरी है। उत्तम स्याही और रंग, अच्छा कागज और अन्य सामग्री यथास्थान रखी जानी चाहिये। एकदम नयी लेखनी उपयोगी न हो सकेगी। जिससे पहले काम कर चुके हैं, उसी का उपयोग अच्छा समझा जायगा। प्रतिलिपि सुन्दर तथा भाव-पूर्ण बनाने के लिए आदत आवश्यक है। अतः पढ़ने की अपेक्षा बार बार उसीको लिखते रहना ज़रूरी है। एक बार अंगुलियों को आदत होने के बाद तो आसानी से सुन्दर चित्र खींचा जा सकता है।

प्रतिलिपि लिखने बैठने के पूर्व प्रतिलिपि का कल्पना-चित्र मस्तिष्क में खींचा हुआ रखना चाहिये। कल्पना-शून्य मानस से प्रतिलिपि लिखने बैठना और सूखे कुएँ से पानी खींचना समान है। मनमें प्रतिलिपि के स्पष्ट विचार प्रारंभ से हों, अन्यथा समय पर जी घड़कने लगता है, मन उदासीन हो जाता है और जो कुछ सूझ रहा था उसे भी मनुष्य भूल जाता है।

प्रत्येक प्रतिलिपि में चित्र नहीं होता फिर भी चित्रकला प्रतिलिपि लेखन का अविभाज्य अंग माना जाता है। अतः उस कला का ज्ञान ही नहीं, बरन् निपुणता प्रतिलिपि लेखक के लिए ज़रूरी है।

प्रतिलिपि लिखते समय

प्रतिलिपि लिखते समय निम्न दांशों से अलिप्त रहना चाहिए :—

१. आकर्षणहीन निबंध के समान प्रारंभ।
२. अतिशयोक्ति की परमावधि—जैसे ‘संसार की सर्वोत्कृष्ट मासिक पत्रिका’ (न होते हुए भी)।
३. ऐसे वचन जिनके लिए कोई आधार न हो। जैसे—“लोग कहते हैं ‘केमल स्याही सर्वोत्तम है’।”

४. केवल पद्धति क (Style) लिए क्लिष्ट वर्णन ।
५. सामान्य गुणों का वर्णन ।
६. अनावश्यक शब्द चमत्कृति ।
७. प्रतिस्पर्धियों की निंदा ।
८. पाठकों की प्रहण-शक्ति के ज्ञान का अभाव ।
९. भड़कीली भाषा ।
१०. अनावश्यक विस्तार ।

प्रतिलिपि के प्रकार

१. गद्य रूप में सीधी लिखी गयी
२. वर्णनात्मक कहानी के रूप में लिखी गयी
३. पद्य के रूप में लिखी गयी
४. संवाद के रूप में लिखी गयी
५. स्वसंवाद (Tunt) रूप में लिखी गयी

गद्य स्वरूप प्रतिलिपि सीधी, सरल प्रतिलिपि है जिसमें वस्तु या सेवा का वर्णन होता है ।

कहानी के स्वरूप में लिखी गयी प्रतिलिपि एक सत्यकथन हो सकता है या सत्य के आधार पर कल्पना-चित्र हो सकता है ।

पद्य रूप में प्रतिलिपि लिखने के लिए छंदों का और ताल-लय का ज्ञान जरूरी है, अन्यथा उसका स्वरूप बिडबनात्मक हो सकता है ।

संवादात्मक प्रतिलिपि बनाना कठिन कार्य है । उस में अस्वाभाविकता आनेका बड़ा डर रहता है । लेकिन वह कला संभव हो तो इस प्रकार की प्रतिलिपि सब से अधिक प्रभावी सिद्ध हुई है ।

स्वसंवाद रूप की प्रतिलिपि बहुत ही कम प्रचलित है । उस में केवल किसी एक व्यक्ति का संवाद—नाट्य-छटा के समान—होता है, मानों वह टेलीफोन पर बोल रहा हो । कभी कभी पत्र के रूप में भी स्वसंवादी प्रतिलिपि दी जाती है ।

प्रतिलिपि की चार सीढ़ियाँ

श्री चार्ल्स सी. नाईट्स के मतानुसार प्रतिलिपि की चार सीढ़ियाँ हैं :—

१. वस्तु का विश्लेषण
२. विक्रय-बिन्दुओं का विस्तार

३. कच्ची प्रतिलिपि

४. अंतिम प्रतिलिपि

जिस वस्तु का विज्ञापन करना है, उसकी पूर्ण जानकारी हासिल कर उस के प्रमुख गुणों का विश्लेषण किया जाना जरूरी है। यदि यह काम वैज्ञानिक ढंग से नहीं किया गया तो प्रतिलिपि प्रतिनिधि स्वरूप निर्माण नहीं हो सकती। वस्तु की बनावट, उपयोग, मूल्य, इस्तेमाल करनेवाले संभाव्य ग्राहक विक्रय माध्यम, विशेष गुण आदि दृष्टिकोणों से वस्तु का विश्लेषण कर एक चित्र (Chart) बना लेने से प्रतिलिपि आसानी से लिखी जा सकेगी।

उपर्युक्त विश्लेषण-चित्र का गहन अध्ययन कर उस में से ऐसी बातें खोज निकालनी चाहिये जो अपनी वस्तु के प्रति जनता का ध्यान आकृष्ट कर सकती हों। उन विशेष बिन्दुओं का आवश्यक प्रमाण में विस्तार किया जाना चाहिये। इस प्रकार के विस्तार से प्रतिलिपि का ढाँचा तैयार होगा।

ढाँचे उपर्युक्त भिन्न भिन्न विभागों को योग्य स्थानों पर रख कर कच्ची प्रतिलिपि लिखना तीसरी सीढ़ी है। इस समय प्रतिलिपि का ढाँचा बन जाता है और उस पर चमड़ी चढ़ जाती है।

अब प्रतिलिपि की शकल-सूरत गौर से देखकर जहाँ त्रुटि हो, उस की पूर्ति की जाती है। अनावश्यक हिस्से को निकाल दिया जाता है। जहाँ ढीलापन हो, वहाँ मजबूती लायी जाती है। इतना सब होने के पश्चात् उस हड्डी, मॉस के ढाँचे में प्राण फूँक दिये जाते हैं और एक सजीव प्रतिलिपि हमारे सम्मुख खड़ी हो जाती है।

विज्ञापन-ढाँचा (Lay out)

विज्ञापन की सारी सामग्री और जानकारी सुव्यवस्थित स्वरूप में नियोजित की जाने पर विज्ञापन-ढाँचा तैयार होता है। विज्ञापन के स्वरूप और योजना से संबंधित सभी सूचनायें उसमें समाविष्ट होती हैं। प्रतिलिपि प्रायः विज्ञापक व्यक्ति या सारथी द्वारा तैयार की जाती है। उस प्रतिलिपि के अनुरूप विज्ञापन-ढाँचा तैयार करना चित्रकला-निपुण व्यक्ति का कार्य है। ये दोनों कार्य अलग अलग व्यक्तियों द्वारा किये जा सकते हैं या एक व्यक्ति द्वारा भी। यदि एक ही व्यक्ति द्वारा कार्य किया जाय ऐसी योजना हो तो उस व्यक्ति को कल्पना तथा चित्रकला दोनों बातें उपलब्ध होनी चाहिये। विज्ञापन-ढाँचा बनाने वाला अपनी

कलाकृति इस प्रकार विभूषित करता है जिससे प्रतिलिपि के लिए पर्याप्त स्थान बचा रहे और उसका अस्तित्व भी बना रहे। अतः यह ज़रूरी है कि ढाँचा इसी प्रकार का हो जो प्रतिलिपि का सहायक हो सके।

ढाँचे का आकार विज्ञापन स्थान, प्रतिलिपि का आकार, वस्तु की ख्याति, विज्ञापन प्रदेश और विपणि स्थिति आदि बातों पर निर्भर रहेगा।

शीर्षक आकर्षक स्वरूप में और एक निगाह में पढ़ा जा सके इस प्रकार का हो। उसे देख कर वस्तु की कल्पना तुरन्त पाठक के मन में आनी चाहिये और मजमून के चित्र का संबंध उसके द्वारा प्रस्थापित किया जाना चाहिये। पाठक के मन में सूचि निर्माण करते हुए विक्रय-बातों पर उसके द्वारा प्रकाश डाला जाना चाहिये।

चित्र शीर्षक और प्रतिलिपि की सहायता करते हैं। आकर्षण निर्माण कर सुसूचि बनाये रखना उनका कार्य है। वस्तु या सार्थ के नामका ब्लॉक भी चित्र का एक हिस्सा मान लेने में कोई हर्ज नहीं है। चित्र और नाम का ब्लॉक साफ, स्पष्ट, सौष्ठवपूर्ण और सुसंगत होना चाहिये। वह अनावश्यक कलात्मक न हो।

प्रेषादेश व्यापार सार्थ विज्ञापन में अपना और अपनी शाखाओं के पते भी लिखती हैं। ये पते साफ और स्पष्ट शब्दों में हों।

किनार (Border) विज्ञापन का आखिरी हिस्सा होता है। किनार विज्ञापन के मजमून को अन्य पड़ोसी विज्ञापन से स्वतंत्र रखती है। उसके कारण विज्ञापन में पूर्णता और सुसंगठितपन आ जाता है और उस सार्थ के विज्ञापनों का व प्रमाप विशेषता (Standardised Feature) बन जाती है।

विज्ञापन-ढाँचा कैसे हो ?

सन्तुलितता विज्ञापन ढाँचे का प्रथम गुण है। विज्ञापन के ढाँचे में गाढ़े रंग का, धीमे रंग का और कोरा ऐसे तीन विभाग होते हैं। उन तीनों का समुच्चय आँखों को आराम देनेवाला तथा सौष्ठवपूर्ण होना ज़रूरी है। उसी प्रकार विज्ञापन के चित्र का आकार भी संतुलित रखना होगा, अन्यथा सारा ढाँचा विकृत हो जायगा।

विज्ञापन-चक्रों में एक ताल-बद्धता (Harmony) रखना भी ज़रूरी है। सौष्ठवता ढाँचे का प्राण है। यदि किसी कोमल तथा सौंदर्यपूर्ण वस्तु का

विज्ञापन करना हो तो वहाँ पर पुरुष की अपेक्षा सुन्दर स्त्री का चित्र अधिक सुसंगत होगा। यदि आग-आगोप का विज्ञापन करना हो तो आग के कारण होनवाली दुर्घटनाओं का विकराल चित्र खींचना होगा। वस्तु की मज़बूती यदि व्यक्त करनी हो, तो उस वस्तु को किसी भीमकाय पुरुष के हाथ में दिखाना (बजाय किसी बालक या स्त्री के हाथ में) उचित रहेगा। भविष्यकालीन योजनाओं का विज्ञापन (नेशनल सेर्विंग्ज सर्विफिकेट) करना हो तो भविष्य-कालीन पारिवारिक समृद्धि का चित्र खींचना योग्य होगा।

इसके अलावा ढाँचा वस्तु या सेवा की विशेषताएँ व्यक्त करनेवाला, आकर्षक, मनोरंजक और एक ही निगाह में समझ में आ सके इतना स्पष्ट होना चाहिये।

विज्ञापन का ढाँचा बनाते समय प्रारंभ में एक कच्चा चित्र निकालना अच्छा रहेगा। चित्र में कौन-कौनसी बातें रखनी हैं इसकी नोट कर मामूली तौर पर एक सादा रेखाचित्र पहले खींचा जाना चाहिये। उस चित्र का गौर के साथ अध्ययन कर उसमें की खामियाँ ढूँढ़ निकालनी चाहिये और उन्हें हटाकर दूसरा कच्चा चित्र खींचना चाहिए। इस प्रकार तीन-चार बार प्रयत्न करना पड़ेगा। सिद्धिस्त विज्ञापक को, संभव है, इतनी अधिक परेशानी न उठानी पड़े। ढाँचा बनाने के बाद मुद्रक को स्पष्ट सूचनाएँ लिख दी जानी चाहिये। एक बार बनाए गए ढाँचे में यदि समय पर कुछ परिवर्तन करना हो तो उसकी स्पष्ट लेखी सूचनाएँ दी जानी चाहिये। सूचनाएँ (To pographical Instructions) लाल स्याही से लिखी जाना ज़रूरी है। दो रंगों में यदि विज्ञापन छपाना हो तो हरी या जामुनी स्याही का उपयोग योग्य माना जाता है।

टाइप (Type)

तीन प्रकार के टाइप विज्ञापन में उपयुक्त होते हैं :—

१. सामान्य टाइप (Body Type)
२. प्रदर्शन टाइप (Display Type)
३. प्रभाव टाइप (Emphasis Type)

सामान्य टाइप विज्ञापन के सामान्य मज़मून के उपयोग में लाये जाते हैं। ये अक्षर पढ़ने के लिए सुविधाजनक और सरल हों। प्रदर्शन टाइप कलाकृतपूर्ण होते हैं जिनका उपयोग विज्ञापन को सजाने में किया जाता है। इस प्रकार के टाइप काफी सोच-विचार के पश्चात् इस्तेमाल किये जाने चाहिये। केवल सुन्दरता

के लिए शब्दों का स्वरूप पढ़ने की दृष्टि से अति-बटिल बना देना अनुचित है। प्रभाव टाइप वस्तु या सेवा की विशेषताएँ या विशेष गुणों के वर्णन के लिए उपयोग में लिये जाते हैं। इनका आकार सामान्य टाइपों की अपेक्षा अधिक मोटा हुआ करता है। किस स्थान पर और किस समय किस प्रकार के और आकार के टाइप उपयोग में लिये जायँ इसका विवरण यहाँ पर देना न संभव है, न आवश्यक। जिन्हें सदा विज्ञापन-टॉचा तैयार करना पड़ता है उन्हें अक्सर इस बात की जानकारी होती है। और साथ ही साथ ये बातें केवल पढ़कर समझने की नहीं हैं, देखकर सीखने की हैं। अतः यहाँ पर बातों की चर्चा न करना ही अच्छा है।

प्रश्न

१. 'विज्ञापन याने जानकारी' यह परिभाषा अधूरी एवं गलत लगती है क्या आप इस कथन से सहमत हैं? आप अपनी सर्वोत्तम सुन्दर परिभाषा तैयार कीजिए। विज्ञापन का हेतु क्या है?

२. विज्ञापन के कार्यों का वर्णन कर उसके दोषों पर प्रकाश डालिए।

३. विज्ञापन के कौनसे माध्यम आज उपलब्ध हैं? निम्नों के विज्ञापन किन माध्यमों द्वारा करना उचित होगा—

१. 'विक्रय-कला, विक्रय-संगठन तथा विज्ञापन' यह पुस्तक। २. प्रेषादेश व्यापार करनेवाली पूना की 'समर्थ-औषधि-भवन' सार्थ। ३. आपके शहर की किराने की विक्रय-शाला। ४. शेवरलेट मोटर। ५. 7 O' Clock ब्लेड। ६. रबी जनरल इन्डुरन्स कम्पनी, बम्बई

४. विज्ञापन में मनोविज्ञान का क्या स्थान है?

५. विज्ञापन अतिलिपि कैसे तैयार की जाती है? उसके प्रमुख हिस्से कौनसे हैं?

६. अच्छी प्रतिलिपि के गुण लिखिए और इनमें से किसी एक विज्ञापन के लिए प्रतिलिपि तैयार कीजिए:

१. पंजाब नेशनल बैंक, २. अरविंद मिट्स, ३. अर्थ-साहित्य प्रकाशन मंडल, वर्धा, ४. आनन्द भांडार (भिठाई की दूकान) ५. 'हमारा हिन्दुस्तान' सिनेमा।

७. 'विज्ञापन' पर क्या आरोप लगाये जाते हैं? क्या वे यथार्थ हैं?

८. विज्ञापन में उपयुक्त भिन्न भिन्न प्रकार के साहित्य (Literature) का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

